हमारा साहित्य

1983

रजत
जयन्ती
विशेषांक

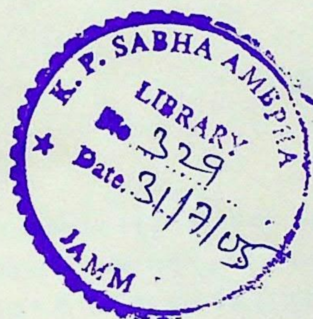
हमारा साहित्य
1983



हमारा साहित्य

1983

[रजत जयन्ती विशेषांक]



सम्पादक

रमेश मेहता

जे० एण्ड के० अकादमी आफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़



जे० एण्ड के० अकादमी ऑफ आर्ट,
कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, नहर मार्ग, जम्मू
द्वारा प्रकाशित

मूल्य : Rs. 25/-

प्रथम संस्करण : १९८५

रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली-३२
द्वारा मुद्रित

HAMARA SAHITYA
Edited *by* Ramesh Mehta

अपनी बात



यद्यपि हमारी अकादमी की स्थापना अगस्त १९५८ में हुई थी तथापि प्रकाशन के नाम पर पत्रिका तथा वार्षिकी के प्रवेशांक सन् १९६५ में छप कर आए थे। जम्मू-कश्मीर के हिन्दी लेखक/पाठक के लिए यह बात बड़े ही हर्ष और गौरव की है कि तब से लेकर आज तक इन पत्रिकाओं ने अनेक कठिनाइयों को पार करते हुए सफलता के रास्ते पर आगे बढ़ने के क्रम को बनाये रखा है। आरम्भ में **हमारा साहित्य** के अंकों में विगत वर्ष में प्रकाशित रचनाओं को ही प्रस्तुत किया जाता रहा किन्तु सन् १९७५ से इसकी रूपरेखा को एक नयी दिशा मिली। यह महसूस किया गया कि वर्ष विशेष में 'शीराज़ा' में प्रकाशित होने वाली रचनाओं का **हमारा साहित्य** में पुनर्प्रकाशन जम्मू-कश्मीर में हिन्दी साहित्य के विकास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हो सकता क्योंकि ऐसा करके हम लेखक/पाठक को कुछ भी नया नहीं दे रहे हैं। पिष्टपेषण की परम्परा को पुष्ट करने का काम अलबत्ता वे संकलन अवश्य कर रहे थे।

अत: सन् १९७५ में अकादमी के सचिव श्री मुहम्मद यूसुफ़ टेंग की प्रेरणा से **हमारा साहित्य** के प्रकाशन को एक नई दिशा दी गयी जिसके फलस्वरूप प्रत्येक अंक किसी एक विषय पर आधिकारिक तथा प्रामाणिक सामग्री लिये हुए प्रकाश में आने लगा। इस प्रयास का सीधा लाभ हमारे पाठकों को मिला। उन्हें एक दिए गए विषय पर विशिष्ट सामग्री अब एक ही स्थान पर उपलब्ध थी। इस योजना से लेखकों को भी लाभ हुआ। सर्जनात्मक लेखन के साथ आलोचनात्मक तथा तुलनात्मक साहित्य की ओर भी उनका झुकाव हुआ। इस प्रकार कविता के साथ-साथ आलोचना तथा तुलना की प्रवृत्ति को भी बढ़ावा मिला। इस योजना के अंतर्गत अकादमी ने अब तक जिन विषयों पर **हमारा साहित्य** के अंक प्रकाशित किए हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—

१९७५—भारतीय लोक साहित्य के संदर्भ में ज. क. के लोक साहित्य का अध्ययन

१९७६—ज. क. की विभिन्न भाषाओं के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन।

१९७७—जम्मू-कश्मीर में हिन्दी लेखन

१९७८—जम्मू-कश्मीर में हिन्दी कवि और उनकी कविता

१९७९—जम्मू-कश्मीर का लोक साहित्य

१९८०—जम्मू-कश्मीर की सांस्कृतिक विरासत

१९८१—डोगरी साहित्य की उपलब्धियां

१९८२—कश्मीरी भाषा और साहित्य—एक परिचय



हमारा साहित्य का प्रस्तुत अंक एक बार पुनः अपनी पुरानी लीक पर लौटने का भ्रम दे सकता है···किन्तु यह एक विराम मात्र है, परम्परा नहीं। वास्तव में अकादमी के रजत-जयन्ती वर्ष में हमारे लिए यह सोचना अनिवार्य हो चला था कि आखिर हमारे हिन्दी लेखकों ने इस बीच कितना-क्या खोया-पाया है? लेखक की पहचान का आधार उसका लेखन है और किसी भी लेखक की अगणित रचनाओं में से एक रचना-विशेष का चयन अपने में बड़ा चुनौती भरा काम होना चाहिए। इस चुनौती को हमने स्वीकार किया है। ये रचनाएं न केवल लेखक-विशेष की विशिष्ट रचना-शक्ति का परिचय प्रस्तुत करती हैं प्रत्युत उनके सरोकारों को भी सही सन्दर्भों में रूपायित करती हैं। पिछले पचीस वर्षों में हिन्दी लेखक ने एक लम्बी यात्रा तय की है। इस यात्रा में जहां कई लोग इससे आकर जुड़े हैं वहीं अनेक लोग चाहे-अनचाहे बिछुड़े भी हैं। पृष्ठ सीमा के कारण भी कई लेखकों को छोड़ना पड़ा है। अतः ऐसे में अनेक लेखक इस संकलन में आने से रह गए होंगे, उनके हम अपराधी हैं और आशा करते हैं कि वे हमें क्षमा करेंगे।

—रमेश मेहता

अनुक्रम

कहानियां

कविताएं

रिपोर्ताज

रंग-नाटक

लेख

कथा और कथा....

खास-उल-खास

□ वेद राही

पत्नी ने कहा—'नौ'

'नौ बज गए ?' वह चौंका। हाथ में पकड़ा चाय का कप जल्दी से मेज पर छोड़ दिया, और यों उठा जैसे कुर्सी में कोई तगड़ा खटमल था, जिसने काट खाया है।

'कहां चले ?' पत्नी ने व्यंग्य के लहजे में पूछा। उसका मतलब था कि कोई काम तो है नहीं तुम्हारे हाथ में और भाग यों रहे हो जैसे किसी आफिस का बास घड़ी पर नज़रें टिकाए तुम्हारी राह देख रहा है, कि लेट होने पर तुम्हें आफिस से निकाल बाहर करेगा।

उसने दरवाजा खोलते हुए सिर्फ इतना कहा—'नरेशकुमार के घर।' और यह कहकर बाहर निकल गया।

वह गली में भाग तो नहीं रहा था, सिर्फ तेज-तेज चल रहा था, लेकिन उसे लग रहा था कि वह रेस के घोड़े की तरह भाग रहा है। उसने कई बार सोचा है कि वह रेस-घोड़ा होता तो बहुत आगे पहुंच गया होता। उसके ख्याल में रुकावटें और दीवारें तो सिर्फ इन्सानों के लिए हैं, घोड़े तो छलांग मारकर हदों से गुजर जाते हैं।

नरेशकुमार के घर के बाहर 'इम्पाला' देखकर उसकी जान में जान आई। 'साहब ऊपर हैं ?' ड्राइवर से पूछा।

'जी हां, अभी तैयार हो रहे हैं,' ड्राइवर ने सूचना दी।

वह जब ड्राइंग-रूम में सोफे पर बैठा तब उसका दम फूला हुआ था। आज वह फिर यह बात भूल गया कि उसे भागते हुए सीढ़ियां नहीं चढ़नी चाहिएं। अब उसमें इतना दम नहीं है। चालीस के बाद तो अच्छों-अच्छों के दम फूल जाते हैं ! और फिर बम्बई जैसे शहर में—जहां की हवा गीली और खाना-पीना सूखा।

उसकी नजर कमरे के दूसरे हिस्से में शीशे के बने डाइनिंग-टेबिल पर गई। चमचमाती हुई प्लेटें लग चुकी थीं। नौकर अचार की बोतलें सजा रहा था। उसका मन उत्साह से भर गया। शरीर में एक चुस्ती-सी महसूस हुई।

'साहब को कितनी देर हो गई बाथरूम में?' उसने नौकर से पूछा।

'बस अभी बाहर निकलते होंगे। आधा घंटा हो गया।' नौकर ने कहा। फिर उसने यह भी सूचना दे दी—'स्टूडियो से दो बार फोन आ चुका है।'

उसे मालूम है कि नरेशकुमार आज कहां शूटिंग कर रहा है। नरेश को भी अपने प्रोग्राम के बारे में इतना पता नहीं रहता जितना उसे। उसे यह भी मालूम है कि आज कौन-कौन लोग नरेशकुमार से मिलने आएंगे और किसको क्या उत्तर देना है। सामने अखबार पड़ा था, उसने उठा लिया और पढ़ने लगा।

'जल्दी आओ, नाश्ता कर लें।' नरेशकुमार तैयार होकर अन्दर से निकला और सीधे नाश्ते की टेबिल पर बैठ गया। वह भी उठा। इतने में फोन की घंटी बज उठी।

'स्टूडियो से आया होगा। कह दो मैं निकल गया हूं,' नरेशकुमार ने कहा।

'आवाज बदलकर कहता हूं, वर्ना वे समझ जाएंगे।' और उसने अजीब-सी आवाज़ निकालते हुए कह दिया—'नरेशसाहब निकल गए हैं, स्टूडियो गए हैं।' टेलीफोन करके वह भी नाश्ते की टेबिल पर आ बैठा। काफी भूख लगी थी उसे। जितनी देर में नरेश ने एक परांठा खाया, उसने तीन गड़प किए।

'इम्पाला' घोड़बन्दर रोड पर मछली की तरह तैर रही थी। ऐसी बड़ी और बढ़िया गाड़ी की तरफ राह चलते लोगों की नजरें अपने आप उठ जाती हैं। बहुत से लोग तो पहचानते भी हैं कि यह किसी फिल्मी हीरो की गाड़ी है। और जिन लोगों की नजर नरेश पर पड़ जाती है, वे चौंककर देखते हैं और दूर तक देखते रहते हैं।

उसे यह सब बहुत अच्छा लगता है। जैसे यह गाड़ी उसी की हो। और लोग उसे देख रहे हों। अपने आपको वह भी कोई छोटा ऐक्टर नहीं समझता। उसने भी अनगिनत फिल्मों में काम किया है। बड़ी बात नहीं कि लोग उसे भी देखते हों।

कैमरा 'फिक्स' हो चुका है। लाइट्स ऑन हैं। नरेशकुमार 'मेक-अप' करके और 'ड्रेस' पहनकर आया। सब तरफ से गुडमार्निंग की आवाजें आईं। डायरेक्टर ने आगे बढ़कर उससे हाथ मिलाया। बाद में उनसे भी हाथ मिलाना पड़ा। लेकिन उससे हाथ मिलाते समय मुस्कराहट से मिठास यों गुम हो गई थी, जैसे रेत में पानी सूख जाता है।

'यह मनहूस शक्ल आज फिर आ गई!' कोई फुसफुसा रहा था।

'इन चमचों ने तो फिल्म इण्डस्ट्री का सत्यानाश कर रखा है?'

'काम-वाम कुछ करते नहीं, दूसरों का समय बरबाद करने आ जाते हैं।'

'दरअसल इन हीरो लोगों का भी ऐसे लोगों के बिना दिल नहीं लगता। आदत पड़ जाती है कि कोई हर समय उनकी जी-हजूरी करता फिरे।'

क्या ऐसा कोई शब्द उसके कानों में नहीं पड़ता? शब्द न पड़ता हो भावार्थ अवश्य रेंगते हुए उस तक पहुंच जाता है। पर वह ऐसे 'भावों' के चक्कर में नहीं आता। बेकार की बातों में वह नहीं उलझता। उसके चेहरे पर एक सौम्य मुस्कराहट बनी रहती है। लगता है, काले पत्थर पर किसी नौसिखिए शिल्पी ने मुस्कराहट अंकित करते-करते कोई गलत 'स्ट्रोक' लगा दिया है। सारा संयोजन गलत हो गया है। 'एक कप चाय लाना, भई।' उसने कम्पनी-ब्वाय को आर्डर दिया। आर्डर देने के बाद फिर वह एक क्षण भी उधर नहीं देखता, ऐसा न हो जवाब ही मिल जाए। यह उसका सामान्य सिद्धान्त है।

हीरोइन भी सैट पर पहुंच गई है और शूटिंग शुरू हो गई है। हीरोइन का बाप उसके बगल की कुर्सी पर बैठा है। उसे मालूम है कि वह अनेक बीमारियों का ढेर है। 'कहिए खन्नाजी, क्या हाल है?' उसने हीरोइन के बाप से पूछा।

'और तो सब चल रहा है, यह कम्बख्त पेट चैन की सांस नहीं लेने देता। सुबह-शाम गैस-ही-गैस भरी रहती है इसमें।'

'मेरी मानें तो आप सूरन खाना शुरू कीजिए।' उसने बिल्कुल हकीमाना अन्दाज में सलाह दी।

'सूरन? वह क्या!'

'अजी पंजाब में जिसे जिमीकंद कहते हैं।'

'अच्छा जिमी...' अभी खन्नाजी के मुंह से इतना ही निकला था कि जोर से आवाज आई—'साइलेंस!'

सब तरफ खामोशी छा गई।

शाट होने लगा। फिल्म की हीरोइन नीनाकुमारी नरेशकुमार से कह रही थी—'दिल का लगाना आसान है, लेकिन लगी को निभाना बहुत मुश्किल।'

'कट!' डायरेक्टर की आवाज आई।

नरेश को नीनाकुमारी की इस बात का जवाब देना था, लेकिन कैमरा चलना बन्द हो गया।

'जिमीकंद के बीस फायदे मैं आपको गिना सकता हूं!' लेकिन अभी वह एक भी फायदा न बता पाया था कि शाट फिर चालू हो गया।

शाट हो जाने के बाद नरेशकुमार भी उन्हीं के पास आ बैठा और सुनने लगा।

'इससे कब्ज दूर हो जाती है, भूख बढ़ जाती है, ताकत बढ़ती है...'

'यह कौन-सी चीज है भाई, जरा हमें भी बताओ!' नरेशकुमार ने आगे झुककर कहा। चार फायदे सुनकर ही उसे लगा कि कोई बड़ी रामबाण चीज है।

'जिमीकंद एक सब्जी होती है। बम्बई में उसे सूरन कहते हैं।' कहते हुए उसने ब्वाय के हाथ से चाय का कप पकड़ लिया।

तभी कुछ लोग नरेशकुमार से मिलने के लिए आ गए। उनमें फिल्म लाइन का एक पुराना असिस्टैंट डायरेक्टर लखनपाल है। वह एक फिल्म बनाना चाहता है, जिसमें नरेशकुमार को हीरो लेना चाहता है। फिल्म के फाइनेंस के लिए उसने जिसको फांसा है, उसे नरेशकुमार से मिलवाने के लिए लाया है। लखनपाल नरेशकुमार से ऐसी बातें कर रहा है, जिससे फाइनेंसर पर प्रभाव पड़ सके कि फिल्म वाकई बहुत अच्छी बनेगी और लाखों रुपयों का मुनाफा कमाएगी।

मिस्टर खन्ना भी उसके पास से उठकर कैमरे की तरफ चले गए हैं, जहां उनकी बेटी नीनाकुमारी डायरेक्टर के साथ बैठकर हंस-हंसकर बातें कर रही है। यह उनकी ड्यूटी भी है कि नीनाकुमारी जब भी किसी के साथ हंस-हंसकर बातें कर रही हो, वह बीच में जा खड़े हों।

चाय अच्छी बनी है। उसे बड़ा मजा आ रहा है पीने में। साथ ही वह सोच रहा है कि लखनपाल को आज कह देना चाहिए कि उसके लिए वह अपनी फिल्म में 'रोल' जरूर रखे। उससे इनकार तो होगा नहीं क्योंकि लखनपाल जानता है कि आजकल वह नरेशकुमार का खास-उल-खास आदमी है। हर समय उसके साथ रहता है। वह चाहे तो लखनपाल के विरुद्ध नरेशकुमार के कान भर सकता है। वह कह सकता है—'लखनपाल को अभी पूरी तरह काम नहीं आता। यह फ्लाप पिक्चर ही बनायेगा। उसे पैसों की छूट नहीं देनी चाहिए।'

चारों तरफ काफी शोर है। कैमरामैन और उसके असिस्टैंट चिल्ला-चिल्लाकर लाइट्स करवा रहे हैं। इधर-उधर सब तरफ लोग दो-दो, चार-चार की टोलियां बनाकर गप्पबाजी में मशगूल हैं। लगता है, कोई स्टूडियो नहीं, मछली मार्केट है—कचर-कचर, पचर-पचर।

वह लगातार लखनपाल की ओर देख रहा है। लखनपाल ने उसे 'विवश' कर दिया है। चाय का आखिरी घूंट पीकर उसने कप एक तरफ रख दिया और उठा। लखनपाल के पास जाकर उसने उसे एक तरफ आने को कहा। दोनों एक कोने में जा खड़े हुए। 'तुम फ़िक्र मत करो, नरेशकुमार तुम्हारी पिक्चर में जरूर काम करेगा। तुम्हारी कहानी उसे बहुत पसन्द आई है।

'मैंने बड़ी मुश्किल से वह कहानी खरीदी है।'

'लेकिन यार, मेरे लिए कोई बड़ा रोल जरूर रखना।'

'यह कोई कहने की बात है! आपके लिए तो मैंने पहले ही बड़ा अच्छा रोल सोचकर रखा है। वह नाव वाले का कैरेक्टर है न, जो हीरोइन को मरने से बचाता है, वह।'

'हां-हां, काफी बड़ा रोल है। तो यार, फिर अपना कान्ट्रेक्ट जल्दी से करा

दो। कुछ पैसे ही मिल जाएंगे।'

'आप आज ही शाम को आ जाइए।' लखनपाल ने बड़े ही विश्वसनीय लहजे में कहा—'हो सकता है, आज ही सब करा दूं।'

'कितने बजे आऊं।'

'यही कोई छह बजे।'

'थैंक्यू वेरी मच।' कहते हुए उसने लखनपाल से हाथ मिलाया—'मैं जरूर पहुंच जाऊंगा।'

शूटिंग फिर शुरू हो गई। लखनपाल और उसकी पार्टी के लोग चले गए हैं। शोर थम गया है। और वह खुश होकर सोच रहा है, चलो कुछ काम तो बना। हीरो के पिछलग्गू बने बिना आजकल कोई काम नहीं होता। वह रमेश (उसका एक अभिन्न मित्र) मुझे चमचा बोलता है। उसे क्या पता कि आजकल जीना कितना मुश्किल हो गया है। बीवी-बच्चों का पेट साथ में भरना हो तो छठी का दूध याद आ जाए उसको। सोचते-सोचते उसने सामने तिपाई पर पड़े डायरेक्टर के सिगरेटों में से एक सिगरेट निकालकर सुलगा लिया।

'मेरे पिताजी से तुम शादी की बात क्यों नहीं करते?' हीरोइन पूछ रही है।

हीरो ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर जवाब दिया—'मैं जब भी तुम्हारे पिताजी के सामने जाता हूं, मुझे प्यार-व्यार सब भूल जाता है। उनकी लाल आंखों से मुझे डर लगने लगता है।'

वह मन-ही-मन मुस्कराता है, अजीब बात है, वह सोचने लगता है, कुछ ऐसी ही स्थिति उसके सामने भी आई थी। शादी से पहले उसकी पत्नी ने भी उससे कहा था अपने पिताजी से मिलने के लिए और वह कभी उसके पिताजी से नहीं मिल सका। उनकी लाल आंखों से डर लगता था। काश! वह उनसे मिल लेता। और वे उसे पीटते। इतना पीटते कि 'इश्क' का भूत उसके सिर से उतर जाता।

वह इस बात से खुश है कि वह बम्बई जैसे शहर में है जहां कोई किसी के निजी मामलों में दखल नहीं देता। मोहल्ले वाले उससे नहीं पूछते कि वह काम क्या करता है। फिल्म लाइन में काम करते हुए पन्द्रह साल बीत गए हैं। इस बीच उसने बहुत संघर्ष किया है। असिस्टैंट डायरेक्टर रहा है, प्रोडक्शन मैनेजर रहा है, एक्टिंग भी की है। किसी काम में उसका जी नहीं लगा। हर काम में अपने से बड़ा आदमी उसे 'होक्स' नजर आया है। उसने जब भी दूसरे को अय्याशी करते हुए देखा, और अपने को विवश पाया, तभी उसका संतुलन बिगड़ गया। दुनिया की हर अय्याशी का उसने अपने को हकदार समझा, और वही नहीं मिली।

उसे अपने संघर्षमय जीवन से नफरत हो चुकी थी। सारा कामकाज छोड़कर उन दिनों वह घटिया शराब पीकर सारा-सारा दिन अपने घर पर पड़ा रहता था। पत्नी और बच्चों को उसने मारना शुरू कर दिया था। सब उसकी

सूरत देखकर कांपने लगते थे। और फिर एक दिन जब दो दिन से बच्चों ने कुछ खाया-पिया नहीं था, और शराब वाले ने उसे और उधार देना बन्द कर दिया तो वह घर से वाहर निकला कुछ करने को। धूप में वह दूर तक पैदल चलता रहा। बस के लिए भी उसकी जेब में पैसे नहीं थे। भूख, प्यास और थकावट से उसे चक्कर-सा आ रहा था। आखिर वह एक जगह फुटपाथ पर खड़ा हो गया। उस वक्त उसे लग रहा था कि आत्महत्या के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं। अचानक सामने से एक बड़ी कार आती दिखाई दी। देखा तो उसमें नरेशकुमार बैठा था। नरेशकुमार थोड़ा-बहुत उसे जानता था। उसने कार खड़ी कर दी।

'किस तरफ जा रहे हैं आप !' उसने पास आकर पूछा।

'कारदार स्टूडियो !' नरेशकुमार ने जवाब दिया।

'मुझ भी वहीं जाना है।' कहकर वह आगे की सीट पर उसकी बगल में बैठ गया।

बस वह दिन और आज का दिन। छह महीने हो गए वह उस कार से नहीं उतरा है। उसे एक रास्ता मिल गया है, एक निस्तार।

'कट !' डायरेक्टर की आवाज गूंजी—'इट्ज ओ० के०। ब्रेक फार लंच।'

नरेशकुमार और वह दोनों मेक-अप रूम में आ बैठे। ब्याय ने आकर पूछा—'साव, खाना वहां खाएंगे सबके साथ या यहीं ले आऊं।'

'यहीं ले आओ !' नरेशकुमार के कुछ कहने से पहले ही वह बोल उठा। जब ब्वाय चला गया तब उसने नरेशकुमार से कहा—'यार, तुम सबके बीच बैठकर मत खाया करो। वहां तो आफिस ब्वाय भी साथ बैठ जाते हैं।'

'इतना भी क्या हुआ भाई, आखिर सब इंसान ही तो हैं। नरेशकुमार ने कहा। उसने सब कपड़े उतार दिए थे, सिर्फ अंडरवियर पहन एअर-कंडीशनर से आती हुई ठंडी हवा के सामने लेट गया था।

वह भी जरा लेटने के अन्दाज में बैठ गया और बोला—'वह तो ठीक है, सब इंसान ही हैं। मगर यहां तुम ठंडी हवा में बैठकर खाना खाओगे, और चाहो तो बिअर भी पी सकते हो।'

'अरे हां, कार से दो बिअर की बोतलें ले आओ।'

वह जल्दी से उठा। कार में रखे कूलर से दो बिअर की ठंडी बोतलें और गिलास आदि लेकर मेक-अप रूम में आ गया।

बिअर का एक गिलास पी चुकने के बाद नरेशकुमार की आंखों में सरूर की एक लहर दौड़ गई। बोला—'यार, यह नीनाकुमारी काफी गरमाई हुई लगती है। आज शूटिंग में बहुत जोर से मेरा हाथ दबा रही थी।'

'तो ऐसा करो।' कहते हुए वह उठ बैठा—'मैं उसके बाप को अभी खाना खाने के बाद बातों-बातों में बाग की तरफ ले जाता हूं, तुम नीना के साथ बैठकर

मामला जमाओ।'

'अरे आहिस्ता बोलो, साथ का रूम ही तो है उनका!' नरेशकुमार ने कहा—"इतना कष्ट करने की जरूरत नहीं है जितना तुम कह रहे हो। समय आएगा तो वह खुद ही अपने बाप को बाहर भेज देगी।'

दोनों हंस पड़े।

खाना आ गया। खाने के बाद दोनों को लगा कि खुमार दुगुना हो गया है। नरेशकुमार ने लेटे-लेटे आंखें बन्द किए हुए कहा—'यार, घर से बहुत खत आ रहे हैं, शादी कर लो, शादी कर लो। समझ में नहीं आता क्या जवाब दूं।'

वह भी सोने को था। करवट बदलते हुए बोला—'मेरी बात मानो तो अभी शादी मत करना। प्यारे, यह वक्त बार-बार नहीं आने का। अच्छी तरह खा-पी लो। इन्डस्ट्री में नीनाकुमारियों की कमी नहीं।'

वह जानता है कि नरेशकुमार की शादी हो गई तो फिर इतनी आसानी से हर सुबह नाश्ता नहीं मिलने का। फिर तो हो सकता है कि उसके घर जाने की भी मनाही हो जाए। हर पत्नी का स्वभाव एक ही जैसा होता है। पति को सबसे पहले अपने जिगरी दोस्तों से हाथ धोना पड़ता है। वह तो ऐसा हरगिज नहीं होने देगा। नरेशकुमार को अभी शादी की जरूरत ही क्या है। बीसियों लड़कियां उसके आगे-पीछे फिरती रहती हैं। यह सब कुछ छोड़कर शादी करेगा तो पछताएगा। आगे उसकी मर्जी। हमारा फर्ज है कि हम उसे नेक सलाह दें। यह सब सोचता-सोचता वह सो गया।

उसकी नींद खुली तो देखा चार बज चुके थे। वह हड़बड़ाकर उठ बैठा। नरेशकुमार वहां नहीं था। समझ गया कि वह शूटिंग पर होगा। बाहर झांककर उसने एक ब्वाय को बुलाया और फौरन चाय लाने का आर्डर दिया। चाय पीकर जब वह सैट पर पहुंचा तब डायरेक्टर नरेशकुमार से कह रहा था—'शूटिंग के बाद आज शाम को सीधे मेरे घर आना पड़ेगा आपको। मेरा बर्थ-डे है।'

'हैप्पी बर्थ-डे!' नरेशकुमार ने उससे हाथ मिलाया।

तभी दोनों की नजर उस पर गई। उसने भी हाथ बढ़ाकर 'हैप्पी बर्थ-डे' कहा। डायरेक्टर ने फिर भी उसे पार्टी में आने के लिए नहीं कहा। तब नरेश कुमार को खुद ही कहना पड़ा—'यहां से सीधे शर्मा साहब के घर चलना है।'

'जरूर!' उसने कहा।

और जब शूटिंग के बाद वह नरेश के साथ कार में बैठने लगा तब अचानक उसे याद आया कि लखनपाल ने आफिस में बुलाया है। उसने कहा था, हो सकता है कि आज ही कान्ट्रेक्ट साइन हो जाए और कुछ एडवांस भी मिल जाए। बैठते-बैठते रुक गया।

'क्या बात है?'

'कुछ नहीं !' कहकर वह बैठ गया। उसे ख्याल आया कि आज पार्टी में व्हिस्की का दौर चलेगा। और ऐसी पार्टियों में तो कोई हिसाब ही नहीं रहता कि किसने कितनी पी है। अंग्रेजी व्हिस्की और बेहिसाब पीने को मिले तो फिर कुछ सोचा भी क्या जा सकता है। लखनपाल की बात का कोई भरोसा नहीं, उसने सोचा, झूठ बोल दिया होगा। मैं आज जाता तो हो सकता है, कह देता कि कल आना, कल जाता तो फिर कह देता कि कल आना। ये लोग ऐसे ही होते हैं। और एक भारी-सी गाली उसके मुंह से निकल गई।

'यह किसको गाली निकाल रहे हो, भाई ?'

'डायरेक्टर शर्मा को !' उसने कहा।

'क्यों ?'

'वह इश्क झाड़ता है नीना से,' इस समय उसे और कोई बात नहीं सूझी कहने को तो यही जड़ दी।

'झाड़ने दो, हमारा क्या ले जाता है ?'

'मैं तो आज उसे बोल दूंगा, ज्यादा हाथ-पैर मारने की कोशिश न करे !'

'यार, तुम ऐसी बातें न किया करो !' नरेशकुमार ने कहा।

'तुम चुप रहो। अपने बारे में तुम कुछ भी नहीं सोच सकते। मुझे ही सोचना पड़ता है सब।'

बड़े जोरों से पार्टी चल रही है। व्हिस्की ने अपना रंग दिखाना शुरू कर दिया है। हर आदमी को दूसरे सब लोग हीन दिखाई देने शुरू हो गए हैं। एक घंटा पहले जो सबके आपसी सम्बन्ध थे, उनमें परिवर्तन आ चुका था। कहीं दबा हुआ रोमांस ऊपर आ गया है। कहीं मन में छिपे हुए गिले-शिकवे जबान पर आ गए हैं। एक कोने में खड़े-खड़े ही कुछ आदमियों ने महफिल जमा रखी थी। उनमें से एक ने गालिब की कोई गजल छेड़ रखी थी—फिर मुझे दीदा-ए-तर याद आया, और बाकी सब जी खोलकर दाद दे रहे थे।

नरेशकुमार और नीनाकुमारी अन्दर वाले कमरे में बैठे हुए थे। और उसने नीनाकुमारी के बाप को बातों में उलझा रखा था। 'खन्ना जी, जिमीकंद के तो बीस ही फायदे गिना सकता हूं मैं। लेकिन मक्खन, जी हां, मस्का या पोलसन बटर ही कह लीजिए, उसके सौ फायदे हैं। आप भी सुबह-शाम पोलसन बटर खाइए, कोई बीमारी आपके पास फटकेगी नहीं। मैं देख रहा हूं आप डरते-डरते व्हिस्की पी रहे हैं। आप जी खोलकर व्हिस्की पीजिए। यह लीजिए, मेरा पैग भी लीजिए, मैं और ले लूंगा। आप जितनी मर्जी हो, पीजिए। बस इतना करिए कि डिनर में एक डली मक्खन खा लीजिए। नशा उतर जाएगा और व्हिस्की की गर्मी ताकत बनकर आप की रगों में समा जाएगी।'

खन्ना जी की आंखों में धुंधलके छा रहे थे। उन्होंने पहले भी कहीं से सुन रखा था कि मक्खन खाने से नशा उतर जाता है। वह मक्खन की तलाश में आगे बढ़े, लेकिन लड़खड़ाकर बीच में ही एक सोफे पर बैठ गए।

उसने अन्दर वाले कमरे में झांका। कई जोड़े वहां थे। एक कोने में नरेशकुमार और नीनाकुमारी एक-दूसरे की कमर में हाथ डाले हंस रहे थे। अचानक नरेश-कुमार ने उसकी तरफ देखा तो वह मुस्करा दिया। वह वहां से मुड़ा कि अचानक पार्टी के होस्ट डायरेक्टर शर्मा को अन्दर वाले कमरे की तरफ जाते देखा।

'अजी सुनिए, तो शर्मा साहब !' उसने बांह पकड़कर उन्हें रोक लिया। उसे याद था कि शर्मा ने उसे इस पार्टी के लिए दावत नहीं दी थी, वह तो नरेशकुमार जबरदस्ती उसे ले आया था।

शर्मा ने भी पी रखी थी, लड़खड़ाते कदमों से वह उसके पास खड़ा हो गया।

'शर्मा जी, आपने हमें अपनी पिक्चर में बेशक कोई काम नहीं दिया, पर हम फिर भी आपके चाहने वालों में हैं।'

शर्मा ध्यान से उसकी बातें सुन रहा था। और वह बड़े धीमे स्वरों में कह रहा था—'हम जानते हैं कि नीना पर आपकी नजर है। लेकिन इसके लिए आपको बहुत कोशिश करनी होगी और बड़ा होशियार रहना पड़ेगा। आपको शायद पता नहीं कि वह आजकल नरेशकुमार के हाथ बड़े जोर से दबाती है।'

'अरे छोड़ो यार, हमको कब शादी करनी है उसके साथ। उस बेचारी का भी तो आखिर दिल है !' कहकर शर्मा वहां से आगे बढ़ गया।

उसे दुःख हुआ कि उसकी बात बेअसर रह गई। मन-ही-मन उसने शर्मा को एक भद्दी-सी गाली दी और टेबिल की तरफ बढ़ गया। जहां लबालब ह्विस्की से भरे हुए गिलास पीने वालों की प्रतीक्षा कर रहे थे।

रात के गहरे सन्नाटे को चीरती हुई कार तेजी से भागी जा रही थी। नरेश-कुमार के हाथ स्टेयरिंग-ह्वील पर थे, और एक पांव एक्सीलेटर पर। कार जमीन पर है, मगर वह खुद ऊपर, बहुत ऊपर है। एकाएक उसे याद आता है कि लखन-पाल ने उसे शाम को बुलाया था कांट्रेक्ट करने के लिए। हो सकता है, कुछ पैसे भी झड़ जाते वहां से। लेकिन हो सकता है, कुछ भी न होता। तब उसे कितना अफसोस होता इस पार्टी में न आने का। उसने कम-से-कम दस पेग तो पिए ही होंगे। अंग्रेजी ह्विस्की थी। कम-से-कम दस रुपए का एक पेग तो होगा ही। यानी सौ रुपए वह पी गया है।

जोर की ब्रेक लगने की आवाज से वह चौंका। देखा, वह चौराहा आ गया है, जहां वह रोज ही उतरता है। लड़खड़ाते हुए वह बाहर निकला। 'ओ० के० नरेश !'

'ओ० के०।'

यह रोज का क्रम है। कहने की जरूरत नहीं—'कल आना' या 'कल

आऊंगा।'

'अरे ठहरना यार!'

नरेश ने कार स्टार्ट कहां की थी। वह जानता था कि रुकना पड़ेगा। 'यार, दस रुपए हों तो देना।'

'वह पीछे कोट पड़ा है, उसमें से निकाल लो।'

पिछली सीट का दरवाजा खोलकर उसने कोट की जेब से दो नोट निकाल लिए हैं। बीस! पत्नी के लिए काफी हैं।

'गुड नाइट!'

'गुड नाइट!'

कार चली गई और वह घर की तरफ मुड़ गया। उसके पांव लड़खड़ा रहे थे। गर्दन छाती पर झुक आई थी। नोट जेब में डालने के लिए उसने जेब में हाथ डाला तो वह वहीं रह गया। मुंह से उसने सीटी बजानी चाही लेकिन सिर्फ 'फिस' की आवाज निकली जो उसे भी सुनाई नहीं दी। □

हितचिन्तक

□ हरिकृष्ण कौल

तांगा चला तो गिरधारी ने जया पर फिर दृष्टि डाली। वह मुख दूसरी ओर किए झील में ठहरे हाउस-बोटों और तैर रहे शिकारों की ओर देख रही थी। या शायद देख कुछ नहीं रही थी, केवल झील के पानी पर दृष्टि जमाये कुछ सोच रही थी। गिरधारी ने थोड़ा-सा खंखारकर उसका ध्यान आकृष्ट किया और फिर कहने लगा—'ज़िन्दा रहना तभी कोई अर्थ रखता है जब आदमी अपनी ज़िन्दगी इज्ज़त के साथ गुजार सके। और यह इज्ज़त प्राप्त की जा सकती है आत्म-निर्भर बनकर, अपने पांव पर खड़े होकर। साथ ही यह भी ज़रूरी है कि आदमी वदनामी से वचे। कहते हैं कि वद अच्छा, वदनाम बुरा...'

जया पिछली सीट पर उससे जरा हटकर बादामी रंग के शाल में सिमटी-सी बैठी थी। गिरधारी को लगा कि वह ठंड अनुभव कर रही है। सूती शलवार-कमीज़ ही पहन रखी थी उसने। केवल एक शाल कितनी गरमी पहुंचा सकती है? स्वयं उसने गरम सूट और ऊनी स्वेटर पहना था। तब भी झील से आने वाले वायु के सर्द झोंके उसके शरीर में झुरझुरी-सी पैदा करते थे। यदि नवम्बर में यह हाल है, तो न जाने दिसम्बर-जनवरी में क्या होगा? वह बड़ा भाग्यवान है जो कश्मीर से वाहर 'सेट्ल' हो गया है! जाने गरीब लोग यहां रहकर कैसे जाड़े का मौसम गुज़ारते होंगे? उसने फिर जया की ओर देखा। वह शाल में ठिठुरी-सिमटी वैसे ही झील की ओर देख रही थी।

'पहला वेतन मिलने पर अपने लिए गरम शलवार-कमीज बनवाना।' उसके स्वर में सहानुभूति थी।

जया ने उत्तर में कुछ नहीं कहा। हां, झील से दृष्टि हटाकर वह सामने फैले बुल्वार्ड को देखने लगी।

'और फिर एक अच्छा-सा ऊनी कोट भी बनवाना। यह कश्मीर है, यहां गरम कोट होना ही चाहिए।'

'फूफी इसी महीने मेरे कोट के लिए कपड़ा खरीदने वाली थी।' जया ने कुछ डरते हुए कहा।

'फूफी, फूफी !' गिरधारी अपनी खीज नहीं छिपा सका—'न जाने तुम अपनी फूफी को क्या समझती हो ? मैं स्पष्ट कहूंगा कि तुम्हारी फूफी ने इसलिए तुम्हें एक साल के लिए अपने घर में रखा क्योंकि उसे बिना वेतन की दासी मिल गई थी। बंसी की भी ज़िद थी कि तुम वहीं रहो। और तुम्हारी फूफी में हिम्मत नहीं कि वह बंसी की बात टाल सके।'

गिरधारी ने लक्ष्य किया कि बंसी के ज़िक्र से जया तनिक 'नर्वस' हो गई। वह प्रसन्न हुआ कि निशाना ठीक जगह पर लगा है। उसने बात आगे बढ़ाई—'बंसी को तुम भले ही अपना भाई मानो पर लोग कैसे मान सकते हैं ? और वह भी तुम्हें अपनी बहन समझता है—मुझे इस पर शक है। तुम्हें भी वह 'स्कैंडल' मालूम होगा···अगर बंसी उसका मुंह बन्द न करता तो तुम्हारी फूफी ने चिल्ला-चिल्ला-कर सारे मुहल्ले को इकट्ठा किया होता···और वह लड़की भी कोई गैर नहीं बंसी के सगे मामे श्यामलाल की बेटी किश्नी थी।'

जया एक छोटी-सी चाबी से बायें हाथ पर लगी पालिश खुरच रही थी। किंतु ऐसा करके भी वह अपनी बेकरारी गिरधारी से छिपा न सकी। गिरधारी समझ गया कि उसके वाक्बाण से आहत होकर वह छटपटा रही है। उसे तनिक पछतावा हुआ। अगर उसने इस नासमझ लड़की को सही रास्ते पर लाने का बीड़ा उठाया है तो उसे इस प्रकार उसके मर्म पर प्रहार नहीं करना चाहिए था। 'फॉर-गेट एण्ड फारगिव' की बात तो ऐसे ही अवसर के लिए कही गई है।

'तुमने बी० ए० में कौन से सब्जेक्ट्स लिए थे ?' उसने विषय परिवर्तन करते हुए जया से पूछा।

'अंग्रेज़ी के अतिरिक्त, हिन्दी, हिस्ट्री और इकोनामिक्स।'

'मेरे ख्याल में तुम्हें स्कूल में नौकरी करने के साथ-साथ अपनी पढ़ाई जारी रखनी चाहिए। एम० ए० कर लेना चाहिए। इकोनामिक्स ठीक रहेगा, क्यों ?'

'नहीं, इकोनामिक्स ज़रा कठिन है। मैं हिन्दी में एम० ए० करना चाहती हूं।' जया का तनाव और उसकी घबड़ाहट दूर हो गई थी। उसका स्वर इस समय सहज था।

'चलो, हिन्दी भी ठीक रहेगी। अब हमारी ऑफिशियल लैंग्वेज़ हिन्दी ही है।' गिरधारी ने कहा और पैकट से सिगरेट निकालकर सुलगाई। एक लम्बा कश लेकर उसने फिर कहना शुरू किया—'बाबूजी ने तुम्हें बी०ए० तक पढ़ाया और इस प्रकार तुम्हारे प्रति जो उनका फर्ज था, उसे पूरा किया। मैंने सुना है कि तुम यूनिवर्सिटी में दाखला लेकर एम० ए० पढ़ना चाहती थी और इसीलिए तुम उनसे नाराज़ हो। लेकिन ज़रा सोचो तो ! साठ-सत्तर रुपये ही उन्हें पेंशन के रूप में मिलते होंगे। वह

तो उन्होंने मकान का आधा भाग किराये पर दिया है जिससे घर का खर्च चलता है। तुम्हारी पढ़ाई का अतिरिक्त खर्च वह कैसे उठा सकते थे? तुम्हें अपने पिता के साथ सहानुभूति होनी चाहिए। वे इस समय गरीब हैं, पर हमेशा ऐसे नहीं थे। खैर, तुम्हारी आयु अधिक नहीं। किन्तु मैंने उनके अच्छे दिन देखे हैं। मुझ पर तो उनकी विशेष कृपा रही है। मुझ जैसे यतीम लड़के को उन्होंने ही पाल-पोसकर बड़ा किया। ठीक है, मेरे पिता जी थोड़ी-सी जायदाद छोड़ गये थे। लेकिन उससे क्या होता है? अगर उन्होंने मेरी देखभाल न की होती, तो मैं आज भी दर-दर की ठोकरें खाता होता। मैं उनका एहसान कभी भूल नहीं सकता। उन जैसा परोपकारी आदमी संसार में दूसरा नहीं होगा। लेकिन आज जो उनकी हालत है, उसे देखकर रोना आता है। श्रीनगर आने पर जब मैं उनसे पहली बार मिला तब वह कमरे के कोने में बैठे ऊंघ-से रहे थे। मैली कमीज़ के ऊपर उन्होंने फटा-पुराना स्वेटर पहना था। पाजामा घुटनों के पास घिसकर जीर्ण हो गया था। सच मानो तो मैं उन्हें सहसा पहचान न सका। इतने दुबले हो गए थे कि मैं तनिक डर गया। ···तुम्हारी बात चली तो उन्होंने रोनी आवाज़ में कहा कि गरीब बाप से उसकी अपनी लड़की भी दूर रहना चाहती है।'

गिरधारी खामोश हो गया। बाबू जी से अपनी मुलाकात की बात याद करके उसका मन खिन्न हो उठा। जया की आंखें भी शायद भीग गई थीं। कुछ देर की चुप्पी के बाद उसने बिना गिरधारी की ओर देखे कहा—'बाबू जी का बोझ हल्का करने के लिए ही मैं दिल्ली जाना चाहती थी। वहां मुझे लगभग ढाई सौ रुपये वेतन मिलता। मैं सौ-डेढ़ सौ रुपये हर महीने बाबूजी को भेज सकती। मोहन भैया तो वहां थे ही। मुझे खाने-रहने पर भी कुछ खर्च नहीं करना पड़ता।'

'तुम बहुत सीधी हो।' गिरधारी को उसकी बात सुनकर सचमुच विस्मय हुआ—'किसी ने कुछ कहा और तुमने झट विश्वास कर लिया। दिल्ली में नौकरियां इतनी आसानी से नहीं मिलती हैं। मैं स्वयं दो साल वहां की धूल छानता रहा। फिर भी असफल होकर वहां से भोपाल चला गया। बोलो, तुम्हें किसने ये सब्ज़ बाग दिखाए?'

जया ने मुंह फेरकर उसकी ओर देखा किन्तु कहा कुछ नहीं।

'बोलो कौन हैं यह महाशय?' गिरधारी ने आग्रह किया।

जया फिर भी चुप रही।

'ओह, समझ गया!' गिरधारी मुस्कराया—'बंसी ने तुम्हें यह आश्वासन दिया होगा। क्यों?'

जया ने सिर हिलाकर हामी भरी।

कुछ क्षण के लिए गिरधारी निश्चय नहीं कर सका कि वह क्या कहे? उसने जल्दी-जल्दी सिगरेट के दो-एक कश खींचे और अधजले टुकड़े को नीचे फेंका।

फिर कुछ सोचकर उसने जया का हाथ अपने हाथ में लिया।

'जया' उसने कहा—'तुम्हारे बाबू जी ने मुझे पाला है। इस कारण मैं तुम पर उसी प्रकार अपना अधिकार समझता हूं जिस प्रकार तुम्हारा अपना भाई समझता। मैं जो कहूं, उसका बुरा तो नहीं मानोगी?'

जया ने दृष्टि उठाकर उसकी ओर देखा। दृष्टि में विस्मय और आशंका के मिले-जुले भाव थे।

'अंग्रेज़ी' में कहते हैं 'फिज़िशन हील दी सैल्फ'—गिरधारी उसका हाथ छोड़ कर कहने लगा—'बंशी अगर तुम्हें दिल्ली में ढाई सौ की नौकरी दिला सकता तो खुद यहां आकर डेढ़ सौ रुपये की नौकरी नहीं करता। अब उसकी यह नौकरी भी छूटने वाली होगी। इसीलिए वापस दिल्ली जाकर अपने पिता की रोटियां तोड़ने का इरादा रखता है। खुद दिल्ली जा रहा है, इसलिए तुम्हें भी अपने साथ ले जाना चाहता है।'

'यह बात उन्होंने मेरे भले के लिए ही सोची थी। मैं उन लोगों और विशेषकर फूफी का उपकार कभी भी भूल नहीं सकती। मैं लगभग एक साल उनके यहां रही। इस बीच उन्होंने मेरा कितना खयाल रखा! मेरे लिए दर्जनों कपड़े बनवाए। यह शाल भी फूफी ने ही मेरे जन्म दिन पर मुझे प्रेज़ेंट किया है।' जया ने शायद पहली बार गिरधारी का विरोध किया।

'मैं जानता हूं कि तुम्हारी फूफी तुम पर मेहरबान है। मगर प्रभा भी तो तुम्हारी ही बहन थी। उसके लिए तुम्हारी फूफी ने क्या किया? वह तुम पर इसलिए मेहरबान है, क्योंकि उसका लाडला पोता, मोहन का इकलौता बेटा बंसी तुम पर मेहरबान है। और बंसी तुम पर इसलिए मेहरबान है क्योंकि तुम सुन्दर हो।'

चौराहे पर खड़े पुलिस वाले ने तांगे को रोका। गिरधारी निश्चय न कर सका कि तांगे के इस प्रकार सहसा रुकने से जया को धक्का-सा लगा या उसकी बात सुनकर। वह दृष्टि उठाकर उसके चेहरे के भावों को पढ़ने की कोशिश करने लगा। उसका मुख लाल हो गया था—शायद तनाव के कारण। शाल सिर से सरक गया था। उसने ढीली चोटी करके बाल इस तरह गूंथे थे कि कानों के तीन-चौथाई भाग उसके नीचे ढक गए थे। जो भाग उबरे थे वहां सोने के दो छोटे-छोटे कुण्डल चमक रहे थे। होंठ भिंचे थे। गर्दन की रंगत ऐसी थी मानो दूध के गिलास में थोड़ा-सा चाकलेट घोला गया है। गर्दन में चिबुक के नीचे एक नीली रंग दिखाई दे रही थी जो इस प्रकार फड़क रही थी मानो जया के गले में अटकी कोई बात बाहर निकलने के लिए बेताब हो। प्रभा और जया का कोई मुकाबला ही नहीं—गिरधारी सोचने लगा। उसे याद आया कि बाबूजी के मन में उसका विवाह प्रभा के साथ करने की दबी लालसा थी। उसने ही इस विषय में कोई उत्साह नहीं

दिखाया था। यदि प्रभा के स्थान पर जया होती ! पर वह कैसे हो सकता था ? जया उससे कम-से-कम दस साल छोटी होगी। यदि उसकी अपनी आयु ही छः साल कम होती !······

जया को होश आया कि गिरधारी उसकी ओर एकटक देख रहा था। उसने सम्भलकर सिर को पुनः शाल से ढका और मुंह फेरकर दूसरी ओर देखने लगी। गिरधारी झेंप गया। झेंप मिटाने के लिए उसने चाहा कि तांगेवान से कोई बात करे, उससे पूछे कि वहां और कितनी देर रुकना है किन्तु तभी सिपाही ने तांगेवान को चलने का इशारा किया। तांगा फिर कोलतार की सड़क पर दौड़ने लगा। गिरधारी ने तांगेवान के साथ बात करने का विचार छोड़ दिया।

तांगा द्रुगजन पुल को पार करके होटल रोड पर आ गया था। अब पोलो ग्राउंड आयेगा, फिर गर्ल्ज-कॉलेज, फिर प्रताप पार्क और फिर अड्डा। गिरधारी सोचने लगा। अड्डे से उन्हें पैदल ही जाना पड़ेगा। उन तंग गलियों में कोई 'सवारी' कैसे जा सकती है ? न जाने साल भर के बाद वापस उस गन्दी बस्ती में आकर जया को कैसा लगेगा ? कहां डल झील के किनारे बुछवारा में फूफी का बंगला और कहां श्रीनगर के एक गन्दे मुहल्ले में उसके पिता का पुराना और बोसीदा मकान। यह जो तांगे पर उसके साथ गुमसुम बुत बनी बैठी है, यह सब अकारण नहीं हैं। पर ऐसी नासमझी का भी क्या मतलब ? दूसरे का बंगला कैसे किसी का अपना बंगला बन सकता है ? मगर गिरधारी का मन गवाही दे रहा था कि जया कुछ दिन बाद स्वयं समझ जाएगी कि वह गलत रास्ते पर जा रही थी। तब यह अवश्य उसका उपकार मानेगी। और बाबू जी ! वे बेचारे इतने प्रसन्न हो जायेंगे मानो उन्हें सारे संसार की दौलत मिल गई हो। उनका रोम-रोम उसे आशीर्वाद देगा। बाबू जी का उस पर कितना एहसान है ! इस एहसान से उऋण होने के लिए ही उसने जया को फूफी और बंसी के चुंगल से मुक्त किया। उसके लिए एक स्थानीय गर्ल्ज-स्कूल में नौकरी का इन्तजाम किया। उसे सम्मान और सद्वृत्ति का मार्ग दिखाया।

थोड़ी देर के बाद अड्डा आ गया और दोनों तांगे से उतरे। गिरधारी ने घड़ी देखी। अभी सवा बारह ही बजे थे। उसने जया के सामने किसी रेस्तरां में बैठकर चाय पीने का सुझाव रखा। जया ने अपनी सहमति जताई और न ही इनकार किया। वह चुपचाप उसके साथ-साथ चलने लगी। चलते-चलते गिरधारी ने भी कोई बात नहीं छेड़ी। वह अब भी बाबू जी के बारे में ही सोच रहा था। यदि वे न होते तो गिरधारी जुआरी, पियक्कड़, क्या नहीं बना होता ? और उन्हीं बाबू जी की अपनी बेटी ! उसे नहीं मालूम था कि बेईमानी का पैसा लोगों को इतना अन्धा बना सकता है ! एक मासूम और नासमझ लड़की की जिन्दगी से इस तरह खेला जा सकता है !

रेस्तरां का 'डाइनिंग हाल' इस समय लगभग खाली था। केवल एक कोने में कराकुली टोपियां पहने ठेकेदार जैसे दिखने वाले दो आदमी खाना खा रहे थे। फिर भी गिरधारी ने 'फेमिली केबिन' में बैठना ही उचित समझा। वह स्वयं चाय के साथ कुछ भी नहीं लेना चाहता था। जया से पूछा तो उसने भी चाय पीने की ही इच्छा प्रकट की। फिर भी गिरधारी ने चाय के साथ पेस्ट्री का ऑर्डर दिया।

थोड़ी देर के बाद बैरा चाय लेकर आया। जया चाय बनाने लगी और गिरधारी चुपचाप उसे ऐसा करते निहारने लगा।

'सरला भाभी अच्छी तो है?' जया ने उसे चाय की प्याली थमाते हुए पूछा।

'बड़े मजे में है। इतनी मोटी हो गई है कि तुम पहचान नहीं पाओगी।' गिरधारी मुस्कराया।

जया के होंठ भी खिल उठे। फिर उसने बेबी के बारे में पूछा। गिरधारी ने बताया कि वह बड़ी जहीन लड़की है। अंग्रेजी की अनेक कवितायें उसे जबानी याद हैं। फिर दोनों चुपचाप चाय पीते रहे। चाय के साथ दोनों ने पेस्ट्री का एक-एक पीस भी खाया।

'तुम्हें दुःख तो नहीं हो रहा है?' गिरधारी ने पूछा।

जया ने नजरें उठाकर उसकी ओर देखा। वह समझ न सकी कि गिराधरी किस दुःख की बात कर रहा है।

'यही, बंगले में रहने का सुख छिन जाने का दुःख। मगर विश्वास करो, मैंने जो किया तुम्हारे भले के लिए ही किया।'

जया मुस्कराई। उसे गिरधारी की बात का विश्वास न करने का कोई कारण दिखाई नहीं दिया।

चाय पीकर और बिल चुकाकर गिरधारी ने सिगरेट सुलगाई। एक कश लेने के बाद जया से पूछा—'अपने कपड़े-लत्ते और दूसरा सामान तुमने पैक ही कर रखा होगा?'

जया ने सिर हिलाकर इकरार किया।

'तो कल किसी को भेजकर वह सामान मंगवा लेंगे। जब वे लोग जान जायेंगे कि सोने की चिड़िया फुर्र हो गई है तो अपने हाथ मलेंगे। ऐसे लोगों को······'

जया सहसा खड़ी होकर अपनी कमीज की सिलवटें ठीक करने लगी। गिरधारी अपनी बात बीच में ही रोककर उसकी ओर देखने लगा। कमीज की फिटिंग बहुत अच्छी थी जिसने दुबली होने के बावजूद उसे मांसलता प्रदान की थी। कमीज़ की सिलवटें ठीक करके जया ने माथे पर रही लट को सुलझाया। इसके बाद वह शाल उतारकर उसे फिर अच्छी तरह से ओढ़ने वाली ही थी कि गिरधारी ने उठकर उसे अपनी बाहों में कसा और उसके होंठों पर अपने

जलते होंठ रख दिए।

यह सब केवल एक क्षण में हुआ और दूसरे क्षण गिरधारी सिर झुकाकर केबिन से बाहर आया। रेस्तरां से निकलकर इसी प्रकार सिर झुकाकर वह सड़क पर चलने लगा। उसे लग रहा था कि एक बहुत बड़ा पत्थर कहीं से आकर उसके दिल और दिमाग को दबा रहा है। जया भी उसके साथ नत्थी-सी होकर चल रही थी। काफी देर तक इसी प्रकार चलने के बाद गिरधारी ने खामोशी तोड़ी। 'जया !' उसने कहा—'मैं परसों ही वापस भोपाल जा रहा हूं। फिर कब कश्मीर आऊंगा, कुछ कह नहीं सकता। कम-से कम अगले दो वर्षों में बिल्कुल नहीं आ सकता। किन्तु मुझे विश्वास है कि तुम दूसरों को अपनी और अपने पिता की इज्जत के साथ खेलने नहीं दोगी। यकीन जानो, तुम लोगों की इज्जत और नेकनामी को मैं अपनी ही इज्जत और नेकनामी समझता हूं।'

जया चुपचाप उसकी बातें सुन रही थी।

तीसरे कालम में छपी एक तस्वीर

□ नरेन्द्र खजूरिया

'····वही बात हुई। सब किये-कराये पर जैसे पानी फिरने लगा। यह तो हमने नहीं सोचा था कि विना किसी विघ्न-बाधा के हमारी 'नवकलाकार मण्डली' का पहला नाटक, जिसे हम सब अपना पहला 'शाहकार' कहा करते थे, सफल हो जाएगा, परन्तु हमें यह भी गुमान नहीं था कि हरीश जैसा घुन्ना व्यक्ति बीच में यों अड़ंगा डाल देगा। हमने तो उसे बस यों ही अपने साथ रखा हुआ था, वरना नाटक के साथ उसका दूर का भी वास्ता नहीं था।

जैसा कि हमारी 'नवकलाकार मण्डली' के नाम से प्रकट है, हम सभी नौसिखिए थे। साहित्यिक भाषा में जिन्हें 'कल के कलाकार' और फिल्मी जबान में 'नये चेहरे' कहते हैं। मगर हमारा विश्वास था कि नाट्य-कला के क्षेत्र में अगला कल हमारा है।

१९६२ वर्ष के वे अन्तिम दिन थे। चीनी आक्रमण के घाव अभी हमारे सीनों पर ताजे थे। कुछ कर के दिखाने की भावना हम आठ-दस वेकारों के मन में भी मचल उठी। हमने सोचा कि कुछ तो हमें भी करना चाहिए। आखिर, हम इस निर्णय पर पहुंचे कि और कुछ नहीं तो एक नाटक ही खेला जाए। बैठे-बैठे नाटक-मण्डली का नामकरण भी हो गया—नवकलाकर मण्डली। चीनी आक्रमण की पृष्ठ-भूमि पर नाटक की कथा-वस्तु का ताना-बाना बुनने के लिए बैठकें प्रारम्भ हो गईं। करामात ही थी कि आठ-दस दिन में हमने पर्दा उठाने लायक नाटक लिख लिया। अब हमारे सामने दो समस्याएं थीं, थोड़े-बहुत पैसों का प्रबन्ध और रिहर्सल के लिए स्थान। ये दोनों वस्तुएं ऐसी थीं जिनका सच्चे कलाकारों के पास प्रायः अभाव होता है, परन्तु हमारी टोली में हरीश एक ऐसा व्यक्ति था जो कलाकारों की श्रेणी में नहीं आता था, अतः ये दोनों जिम्मेदारियां उसने सहर्ष अपने ऊपर ले लीं। अपने ही घर में एक कमरा उसने हमें रिहर्सल के लिए दे दिया और वादा किया कि आठ-दस दिन में वह दो सौ रुपये की टिकटें भी बेच

देगा। हरीश, जिसे हमने अपने बराबर कभी नहीं समझा, जिसकी गिनती हम कलाकारों में नहीं वरन् अपने प्रशंसकों में ही करते थे, आज उसने वह कर दिखाया जिसकी किसी को उम्मीद न थी। खुशी में हमने उसे कंधों पर उठा लिया, 'हरीश राजा, जिन्दाबाद ! राजा हरिश्चन्द्र जिन्दाबाद !'

विधिवत् रिहर्सल प्रारम्भ करने से पूर्व ड्रामा के पार्ट बंटने थे। वैसे तो हमने पहले से ही अपनी-अपनी पसंद के पार्ट चुन लिये थे। हमारे पास कलाकार की कला को मापने का एक पैमाना था—कला के लिए कलाकार का आत्म-त्याग। इस हिसाब से खन्ना हम सब में से बढ़-चढ़कर था। वह तीन बार कला के लिए घर से भागकर बम्बई अभिनेता बनने के लिए गया था। अब जम्मू में रहते हुए भी वह अभिनेता ही दिखाई देता था। अपनी असली भवें उसने कब की मुंडवा दी थीं। अब वहां केवल आइ-ब्रो पैंसिल से बारीक-बारीक चन्द्राकार रेखाएं ही खींचता था। यह उसका दावा था कि हमारे इस शहर में 'टाइट पैंट' का फैशन उसने प्रचलित किया था। इन सभी गुणों से स्पष्ट था कि हमारे नाटक में हीरो की भूमिका खन्ना को ही निभानी है। परन्तु इस बात की खानापूरी लोकतन्त्रीय ढंग से करना आवश्यक था, अतः नवकलाकार मण्डली की इस सम्बन्ध में एक बैठक हुई। मण्डली के मन्त्री ने, जो अपने पतले गले और जनाना नख-शिख के कारण ड्रामा की हीरोइन के चुनाव में अपने आपको बिला मुकाबला कामयाब उम्मीदवार समझता था, और पतली आवाज में कहा, 'हमारे इस नाटक में नायक की भूमिका किसके जिम्मे होगी ?'

हम सबने खन्ना की ओर देखा। उसने जैसे एक 'क्लोजअप' लिया। आंखों को तिरछा करके बाएं हाथ के अंगूठे को बड़ी अदा से होंठों पर फेरा। सहसा हमें लगा पल-क्षण में नायक जैसे खलनायक की मुद्रा में आ गया। उसके होंठ अंगूठे-भर खुले हुए थे। हमने जैसे हरीश के बोल सुने ही नहीं थे।

खन्ना खनका, 'क्या मतलब ?'

हरीश ने उत्तर दिया, 'यही कि इस नाटक में नायक की भूमिका मैं करूंगा।'

'किस बलबूते पर ?'

'मुझे हीरो का रोल पसंद है। अपने देश की रक्षा के लिए लड़ते-लड़ते मृत्यु को प्राप्त होना। वाह, वाह ! कितना उच्च आदर्श है।' हरीश में जैसे नाटक के नायक की आत्मा प्रवेश कर गई थी।

हम सब हैरान-परेशान दोनों की ओर टुक-टुक देख रहे थे। खन्ना इस अनहोनी घटना के धक्के से सम्भल नहीं पा रहा था। ऐसे समय उसे सिगरेट का बड़ा सहारा होता है। सिगरेट का कश लगाकर वह बोला, 'मिस्टर हरीश, इस ड्रामे के हीरो की मौत करने के लिए आर्टिस्ट को उस्तादों की मार खानी पड़ती है। स्टेट पर माथा घिसना पड़ता है। कला कोई कलाकंद नहीं, जिसे हर कोई खा-

पचा लेगा। नकली गोलियां खाकर भी अभिनय इस तरह करना होगा जैसे 'धायं-धायं' असली गोलियां सीने पर लग रही हों।' अपनी रान पर जोर से हाथ मार कर खन्ना ने जैसे धायं-धायं गोली चलने का 'इफेक्ट' दिया।

हरीश कह रहा था, 'ऐसा करना कोई कठिन नहीं। अभिनय करते समय यह ध्यान ही क्यों रहे कि गोलियां असली हैं या नकली। हमारे सामने नाटक के नायक का ऊंचा आदर्श है।'

खन्ना क्रोध में कांपकर बोला, 'हरीश, यह आदर्श किराए पर लाये हुए तख्तों से बनी स्टेज पर नहीं, देश की सीमा पर, रेत की बोरियों के बीच बने मोर्चे पर शोभा देते हैं।'

हरीश मानो आज वह पहला हरीश नहीं था, बोला, 'काश! हमारी स्टेज असली मोर्चा होती। मैं तब भी नाटक के नायक की पवित्र भावनाओं को मूर्त रूप देता। अपने देश की हिफाजत करता हुआ सदा के लिए इसी मिट्टी में सो जाता।'

सिगरेट फेंककर खन्ना खड़ा हो गया, 'ठीक है, यदि हीरो क़ा रोल तुम्हें ही करना है तो फिर हम ड्रामा देखने ही आएंगे···यदि ड्रामा हुआ तो···।'

खन्ना के इस तरह चले जाने का अर्थ था कि उसके साथ ही हमारे नवकलाकार मण्डली के मन्त्री उर्फ ड्रामा की हीरोइन भी भर्र से उड़ जाती।

दो साथियों ने बड़ी कठिनाई से खन्ना को रोका। उसे जैसे अपनी कला प्रकट न करने का सुअवसर मिल गया। उसने वह फर्राटेदार डॉयलाग बोलना शुरू किए कि हमने समझ लिया कि हमारा नाटक आज ही समाप्त हो जाएगा।

मैंने हरीश को बाहर ले जाकर कहा, 'भाई मेरे, तुम जानते ही हो अगर खन्ना रूठकर चला गया तो शो के दिन हमारी स्टेज पर बिजली नहीं जल सकती ···और हमारे शहर में पत्थरों की भी कमी नहीं है। तू हीरो का रोल खन्ना को ही करने दे।'

हरीश ने जैसे कड़वा घूंट पी लिया, बोला, 'ठीक है, इस नाटक में खन्ना ही हीरो का रोल करे, हम कभी-न-कभी, किसी-न-किसी स्टेज पर मन की साध पूरी कर ही लेंगे।'

मैंने कहा, 'अगर तू भी खन्ना की तरह रूठकर चला गया तब भी हमारा नाटक नहीं हो पाएगा। रिहर्सल के लिए हमारे पास अन्य स्थान नहीं है।··· तुमने दो सौ रुपये की टिकटें बेच देने का जिम्मा भी लिया है।'

वह मुस्कराकर शान्त भाव से बोला, 'इसका अर्थ यह नहीं कि मैं तुम लोगों को सहयोग नहीं दूंगा।'···

३० अक्टूबर, १९६५

मेरे सामने आज का समाचार-पत्र है। पहले पृष्ठ के तीसरे कालम में एक तस्वीर छपी है, जिसके नीचे लिखा है—चविण्डा का हीरो।

मेरी छोटी बच्ची मेरे पास चुपचाप खड़ी है। उसके हाथ में पकड़ी हुई कैंची की 'किरच, किरच' मुझे सुनाई दे रही है।

'पिता जी !'

'बेटी, अभी नहीं।'

वह फिर चुपचाप खड़ी हो जाती है। उसके मन की प्रतिक्रिया जैसे कैंची की इस 'किरच, किरच' के रूप में प्रकट हो रही हो। जब से समाचार पत्रों में देश पर बलिदान होने वाले वीरों के चित्र छप रहे हैं, वह लगातार उन्हें काट-काटकर अपनी एलबम पर लगाती जा रही है। आज, अखबार के पहले पृष्ठ के तीसरे कॉलम में जो तस्वीर छपी है, उसे काटने के लिए अब वह तीसरी बार आई है।

'पिता जी !'

'बेटी, अभी ठहरो।' मेरी आंखें जैसे उस चित्र से हटाए नहीं हटतीं।

'पिता जी, अखबार में लिखा है कि यह कैप्टन साहब जम्मू के रहने वाले थे। क्या आप इन्हें नहीं जानते ?'

मैं सोच रहा हूं 'हां' कहूं या 'ना'।

वह कह रही है, 'कितनी बहादुरी से यह आखिरी सांस तक अपने मोर्चे पर लड़ते रहे। पिता जी, मुझे बताओ न, यह कौन थे ? मुझे अपनी कॉपी पर लिखना है।'

चित्र पर आंखें गड़ाए हुए मैं कहता हूं, 'बेटो, एक बार हमारे साथ मिलकर इन्होंने एक ड्रामा खेला था। उस समय यह सिर्फ हरीश थे। आओ, तुम्हें उस ड्रामा की कहानी सुनाऊं···।'

बाघ

□ **महाराज कृष्णशाह**

आज भी उसे वैसी कोई आवाज सुनाई देती तो वह दोनों कानों में उंगलियां डालकर सब कुछ अनसुना करना चाहती। हवा का ज़रा भर भी तेज चलना और पत्तों का हिलना उसे और भी बेकरार कर देता—जाने क्यों इनकी सरसराहट किसी पुरानी बात को दोहराती-सी लगती। वह अपने आपको थकी हुई और टूटी हुई महसूस कर रही थी—इसलिए बहुत देर तक सोना चाहती थी - किन्तु हर पल वह अपने आपको किसी विचार से आक्रांत पाती। अपने लिए उसके पास कोई भी व्यस्त रहने लायक काम न था—सिवा इसके कि वह सोचे—सोचती रहे—चाहे धूप सुहावनी हो या पूस की ठंड—वह नहीं चाहती किसी को पता चले। उसने जान लिया है कि आखिरी कदम तक सफर नया और आदमी पुराना ही रहता है···आदमी अपना पुरानापन, अपना वासीपन किसी ओर ठेल देना चाहता है पर हर बार वह उसकी राह में दीवार बनकर आता है।···

तभी तो, यह दीवारें कितनी बदल चुकीं इस घर की; फिर भी इनसे आज तक वह गंध नहीं गई, 'दरअसल मैं ही ग़लत थी, बस एक पड़ाव को मंजिल समझती रही, ओफ़! कितना चलती आयी मैं···?'

वह सचमुच दौड़ी थी। बहुत तेज़। उसे फिर भी पिछड़ना पड़ा, क्यों?

उसकी दौड़ पिछड़ेपन से उपजी एक ऊबड़-खाबड़ पगडंडी से आरम्भ होकर विस्तृत बीहड़ों में भटक चुकी थी और आंखें बराबर जनपथ तलाशती बुझ-सी गई थीं···। वह आंखें बन्द किए घुटनों में सिर रखकर कमरे में बिछी टाट पर विस्मृत-सी पड़ी थी···। पास पड़ी चारपाई से कुछ चरमराहट-सी हुई। उसमें कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई···। चारपाई पर लेटी अधेड़ स्त्री ने मुंह से हलके से चादर हटाकर एक बार राज को देखा फिर उसांस भरकर सिरहाने में मुंह छिपा लिया। एक बार फिर धीरे से सिर उठाकर राज को देखा और अंततः क्षीण आवाज़ में पुकारा—"राज!"

राज ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। मां उसी प्रकार बोलने लगी, 'वहां क्या सुन्न-सी पड़ी है, यहां मेरे पास आकर बैठ जा।' राज बिना किसी उत्तर के चीथड़ों में लिपटी बीमार मां को एकटक देखती रही। सूखी गहरी गुफाओं-सी आंखें, मां राज की आंखों के बुझे स्वप्न से परिचित थी। कुंवारी का स्वप्न···एक जिन्दगी बनाने का स्वप्न। राज उठकर मां के समीप चली गई। मां ने अपनी सूखी प्राणहीन उंगलियां राज के बालों में डालने का प्रयत्न करते पूछा—'तुम उदास हो, राज ?'

'हां' राज ने ठंडा-सा जवाब दिया।

'क्यों ?'

'क्योंकि रोज ऐसा प्रश्न पूछना ही उदास बना देता है। तुम्हारा आराम करना बहुत आवश्यक है, मां।'···मां सोचती, 'कितना सच कहती है राज, मेरे सदा के लिए सो जाने से इसे छुटकारा तो मिलता।' दूसरे ही क्षण वह कांप उठती, 'नहीं-नहीं' मैं राज को अकेला नहीं छोड़ूंगी···मेरे आंखें मींचते ही यहां कुत्ते आकर मुंह साफ करना शुरू करेंगे। न जाने कितने इसी आशा से इर्द-गिर्द दुम हिलाते नजर आते हैं। पता तक न चलेगा, कब काट खायें। मेरी बच्ची बहुत नासमझ है अभी'···मां ने एक बार फिर राज की आंखों में देखा, भयंकर अंधेरी आंखें। मां की अपनी आंखें दिनोंदिन सिकुड़ती जा रही थीं, पानी की हल्की-सी धार पलकों के कोणों पर रुकी-सी दिखाई देती। सबसे अधिक परेशानी राज को तब होती जब कोई मां के स्वास्थ्य की खबर पूछने उनके घर आता। मां की निस्बत राज को लेकर ही अधिक बात चलती—'बेचारी के खोटे कर्म ! बाप का साया न उठता सिर से, अभी तक हाथ पीले होकर किसी घर की शोभा बनी होती···गंवार भी नहीं है···पूरी चौदह जमातें पढ़ी-लिखी···पर, उसके लिखे-पढ़े को कौन टाल सकता है ?' यह फिजूल की बातें राज को सोचने पर मजबूर करतीं। उसका सिर चकराने लगता। वह सोचती, महामारी फैली, न भयंकर अकाल पड़ा फिर भी अचानक इस घर को इन कुछ वर्षों में ही यह क्या हो गया ? भरपूर परिवार को कौन-सा बाघ खा गया ? उसे लगा जैसे उनके प्राणों को वह बाघ अपने पंजों में उछाल रहा है। उन्हें न खाता है न मार डालता है।

कुछ वर्ष पूर्व भी यही परिवार था—हंसता-खेलता। पुरानी स्मृतियों को मां की सिहरती देह दोहराती तो वे दिन उतने हंसते-खेलते न लगते—कसमसाहट और उमस की दुपहरी में कहीं-कहीं छायाओं के धुंधले आभास से देखने में आते। राज की सूखती देह का रेशा-रेशा अपने विगत की हरियाली की पनप को दोहराता—जो अब सड़ी घास की तरह दयनीय हो चुकी थी जिन अभावों में राज पली-बढ़ी, वे आज कुछ न लगते यदि उनका स्थायित्व इतना निश्चित और लम्बा न होता—किन्तु वे सुख के छोटे-छोटे क्षण···। उन मांसल क्षणों को वह टुकड़ा-

टुकड़ा चबाना चाहती—वह दुर्लभ क्षण ! जिनको बूंद-बूंद संचित कर उसने भिखारिन की तरह अपनी स्मृति की फटी-पुरानी झोली में किसी अनमोल पूंजी की तरह संभाले रखा है।

···उसकी डायरी के वे मैले घिसे-पिटे पृष्ठ जो अनेक ऐसे फूहड़ नगमों से भरपूर हैं जिन्हें वह मदमस्त गायक उसे वसन्त की झनझनाती तानों पर गा-गा कर सुनाता—उन गीतों को आज पढ़कर क्यों अजीब-सी बेचैनी होती है ? क्यों वह बचकाने गीत उसे बहुत परेशान करते हैं···

'तुम्हारे लिए हूं···
भरपूर तुम्हारा···
देखो तो क्या हूं
हवा की बस एक छुअन हूं'

सचमुच ! हवा की मात्र एक छुअन···सब बचपना, कोरी भावुकता— तो इसके बाद ? आज तक की जिन्दगी में क्या अहम घटा ? कितना बड़ा है इस जिन्दगी का जायजा ?···यह कमरा और कमरे की संक्षिप्त-सी वस्तुएं, आंगन से गुजरती पगडंडी, फिर स्कूल को जाती सड़क और पांच मील की दूरी पर कॉलेज में दम तोड़ती महत्त्वाकांक्षाओं के तीन वर्ष—फिर वापस घर···इसी कमरे में एक कारावास-सा भुगतती···मात्र एक लड़की होने की सजा ? किन्तु लड़कियां तो वे भी थीं—वे चन्द एक—जिन्होंने खुद राज की प्रतिभा का लोहा माना था—पर किस कारण से वे सब उससे बहुत आगे निकल गईं···?

क्या कारण है ?···

···है, इस हार की कालिख से पुती यह दीवारें और दारिद्र्य - यह कि वह एक मेहनत करने वाले बाप की अभागी बेटी है, जो रोग-ग्रस्त होकर भी आखिरी सांस तक काम में कोल्हू के बैल-सा जुता रहा—और अंत में कमजोर पड़कर उस बाघ का शिकार हो गया जो उसे हर कदम पर सुरक्षा का वादा देता था और वास्तव में उसे अपनी सत्ता के इतिहास के और संस्कृति के आवरणों में छिपे नृशंस पंजों से धीरे-धीरे चीरता रहता था। और एक दिन अंततः उसे खा गया था।

मां बाघ को पूजती है···उसे महान शक्ति समझती है—अपने स्वस्थ होने की उससे कामना करती है···और राज ? राज को अंधेरे में अचानक उसके खूनी पंजे और आदमखोर मुंह याद आता है और वह चिल्लाती है—मां···! मां अधखुली आंखों से अपने बिस्तर के करीब राज को टटोलते हुए कहती है, 'मैं जिन्दा हूं, बेटी!'

राज को विश्वास नहीं होता है, बिस्तर से उठकर मां के करीब जाकर उसकी नाड़ी पकड़कर देखती है, फिर उसके माथे पर हाथ फेरती है, उसे चूमती है··· अंधेरे में फटी आंखों से कुछ तलाशने लगती है। अचानक उसके हाथ बंध जाते हैं और वह किसी अज्ञात भय से कांपने लगती है। मां कहती है, 'सो जाओ, मैं

स्वस्थ हूं'···स्वस्थ और अस्वस्थ का अन्तर लगता—जब परिस्थिति काबू से बाहर हो जाती तो मां अस्वस्थ होती, जब वह काबू कर पाती···जब पीड़ा हद से गुजरकर भी सिर्फ इसलिए पीड़ा नहीं रहती कि वे आदी हो गए होते तो अस्वस्थ को स्वस्थ कहने में कोई फर्क नजर न आता। राज मान जाती, मां स्वस्थ है इसलिए सो जाती, और उसका स्वप्न···सिरहाने का गीला और गालों से चिपका हुआ फटा लिहाफ···। उसे कोई नींद में पुकारता 'पगली, रोती है। तू ही तो कहा करती थी, 'ऐसी ही जिन्दगी से अच्छा है आदमी मर जाये, पापा!'

तो पापा मर गए! तब इस घर की दीवारों से यह बरसों पुरानी पाप के शरीर की-सी गंध क्यों चिपकी हुई है? हल्के-हल्के पत्तों की सरसराहट से क्यों पापा के अन्तिम अस्पष्ट शब्द कानों में गूंजने लगते हैं—'बेटी, मैं जिऊँगा···ऐसे छोड़ के थोड़े ही जाऊंगा तुम्हें···तुम्हारे हाथ पीले करने हैं···।' और वह जीवनाभिलाषी फटी आंखों से पतझड़ में चिनारों से झरते पत्तों की चाप सुनते ही किसी शिशु की भांति सहम उठता—जैसे एक-एक पत्ते का गिरना मौत की निकटता का अहसास दिलाता हो—राज यह सब भूल जाना चाहती कुछ तो नया हो, कुछ ऐसा जो यह अतीत उससे छुड़ाये। इसी प्रतीक्षा में एक रोज···

सारा गांव सहमा हुआ-सा लग रहा था·· चारों ओर मौत का-सा सन्नाटा··· किसी-किसी जगह से एक अजीब-सी फुसफुसाहट इस भयंकर मौन को और भी भयावह बना देती···हर जगह से एक साजिश की-सी बू आ रही थी। सब पर बाघ का भय छाने लगा था···गहराने लगा था। किसी को नाखून से खुरचता··· कइयों को पंजे से छीलता और अधिकतर को अपने मुंह का ग्रास बनाता वह बकता चला जा रहा था···कुछ लोग बाघ को पूजकर प्रसन्न करते तो कोई डरकर भक्ति जताते किन्तु मन-ही-मन सभी उससे छुटकारा पाना चाहते। एक रोज मां बहुत उदास होकर राज से कहने लगी, 'तू डरती क्यों है बेटी···पूजा किया कर थोड़ी-सी, सारा डर भाग जायेगा।' राज मां की पूजा और 'पुजारी' की पूजा का अन्तर समझती थी···वह सोचती कितनी भोली है मां, फिर खामोश रहती···

···तभी सभी ग्रामवासी सहमत हुए—'बाघ एक खतरनाक जानवर है। हमारा जानी-दुश्मन, इसे मारा जाये।' पर कुछ लोग जो बाघ के आतंक को एक दैवी प्रकोप समझते थे, इस प्रस्ताव का विरोध करने लगे—लेकिन चूंकि अधिकांश लोग बाघ के जुल्म से तंग आ चुके थे इसलिए सभी ग्रामवासी बाघ को मारने का फैसला कर चुके थे।

इस बात को सुनकर राज बहुत खुश थी। मां को बहुत दुःख हो रहा था, लोगों को हो क्या गया है? ऐसी पवित्र शक्ति का विनाश···वह बाघ को धार्मिक शक्ति ही नहीं; जीवन-संरक्षक समझती थी···और बाघ? निश्चिन्तता ऐसी कि किसी स्थिति की परवाह किए बगैर बहुत मस्त होकर सो रहा था। अपार जन-

समूह उमड़ आया था। बाघ की आंखें खुलीं। उसने एक बार सारी भीड़ का जायजा एक नजर दौड़ाकर लिया। फिर अपनी जगह मन-ही मन मुस्कराते हुए अपने पंजे चाटने लगा—बाघ न दहाड़ा और न कोई प्रतिक्रिया दिखाई। कुछ लोग जो बाघ को वाकई मार सकते थे, बाघ के पास पहुंचे। बाघ ने पुरखों से हासिल की हुई कुछ खाल, कुछ बाघछाल उनके हाथ में सौंपते हुए कुटिल मुस्कान से देखा—वे लोग विजयी मुद्रा में क्रुद्ध भीड़ के आगे जोर-जोर से बोलने लगे, 'शांत हो जाओ, भाइयो! हमारा विश्वास सच निकला—बाघ अहिंसा का पुजारी है—वह आपकी शक्ति का सम्मान करता है। उसके लिए इतना प्रमाण काफी है कि उसने आप से न्याय की आशा की है…हमें आशा है उसके तुच्छ प्राण लेने से हम अहिंसावादियों को कोई भी लाभ न होगा—आज से वह हमारी देखरेख में रहेगा।'

सब ओर शान्ति और सन्नाटा-सा उतर आया था—लोग कुछ निश्चित नहीं कर पा रहे थे—राज दांत पीस रही थी। मां बीमार होकर भी यह दृश्य देखने, लाठी टेकती पहुंच गई थी—उसका पक्का विश्वास था कि बाघ को कोई नहीं मार सकता – सभी अनमने भाव से घिसटते पैरों घर लौट आए थे।

राज फिर मां के पास आकर बैठ गई—बैठे-बैठे उसकी आंख लग गई। उसने देखा सारा ही गांव भयावह स्थिति में किसी अनिश्चित दिशा में भाग रहा है—लोगों को किसी चीज की सुध-बुध नहीं…वह सिर्फ हांफ रहे हैं और भागते जा रहे हैं और उनके पीछे वही लोग जो बाघ से खाल और बाघछाल प्राप्त कर चुके थे, बाघ बने उनका पीछा कर रहे हैं। राज इस सारी स्थिति से घबराकर चीखने को हुई, उसकी आंख खुली और वह जोर से चिल्ला उठी, 'मां'!…किन्तु मां गहरी नींद में सो रही थी…।

चीड़ें झुकती हैं

□ अशोक जेरथ

शरदोई ने थोड़ा-सा ठहरकर मिचमिचाती आंखों से पीछे देखा। अपने कटे हुए सफर का अंदाज़ा लगाया फिर चश्मे के किनारे टिककर पीठ पर बधे कनस्तरों की रस्सी को ढीला करके, माथे पर उभरे पसीने के कतरों को साफ कर, अपनी कमीज के साथ पोंछ डाला। एक बार फिर वह बाकी रास्ते को पार करने के समय का अन्दाज़ा लगाने लगा। ऊपर से यहां तक, फिर दुद्दर तक और दुद्दर को पार करने के लिए अब तक बिताए हुए समय से कितना ज्यादा लगेगा? वह हर बार यहां आकर ऐसा ही हिसाब करता है। पिछला बिताया हुआ फासला सोचकर उसको राहत मिलती है क्योंकि उसके सफर का यही हिस्सा सबसे कठिन होता है।

सांय-सांय करती हुई चीड़ों के बीच में से होती हुई हवा शरदोई के जिस्म में ठण्डक भर देती है। धीरे-धीरे उसका पसीना सूख जाता है। खलदरे से भरे कनस्तरों को ठीक से चश्मे के पत्थरों पर टिकाकर वह नीचे झुककर अंजुली भर पानी पीता है और तब कमीज की जेब से खैनी निकालकर अपने दांतों में मलता है। बार-बार मिचमिचाती आंखों से ऊपर देखने की एक नाकाम कोशिश के बाद पल भर दुद्दर के रेखांकित नाले की ओर देखकर वह, बाकी बचा हुआ, दो तिहाई रास्ता काटने चल पड़ता है।

दस साल! हां, पूरे दस साल, एक तिहाई, दो तिहाई और पूरा रास्ता काटते उसे दस साल होने को आए। इस सारे समय को उसने बरसातों से गिना है। उसे पता है कि कब दुद्दर का पानी अपने शान्त बहाव को छोड़कर फुफकारने लगता है। हर बरसात के समय उसे तथा सन्दली को दुद्दर पार करने के लिए पुल का रास्ता अपनाना पड़ता है जिससे उनका फासला और बढ़ जाता है। वह तो उस उफनते पानी से भी नहीं डरता पर सन्दली भी फिर जिद करने लगती है। वह भी दो कनस्तर उठाकर उतना ही फासला तय करना चाहती है। शरदोई को कभी-कभी उस पर तरस भी आता है। शादी के बाद से ही वह खलदरे से भरे

इन कनस्तरों को ढोने लगी थी। पहली बार जब उसने खलदरे का भरा एक कनस्तर उठाया था तो उसका चेहरा सुर्ख हो आया था। सारे रास्ते में दस से भी ज्यादा जगह पर ठहरी थीं और जब ठेकेदार के अड्डे पर पहुंची थी तो उसके पांव छील आए थे। सारे कपड़ों और बालों पर खलदार बिखरा हुआ था। वह उसे देखकर हंसा था—'दुत्···साली नेपाली होकर···।'

वह शरमा गई थी। दूसरे दिन से जितनी जगह शरदोई रुकता वह भी उतनी ही जगहों ठहरती—उसका जिस्म थककर चूर ही क्यों न हो जाए, पर नेपाली होने का अहसास उसे आगे धकेलता रहता। फिर न जाने कब एक कनस्तर से वह दो कनस्तर उठाने लगी थी, उसे ठीक से याद नहीं। लेकिन यह खूब याद है कि जब पहली बार वह दो कनस्तरों के साथ ठेकेदार के अड्डे पर पहुंची थी तो ठेकेदार उसको काफी देर तक घूरकर देखता रहा था। उसकी नजरें उसके जिस्म के एक-एक हिस्से को टटोल रही थीं। फिर शरदोई को देखकर उसने कहा था—'भई, जोड़ी तो तुम खूब लाये हो—क्या बढ़िया माल लाया है।' उसकी आंखों में जाने क्या था?

'साले···अगर मेरा बस चले तो···?' शरदोई पल भर को बहक गया था। नहीं, नहीं! बड़े आराम से तीन रुपये एक कनस्तर के मिल जाते हैं; लड़ाई करने पर वह···वह आगे नहीं सोच सका। उसके आगे कुल जमा-पूंजी तैरने लगी थी। चार सौ लाला के पास, दो सौ ठेकेदार से लेने हैं और सौ रुपये लाला के मुंशी से ···उसने कुल हिसाब लगाया। जब एक हज़ार हो जाएगा तो वह संदली को लेकर नेपाल लौट जाएगा।

उसे अब लाल झण्डी नज़र आने लगी थी। यह उसके दूसरे पड़ाव की निशानी है—दुद्दर के इस किनारे की। यह काली मां के मंदिर की सबसे ऊंची झण्डी है जो काफी पहले ही नज़र आने लगती है। उसे लगता है कि दो तिहाई फासला उसने पार कर लिया है। कभी-कभी तो झण्डी दिखने से पहले ही उसे मंदिर में घंटी बजने का स्वर सुनाई देने लगता है। वह पीछे देखता है—संदली की धूमिल आकृति दिखाई देती है जो चश्मे के करीब आ पहुंची है। चश्मा चीड़ों की आड़ में गुम है। वह इत्मीनान से कदम आगे बढ़ा देता है।

मन्दिर के कलश दिखने के साथ ही वह घंटी की आवाज़ भी सुनता है। वह अनुमान लगाता है कि संदली अब चश्मे के करीब पहुंच चुकी होगी। उसके माथे पर पसीने की बूंदें तैर रही होंगी। वह कभी भी वहां ठहरकर पानी नहीं पीती। उसे लगता है कि वह चश्मे का पानी पीकर बीमार हो जाएगी। केवल अपनी कमीज भिगोकर मुंह को ठण्डा कर लेती है।

अब काली का मन्दिर उसे पूरी तरह दिखाई देने लगा है। वह बिना हाथ जोड़े ही नतमस्तक हो जाता है। वह मंदिर का कलश और झण्डियां देखकर ही

कभी अपना सर नहीं झुकाता। वह सन्दली से कितनी बार कह चुका है कि ये झण्डियां तो लोगों ने अपनी मिन्नत पूरी होने पर चढ़ाई होंगी और कलश मंदिर नहीं होता। मंदिर काली माई के कारण है अत: जब तक उसे मंदिर के अन्दर स्थापित मूर्ति की झलक नहीं मिलती वह झुकता नहीं। संदली को उसका फलसफा समझ नही आता था फिर भी वह मंदिर पहुंचने पर ही सर को झुकाती थी।

मंदिर की सीढ़ियां उतरकर आंगन में रखे बेंच पर उसने कनस्तरों को रखा और हाथ धोने की टंकी की ओर चल पड़ा। यह उसका रोजमर्रा का काम था। यहां वह संदली के पहुंचने तक सुस्ता लेता था फिर पेटभर भुने चने खाता, संदली को खिलाता और पानी पीकर आगे के सफर पर निकल पड़ता।

मंदिर के आंगन में ही शहतूत के फैले हुए पेड़ के नीचे मंच पर एक जोड़ा बैठा हुआ था। पुरुष अधलेटा-सा पुस्तक पढ़ रहा था और स्त्री उसके कंधे से सिर टिकाए आंखें बंद किए सुस्ता रही थी। उसने अपनी टांगें समेट रखी थीं, उसकी साड़ी टखनों तक ऊंची हो आई थी।

शरदोई ने हाथ धोते हुए उस ओर देखा। औरत के टखने खूब चिकने होकर चमक रहे थे। उसे संदली के फूले हुए टखने याद आने लगते हैं। स्त्री थोड़ा-सा गुनगुनाती है तो पुरुष उसे थपथपाता है और फिर पढ़ने में लग जाता है। शरदोई कनखियों से देखने लगता है। स्त्री के टखनों का मांसल भाग और उभर आया है। वह तिनके से अपना दांत खुरचने लगता है। किन्तु दांत खुरचते-खुरचते भी उसका पूरा ध्यान स्त्री की ओर लगा रहता है। वह सोचने लगता है कि लोग क्यों दूर-दूर से पहाड़ देखने आते हैं? उसे तो इन पहाड़ों में अपना जीवन बिताकर भी कुछ नहीं मिला। वह सुनता है कि पहाड़ों पर खुशबू फैली है, ठण्डी और साफ हवा है – चीड़ों के नीचे जीवन बिखरा पड़ा है पर उसे तो केवल अपने पसीने की बू आती है—खुशबू है तो केवल संदली की जब वह बहुत पास होती है। ऐसी खुशबू क्या पहाड़ों में··· फिर उसका ध्यान भटकने लगता है। जब संदली नयी-नयी आई थी तो उसके भी टखने इसी तरह चिकने और एकसार मांसल थे। पांव बिलकुल साफ थे और चेहरा चीड़ के ताजा फलों की तरह एकदम ताजा। उसका ध्यान फिर औरत की ओर चला जाता है। उसका मर्द उसे थपकी देते हुए उसके गालों को सहला देता है। उसे संदली के पहले की लालीयुक्त गाल याद हो आते हैं। लेकिन उन्हें कभी भी किसी के सामने उसने छूने नहीं दिया। वह एकान्त में उसे मिलने के लिए तरस जाता था। वह कभी भी ऐसे नहीं बैठे थे। उसके अन्तर में कुछ चटक गया था। बहुत पहले का बैठा हुआ कुछ—जिसे वह केवल महसूस करता था, पहचानता नहीं था। पिघलकर धीरे-धीरे उसके अन्तर में जमता रहा था ···अब कुछ अजीब-सी हलचल करने लगा था। उसने खैनी की डिबिया निकाली और थोड़ी-सी खैनी अपने दांतों में मलकर डिबिया फिर अपने फटे कुर्ते में रख-

कर बेंच के पीछे थूकने लगा। थूक की लार उसके कुर्ते को लाल कर गई थी। अनमने ढंग से उसे साफ किया तो उसे लगा कि अन्तर में कुछ बहता-बहता सहसा थम गया है। उसे पकड़ने की उसने कोशिश नहीं की। उसने देखा पुरुष ने अपनी पुस्तक नीचे रख दी है और दोनों हाथों से अपनी स्त्री का सिर पकड़कर उसके मुंह की ओर झुक आया है। स्त्री कुनमुनाकर आंखें खोल देती है···फिर मुस्करा देती है। वह उसकी ओर झुक जाता है। शरदोई के अन्तर में जमा हुआ-सा कुछ फिर से बहने लगता है। मंदिर के रास्ते से संदली का आकार प्रकट होने लगता है। धीरे-धीरे सरकती हुई वह मंदिर की सीढ़ियों से उतरकर शरदोई के पास खड़ी हो जाती है। शरदोई की नजरें उसके शरीर को परखने लगती हैं। उसे लगता है कि उसका चेहरा पिलिया गया है। उसकी स्कर्टनुमा मिनी धोती से बाहर निकले टखनों पर मैल की परतें चढ़नी शुरू हो गई हैं। एड़ियां कहीं-कहीं से उखड़ रही हैं। उसके पसीने से नम कुर्ते में झांकती उसकी छातियों के मुंह बार-बार गीले कुर्ते से टकराकर लौट रहे हैं। उसका ध्यान फिर स्त्री की खुली टांगों की ओर चला जाता है। संदली ने कनस्तरों को अपनी पीठ से उतार दिया है और स्वयं सुस्ताने लगी है। उसका चेहरा सुर्ख हो आया है, गर्मी और थकान से। शरदोई उसे घूरता रहता है। वह उसके यूं एकाएक देखने से अनमनी हो जाती है—'क्या है?' वह भड़क उठती है। शरदोई चेत जाता है। फिर उठकर गिलास से उसे पानी देता है—'हाथ-पांव धो लो।' वह उसे थोड़ा रुकने को कहती है तो शरदोई कनखियों से जोड़े की ओर देखने लगता है। स्त्री ने अपनी टांगें समेट ली हैं पर अपना मुंह पुरुष की छाती पर रख दिया है। शरदोई का हाथ सहसा संदली के कंधे पर जा लगा है। वह कुछ देर यूं ही बैठा रहता है फिर उसके कंधे को अपनी ओर दबाता है तो वह उसका हाथ झटक देती है। उसका मुंह सुर्ख हो आया है। शरदोई कनखियों से देखता है। उसका जी करता है कि वह भी संदली के गालों को थपथपाए और संदली उसकी गोद में सिर रखकर सो जाए पर···वह उठता है और पानी का गिलास ले आता है। संदली हाथ-मुंह धोकर पांव की ओर झुक जाती है। उसकी छातियां खुले गले से झांकने लगती हैं। शरदोई सोचने लगता है कि सामने वाली ने जरूर कोई 'ऐसी-वैसी' बनियान पहनी होगी।

चने खाने और पानी पीने के बाद संदली कनस्तरों को उठाने के लिए उठती है तो वह उसे कंधे से पकड़कर रोक लेता है। संदली उसे बड़े अजनबी ढंग से देखती हुई उसकी नजरों का पीछा करती है। उसकी नजरें जाकर शहतूत के नीचे बैठे जोड़े पर चिपक जाती हैं। वह आंखें उगालकर शरदोई को देखती है जैसे उसके साथ कोई अनहोनी घटना घट गई हो फिर जोर से 'थुच' कर थूकती हुई खलदरे के कनस्तरों को सम्भालने लगती है। शरदोई अभी भी भीगा-सा उसे पकड़े हुए था। वह आंखें तरेरती हुई उसके हाथ को धकेल देती है और कनस्तरों

को उठाकर चलने लगती है। शरदोई उसे खोई आंखों से देखता रहता है। जैसे उसका कुछ उससे अलग हो गया है। निराश घिसटता हुआ वह कनस्तरों को सम्भालता हुआ वेंच के पीछे 'थुच' करके लार फेंकता है और मरी-सी उदास चाल से दुद्दर की ओर चलने लगता है। उसके कानों में ठेकेदार के शब्द गूंजने लगते हैं —'क्या माल लाया है?'

धुंध

□ **अलंकार**

घोड़ों ने ज़मीन छोड़कर आसमान पर उड़ना शुरू कर दिया था, लोगों की जहां भी नज़र जाती घोड़े ही घोड़े दिखाई देते, आसमान पर उड़ने वाले सभी परिन्दे ज़मीन पर उतर आए थे लेकिन कोई भी शिकारी उनका शिकार नहीं कर रहा था। परिन्दों ने अपने घोंसले सड़कों और घरों में अपनी मर्जी मुताबिक खड़े कर लिये थे, लोगों को पता था, उन्होंने एक भी परिन्दे को छेड़ा तो वे सभी उड़ जाएंगे और घोड़ों के साथ टकराते ही घोड़े अपना संतुलन खो देंगे और सीधे उनके सिरों पर आकर गिरेंगे।

हर तरफ चुप्पी छाई हुई थी, कोई किसी से बात नहीं करना चाहता था। सभी डर-डर कर जी रहे थे।

रतन को डर नहीं लग रहा था।

उसके सामने तारकोल से बिछी सड़कें, उस पर गिरती घोड़ों की परछाइयां भाग रही थीं, उन्हीं परछाइयों में से किसी एक की लगाम पकड़ने की कोशिश रतन कर रहा था लेकिन लगाम तक हाथ पहुंचने से पहले ही लगाम हाथ से फिसल जाती थी।

ट्रेनें चली जा रही हैं, पटरियों का लोहा गर्म होता जा रहा है, पत्थर टूटते जा रहे हैं, समुद्र का पानी और गहरा होता चला जा रहा है। लोग एक-दूसरे के जिस्मों को फलांगते बढ़ते जा रहे हैं···और रतन यही सोचता रहा होगा कि सबसे पहले उसकी छाती पर पैर रखकर कौन गुज़रा। ट्रेनें हिलने लगी थीं, उसे लग रहा था उसके सामने ट्रेनें एक-दूसरे के साथ पूरी ताकत के साथ टकराएंगी, तब उनका नक्शा हड्डियों के पिंजर की तरह बन जाएगा और उसमें से निकाले लोग···।

भूख के पंजे रतन के पेट में तैरने लगते तो आठ-दस पानी के गिलास उतार कर वह उन्हें कुछ समय के लिए सुला देता, फिर वैसे ही प्लेटफार्म की बेंच पर

बैठा सोचता रहता है अब उसे कहां जाना है? कहीं कोई रास्ता सुझाई नहीं देता। हर रास्ता घूम-फिरकर किसी स्टेशन के साथ जा लगता है। वही शोर, वही जानी-पहचानी आवाजें, वही स्ट्रेचर पर खून से लथपथ लाशें, वही खतरे के सिग्नल, वही खतरे की लाल बत्ती···।

किसी बीस मंजिला इमारत पर आग लग गई थी। फायर ब्रिगेड की गाड़ियां घंटियां बजाते भाग रही थीं। आग रुक नहीं पा रही थी। आसपास की सभी इमारतों में रहने वाले लोगों के दिलों में सुराख उभर आए थे, धुआं पूरे शहर में फैलकर हवा का रंग काला किए जा रहा था। अंधेरा घिर आया था, रतन को एक अरसे से इसी अंधेरे का इन्तजार था।

मलाड स्टेशन आ गया था। जिनके पास छाते नहीं थे वे वहीं रुक गये। रतन नहीं रुका, उसके सामने एक मील लम्बा रास्ता था, सड़क सीधी हो जाए तो उसे अपनी बालकनी दिख जाती है। जहां हमीदा पोलियो से ग्रस्त चार साल की कुसुम को गोद में बिठाए घंटों से उसका इन्तजार कर रही होगी। उसे देखते ही हाथ ऊपर उठा देगी और कुसुम को बिस्तर पर लिटाकर खड़ी हो जाएगी।

रतन को पता है इससे पहले उसने इधर के कई चक्कर लगाए होंगे, उसे घर की नौकरानी से सब पता चल जाता है। हमेशा उससे कहती है—मेरा मर्द पता नहीं अभी तक क्यों नहीं आया, पता नहीं इतनी देर से क्यों आता है, पता नहीं किस-किस के पास जाता है, अपनी सारी कमाई पता नहीं किसको दे आता है, फिर झुंझलाहट में उसने उसके कपड़े—फटे, पुराने, उधड़े हुए — इकट्ठे कर कोने में रख दिए होंगे, टूटी हुई अटैची से उसकी तस्वीर निकाली होगी। उस पर पानी का टीका लगाया होगा और उसे चूमकर छाती पर रख घंटों लेटी रही होगी। फिर उसका ध्यान दूर घोड़ों की तरफ चला गया होगा। किसी दिन यह घोड़े ज़मीन पर उतर आएंगे। आसपास बसे सभी परिन्दे फिर से उड़ना शुरू कर देंगे, लोगों के दिलों में बसा हुआ डर उतर जाएगा। तब रतन उसे यहां से लेकर चला जाएगा। अपनी एक छोटी-सी खोली होगी, जिसमें बैठकर वह रतन का इंतज़ार करेगी, उसे अपने हाथों से खाना खिलाएगी। तब रतन की आंखों से आंसू उतरने लगेंगे। इतना सोचने पर वह फफक-फफककर रो दी होगी और छाती पर रखी तस्वीर उसके होंठों से जा लगी होगी—मुझे भगाकर ले जा रतन, मुझे भगाकर ले जा। इससे पहले कि मेरा खून नीलाम हो जाए मुझे भगाकर ले जा। मैं तेरे साथ घास और जानवरों का गोबर खा-खा जिंदा रह लूंगी, मुझे इन चमारों के बाजार से ले जा।

दो साल बीत गए हैं···कापड़िया परिवार में रतन अखबार से पता उतार कर पहुंचा था, उनकी बेटी पोलियो का शिकार हो गई थी। उन्हें एक ऐसे पढ़े-लिखे आदमी की ज़रूरत थी जो रोज सुबह कुसुम को एक्सरसाइज करवाने हाजी अली ले जाए और उस दौरान उसके खाने-पीने और सफाई का ध्यान रख सके,

उन दिनों रतन के पास रहने के लिए कोई जगह नहीं थी, इसलिए कांट्रैक्ट में उसे सोने के लिए बालकनी दी गई थी।

साथ के फ्लैट में किसी मारवाड़ी सेठ की रखैल रहती थी, उसकी पन्द्रह-सोलह साल की दूध की तरह सफेद बेटी थी, उसका नाम हमीदा था। उसने आज तक स्कूल का मुंह नहीं देखा था, उनको इस शहर में आए चार-पांच साल हो गये थे परन्तु हमीदा ने इस बिल्डिंग के आसपास घिरे बाज़ारों के सिवा और कुछ नहीं देखा था।

'रतन तुमने अपने मुल्क में शादी तो नहीं की न ?'

'नहीं !'

'तुम मर्दों का क्या भरोसा ! कहते कुछ हो, करते कुछ हो। एक बात कहे देती हूं अगर तुमने धोखा दिया न तो मैं...।'

'क्या करोगी ?'

'जिस दिन तुम मिल गए तुम्हारा खून कर दूंगी और खुद भी तुम्हारी लाश पर गिरकर जान ने दूंगी।'

'हमारी ज़िन्दगी तो समुद्र में फैले नमकीन पानी की तरह है हमीदा, पीने की बूंदें निकल आईं तो तुम्हारी हैं, नहीं निकलीं तो ज़हर—कोई भी पी ले।'

रतन की बात हमीदा के सिर से निकल गई।

'मेरी बात मान ले रतन, तुम्हारे मुल्क में चलते हैं, वहां सब हैं—मां-बाप, भाई, बहन सबके साथ रहेंगे, जीना कितना आसान हो जाएगा।'

'तुम मुसलमान हो, मैं हिन्दू। वहां पर ऐसा कभी नहीं हो पाएगा।'

'फिर और कहीं चलते हैं, किसी छोटे शहर, किसी गांव, किसी पहाड़ पर, वहां सस्ते में सब हो जाता है। इस शहर से भाग चलो रतन इस शहर से...।'

'नहीं हमीदा, मैं इस शहर से भागकर कहीं नहीं जाऊंगा, मैं यहां भागकर आया हूं और अब फिर भाग गया तो जिन्दगी भर भागता ही रहूंगा। न कोई रास्ता दिखेगा, न कोई मंजिल दिखेगी। मैं दिशाहीन होकर जीना नहीं चाहता।'

'तू कौन-सी ज़िन्दगी जीना चाहता है, रतने ? जिस ज़िन्दगी में प्यार के फूल खिलते हों, वही ज़िन्दगी होती है। मुझे सारे भागने वाले लोग सड़े-गले, बीमार लगते हैं। कुसुम को पोलियो इसलिए हुआ क्योंकि इसको समय पर टीका नहीं लगाया गया, जिस मां-बाप के पास बच्चों के लिए वक्त नहीं उसे तू ज़िन्दगी कहता है, तेरी गोद में पली यह बच्ची किस रास्ते पर भागेगी ? मुझे तो लगता है तेरे जिस्म के अन्दर भी पोलियो के निशान हैं जो तुझे दिख नहीं रहे। मैं तेरे हाथ जोड़ती हूं, रतने चल, यहां से भाग चल। एक दिन यह पूरा शहर श्मशान बन जाएगा, उससे पहले...।'

'उससे पहले मेरे बोए हुए बीज ज़मीन में फैलना शुरू कर देंगे, उससे पहले

मेरे सींचे हुए पेड़ बहुत बड़े दरख्तों में बदल जाएंगे, उससे पहले उन दरख्तों पर तरह-तरह के फल उग आएंगे, उससे पहले उन फूलों की खुशबू मेरे पूरे जिस्म में फैल जाएगी। तब शहर में एटम-बम ही क्यों न गिर पड़े, तब शहर में आग ही क्यों न लग जाए, तब शहर श्मशान घाट ही क्यों न बन जाए…।'

हमीदा तौलिया पकड़े दरवाज़ा खोलकर खड़ी थी। उसकी गालों से आंसू के कतरे गले तक उतर आए थे। रतन ने तौलिया ले उसके आंसुओं को पोंछ डाला।

'तू एक छाता क्यों नहीं ले लेता ?'

'यह सब खरीदने के लिए पैसे कहां हैं, हमीदा ?' खरीदने से उसे याद आया, हमेशा की तरह आज सुबह भी नेल-पालिश लाने की फरमाइश उसने की थी, उसकी यह आदत थी सुबह कुछ न-कुछ लाने के लिए कहने की परन्तु लौटने पर कभी उसके बारे में पूछती नहीं थी।

'तू सारा दिन जिनका काम करता है, क्या वह इतने पैसे भी नहीं देते ? फिर तू काम क्यों करता है ?'

'फिल्म लाइन में शुरू में कोई किसी को पैसे नहीं देता, देंगेतो इस तरह देते हैं जैसे कोई एहसान कर रहे हों।'

'मैं तो हार गई तुम्हें समझाते-समझाते। भूखा रहेगा, सड़कों पर सोएगा, सारा दिन चलता-चलता बेहाल हो जाएगा, फटे-पुराने घिसे हुए कपड़े पहनेगा, पर काम फिल्म लाइन में ही करेगा। पता नहीं किन हड्डियों का स्वाद तेरी जीभ को आ लगा है।'

रतन ने हल्के से हंसकर हमीदा के गाल पर हाथ फेर दिया—'भूखा मैं रहता हूं, गाल तुम्हारे सूखते जा रहे हैं, खाना खाया ?'

हमीदा का पैर जैसे छुरी की धार पर कट गया हो, उसकी आंखों में आंसुओं का समुद्र फैलने लगा। इससे पहले कि समुद्र अपनी हदें तोड़कर फैल जाए, वह गोली की तरह रतन के सीने से जा लगी और चीख-चीखकर रोने लगी—'मैंने तुम्हें अपने आंसुओं की तरह आंखों में छुपाया हुआ है रतन, मुझसे एक कौर गले से नहीं उतारा जाता। मुझे सारा दिन अपने आंसुओं के शीशे में तुम्हारी शक्ल घूमती हुई दिखाई देती रहती है, किस-किस पत्थर पर चलते तुम्हारे पैरों में छाले पड़े होंगे, किस धूप की सुई तेरे जिस्म में घुस गई होगी, किस जुबान की तलवार से तुम्हारा दिल कट गया होगा, किन इमारतों में बसे हुए लोगों को देखकर तुम्हें अपना आप रेगिस्तान की जलती हुई रेत में तपता हुआ दिखा होगा, किन लोगों को रास्ते में खाते-पीते देखकर तुम्हारे गले में गर्म लोहे के कील अटक गए होंगे—मुझे सब दिख जाता है।'

रतन के साथ मिलकर हमीदा भी गीली हो गई। दोनों ने एक-दूसरे को बांहों

में कसा हुआ था, कुछ देर उनमें से कोई नहीं बोला।

'मुझे भी सब दिख रहा है हमीदा, जिन आंखों से आज दर्द के दरिया बह रहे हैं, वहां खुशियों की लहरें भी ज़रूर आएंगी, जिस गले से आज कौर नहीं उतर रहे, वहां अमृत के प्याले जरूर छलछलाएंगे। जिन आंसुओं के शीशे में तुम्हें सड़कों का रतन दिख रहा है, वहां तुम्हें सपनों का रतन भी दिखाई देने लगेगा। जिन पत्थरों पर चलते मेरे पैरों में छाले पड़े हैं, आने वाली नसलों के लिए वह पत्थर मुलायम हो जाएंगे, जिस धूप की सुइयां मेरे जिस्म को चुभती रही हैं, उस धूप का रंग बदल जाएगा। जिस जुबान की तलवार से मेरे दिल कटते रहे हैं, वह तलवारें टूट जाएंगी, जिन इमारतों को देखकर मुझे अपना-आप जलता हुआ रेगिस्तान दिख रहा है, उन्हीं इमारतों में मेरा भी एक घर होगा। जिन लोगों को खाते-पीते देखकर मेरे गले में गर्म लोहे के कील अटक जाते हैं, मेरे जैसे लाखों लोगों के गलों में वह कील बाहर निकल आएंगे, मुझे भी सब तुम्हारी आंखों में, आंसुओं में दिख रहा है।'

'वह दिन कब आएगा, रतन ?'

'जिस दिन आसमान पर उड़ने वाले घोड़े ज़मीन पर उतर आएंगे। जिस दिन गलियों और बाजारों में परिंदे अपने घोंसले खुद तोड़कर आसमान पर उड़ने लगेंगे। उस दिन का इन्तजार करो हमीदा, उस दिन का इन्तजार करो।'

रात के सन्नाटे में भी ट्रेनें सीटियां बजाती एक-दूसरे के पीछे भाग रही थीं।

रतन अपनी अटैची और बैग पकड़े ट्रेन पकड़ने के लिए प्लेटफार्म पर दौड़ रहा था लेकिन कोई भी ट्रेन वहां रुक नहीं रही थी। नंगे प्लेटफार्म पर न जाने कहां से पागल कुत्तों का जत्था पहुंच गया, कि रतन के पीछे हो लिया, रतन जिस गली-सड़क से गुजरता कुत्ते उसके पीछे दौड़ते दिखाई देते।

'मुम्बई—'

'हमार आहे—'

चारों तरफ से जुलूस उसकी तरफ आता दिखाई देता है, उन्होंने हाथों में लाठियां और पत्थर पकड़े हुए हैं। रतन उनकी लपेट में आ जाता है। जुलूस लाठियां और पत्थर उस पर बरसाकर आगे बढ़ जाता है, तब कुत्ते उसके जिस्म का एक-एक हिस्सा नोचने लगते हैं। वह लहूलुहान हो जाता है।

उसकी नींद टूट जाती है। आंखों से आंसू के कतरे उसकी हथेली पर आ गिरते हैं। पसीने से उसकी चद्दर भीग जाती है।

समुद्र अपनी हदें तोड़ पूरे शहर में फैल रहा है। मछुआरों की किश्तियां डूबने लगी हैं, समुद्र में बहते जहाज हिचकोले खा रहे हैं, सभी जान बचाने के लिए जहाजों से निकलना चाहते हैं लेकिन कहीं से निकलने का रास्ता उन्हें नजर नहीं

आ रहा।

पूरा शहर पानी में डूब रहा है, रतन तैरते-तैरते बेहोश हो रहा है, कहीं कोई किनारा उसे नज़र नहीं आ रहा। एक बहुत बड़ा मगरमच्छ उसे निगलने के लिए मुंह खोलता ही है कि रतन चिल्लाता है—'हमीदा···'

'क्या हुआ रतन ?' हमीदा रतन की पीठ, माथा, छाती सहला रही थी—'कोई डरावना सपना देखा ? मैं कब से तुम्हारे पास बैठी हूं, उठकर बैठ जा, देख बरसात के बाद कैसी धूप निखर आई है।'

रतन फिर भी अपने आप में लौटा नहीं था, लम्बे-लम्बे सांस लेता हुआ बोला—'मुझे दिखा, एक मगरमच्छ मुझे निगलने के लिए मेरी ओर बढ़ रहा है।'

'तब तुम्हें मेरी याद आई, रतन!' हमीदा खुशी से उसके हाथ चूमने लगी—'तुम्हें मेरी ही याद आई, रतन ! तुम्हारी इस बात पर मैं पागलों की तरह नाचने लगूंगी, मेरी रूह तुम्हारे जिस्म में समा गई है।'

'हां हमीदा ! जब कभी मेरे अन्दर के धागे टूटने लगते हैं तब केवल तुम्हारी अंगुली का सहारा ही उन धागों को टूटने से रोकता है।'

'खुदा ने तुम्हें अपने गांव से उखाड़कर मेरे लिए भेजा था रतन ··तू इतना कमजोर नहीं, तू समझ मगरमच्छ ने मुझे निगल लिया था और हाथ में तलवार ले तूने मगरमच्छ को मार डाला।' हमीदा ने रतन को बांहों में भरकर कहा—'मैं तो तेरे पास हूं मेरे सपाहिया, उठ लड़ाई के भोंपू बज रहे हैं, जा, उस लड़ाई में शामिल हो जा, मैं खुदा से दुआ करूंगी—तुझ पर चलने वाले सभी तीर मेरी छाती पर आ लगें।'

'देख मेरा जिस्म पीला होता जा रहा है।'

'यह पीलापन तुम्हारे अन्दर का नहीं, बाहर से आती उस रोशनी का है जिसकी सुबह तुम्हारी जिन्दगी में हो रही है। इसके बाद यह पीलापन तेज धूप में बदल जाएगा। उसकी रोशनी मुझे आती हुई दिखाई दे रही है। देख मेरी आंखों में. अपनी जिन्दगी में आने वाली रोशनी मेरी आंखों में देख।'

'वह दिन कब आएगा हमीदा ?'

'जिस दिन गलियों और बाजारों में से यह गंदा पानी सूरज सोखकर साफ कर देगा। जिस दिन जलती हुई रोशनी में आसमान पर दौड़ने वाले घोड़े जल-जलकर मरेंगे। तब यह डरे हुए परिंदे उनका मांस नोच-नोचकर खाएंगे, वह दिन मुझे तुम्हारी आंखों में दिख रहा है रतन, उठ ! लड़ाई के भोंपू बज रहे हैं। जा, उस लड़ाई में शामिल हो जा। मैं खुदा से दुआ करूंगी, तुझ पर चलने वाले सभी तीर मेरी छाती पर आ लगें।'

रतन के अन्दर का डर निकल गया था।

इसलिए उसे डर नहीं लग रहा था।

दो साल और बीत गए हैं···

अस्पताल के पार्क में नर्स कुसुम को लाठियों के सहारे चलना सिखा रही थी।

'आप जाइए आंटी, अब हम अंकल से सीखेंगे।' नर्स चली गई। कुसुम आहिस्ता-आहिस्ता पैर पटकती चलने की कोशिश करने लगी, रतन बेंच पर बैठा अपनी स्थानापन्न बन गई लाठियों को अपनी ओर आते देख रहा था, नजदीक आकर कुसुम ने लाठियों को फेंक दिया और उछलकर रतन की बांहों को पकड़ लिया।

'अकेले नहीं चलते बेटे, आप गिर जाएंगे।'

'हम गिर जाएंगे तो आप उठा लेंगे।'

'बेटे गिरने से खून निकलने लगता है।'

'तब आपसे हम और खून ले लेंगे।'

'तब आप बीमार थे, इसलिए हमने आपको खून दिया था। अब आप अच्छे हो गए हैं।'

'हम अच्छे नहीं हुए हैं अंकल, अच्छे हो गए होते तो हमें दिल्ली क्यों ले जा रहे होते।'

'वहां जाने से आप बिना लाठियों के भागने लगेंगे, फिर आप भागकर आएंगे और हमारे गले से लिपट जाएंगे।'

'आप हमें बुलाएंगे न, अंकल?'

'हां बेटे, क्यों नहीं!'

'तब हम आपके घर रहेंगे।'

रतन के पैर पर जैसे खींचकर लात मार दी गई हो।

'आप हमें याद करेंगे न, अंकल?'

'हां' रतन की छाती पर गाड़ी का टायर घूम गया।

'याद आने पर आप क्या करेंगे?'

'अपने तकिए के नीचे से आपका फ्राक निकालेंगे और फूट-फूटकर रोएंगे।'

रतन की आंखों से आंसू गिरने लगे, कुसुम अपने नन्हें हाथों से उन्हे पोंछते हुए बोली—'रोते बच्चे हैं अंकल, बड़े होकर रोते नहीं।'

'बड़े पत्थर नहीं होते बेटे, बड़े पत्थर नहीं होते।'

कापड़िया परिवार फ्लैट बेचकर दिल्ली रवाना हो गया।

रतन भी सामान बांधकर जाने के लिए तैयार हो गया था।

हमीदा का सफेद रंग काला पड़ता जा रहा था।

'कहां जाएगा?'

'पता नहीं ?'

'कहीं तो—'

'रास्ते में सोचूंगा।'

'कब आएगा मेरे पास ?'

'ठिकाना बनते ही।'

'जहां काम करता है, उसका पता दे जा।'

'वहां काम छूट गया है, काम भी खोजना है।'

दोनों फर्श पर बैठ गए।

'मुझे किसके सहारे छोड़कर जा रहा है ?'

'जिस सहारे की तुम बात कर रही हो वह सहारा आज मेरे पास नहीं है।'

'मैं दरिया में बहती हुई किश्ती हूं, तू उस किश्ती का मांझी है, मांझी किश्ती को मझदार में छोड़कर जा रहा है, कहीं बाढ़ में यह किश्ती चट्टानों के साथ टूट-टूटकर बिखर न जाए, रतन !'

'इस समय तुम्हारे किसी सवाल का जवाब मेरे पास नहीं है।'

हमीदा ने नजदीक जाकर रतन का हाथ अपने हाथों में ले लिया।

'जानता है, लड़की की सबसे बड़ी ख्वाहिश क्या होती है ?···अपने दूल्हे की गोद में जी भरकर रोने की···जब वह होश सम्भालती है तो सबसे पहले उसके मन में ब्याह करने का गुलाब जन्म लेता है, तब उस पर आंसुओं के कतरे फेंक-फेंक कर वह जवान होती है—किसी दिन उसका दूल्हा आएगा और उसे डोली में बिठाकर ले जाएगा···इस रोने में वह उसे बताती है कि देख उसके हाथों की उंगलियां, हाथ, पैर, टांगें, पेट, छाती, मुंह में कई दिनों और सालों से लगे यह जख्म लहूलुहान हो गए हैं, इससे पहले कि जिस्म पर उगी हुई फसल सूख जाए, इस पर अपने लहू की मरहम हर हिस्से में लगा दे···मैंने भी वही सपना देखा था रतन, मैं उन लड़कियों से अलग नहीं हूं, जब कभी कहीं किसी शहनाई की आवाज सुनो तो समझना कि मेरे दिल की आवाज थी, जब कभी डोली जाती देखो तो समझना तुम्हारी हमीदा भी उस डोली में बैठने के लिए बेताब तुम्हारा इन्तजार कर रही है।'

हमीदा कहते हुए अपना माथा रतन की बांहों से रगड़ रही थी। रतन के दिमाग का बटन जलता तो कुछ सुन लेता, बुझता तो उसे कुछ भी सुनाई नहीं देता।

'जाता हूं', रतन के गले में तेल जम गया था।

'दुल्हन नसीब वालियां बनती हैं, रतन! हमें तो अपने बाप का भी पता नहीं। दुल्हन भी तुम्हें बनाना है, दुल्हन का जोड़ा भी तुम्हें ही सिलाकर देना है।'

'जिनका कोई नहीं होता वे अपने हाथों की लकीरें खुद खींचते हैं, हमीदा !'

'जा रहा है, अपनी कोई निशानी तो दे जा।'

'मेरे पास देने के लिए है ही क्या ?'

'अपनी तस्वीर दे दे।'

'तस्वीर मत मांग बदकिस्मते, तस्वीर सामने हो और तस्वीर वाला सामने न हो, इससे जानलेवा बात और कोई नहीं होती।'

'जान तो तू वैसे भी लेकर जा रहा है, रतन ! जा, जहां भी रहे मेरी दुआ तुझे लगती रहे।'

दोनों खड़े हो गए, हमीदा रतन की छाती पर सिर रख रोते-रोते बेहाल हो रही थी—'अपना ख्याल रखना, रतन। छाती में कभी दर्द उठे तो तेल की मालिश कर लेना, सुबह नहाने के बाद एक लोटा पानी सूरज को दे देना। कपड़े साफ-सुथरे पहनकर बाहर निकलना, सुई-धागा मैंने रख दिया है, बटन टूटने पर लगा लेना। किसी से लड़ाई-झगड़ा मत करना, कोई कुछ कह दे चुपचाप सुन लेना। जहां काम करते हो, वहां पैसे के लिए लड़ाई मत करना। किसी औरत के चक्कर में मत आना, औरत हूं फिर भी कह रही हूं···औरतें मर्दों की अच्छी-भली सीधी-सादी जिन्दगी भी बर्बाद करके रख देती हैं और किसी को सताना मत। अपने से हो सके तो किसी की मदद कर देना, नहीं तो अपने रास्ते पर चलते रहना और··· और···'

रतन हमीदा से अलग होकर सामान उठाने लगा। उसकी आंखों में अकाल पड़ा हुआ था, हमीदा की तरफ देखे बिना वह दरवाजा खोलने लगा तो हमीदा ने उसकी बांह पकड़ ली। रतन ने मुड़कर उसकी ओर देखा, वह मुस्करा रही थी।

'जाती बार मुस्कराकर जाते हैं—जुदाई की यह मुस्कराहट हमेशा याद रहती है।'

रतन ने अटैची नीचे रख उसके सिर पर हाथ फेरा और एक बाल खींचकर अपनी कमीज की जेब में डाल लिया, फिर हल्के-से मुस्कराकर हमीदा के चेहरे पर फैले आंसू पोंछने लगा। हमीदा ने उसके हाथ को चूम लिया। नीचे से अटैची उठा उसके हाथ में थमा दी और दरवाजा खोलकर बोली—'जा तेरी खुशियों के दरवाजे जहां-जहां तू जाए इसी तरह खुलते रहें।'

रतन चला जा रहा था, हमीदा बालकनी से अपने सूरज को समुद्र में डूबता देख रही थी।

तहसीलदारों की ड्योढ़ी

□ संजना कौल

शहर के अन्दरूनी हिस्से की लम्बी-सी गली का वह आखिरी मकान—तहसीलदारों की ड्योढ़ी! मकान की चार मंज़िलें, खिड़कियों में जड़े हुए रंगीन कांच और ऊंची-ऊंची दीवारें पुरानी शान और ऐश्वर्य की साक्षी हैं तो जगह-जगह से उखड़ी हुई ईंटें, बाहर की तरफ की बोसीदा हो चुकी दीवारें आज की कहानी कह रही हैं। इस पर भी पूरे मुहल्ले में इस घर के लोगों को इज्ज़त से देखा जाता है। स्वर्गीय तहसीलदार साहब की उदारता, धार्मिकता, सोने से लदी हुई उनकी पत्नी को आज भी याद किया जाता है यद्यपि बाद में तहसीलदारिन के पास चांदी का एक छल्ला भी नहीं बच रहा था।

अम्माजी की मृत्यु के बाद पहली बार दुर्गा पूरे घर की सफाई कर रही थी। बड़े कमरे में झाड़ू लगाते हुए उसने कनखियों से देखा, नरेन्द्र कमरे में एक ओर रखी हुई पुरानी तस्वीरों पर से बड़ी तन्मयता से धूल साफ कर रहा था। उसे बाबू की तस्वीर को उठाते हुए देखकर वह भी पास खिसक आई। अपने ससुर को उसने देखा नहीं है। केवल उनके ज़माने में अपनी ससुराल के वैभव के किस्से सुने हैं अन्यथा वह जब से इस घर में आई है, खुद ज़िन्दा रहने और औरों को ज़िन्दा रखने की कोशिश में थकी जा रही है।

'बस, बाबू की मौत के बाद ही मेरी बरबादी शुरू हो गई।' तस्वीर की धूल साफ करते हुए नरेन्द्र की आवाज भारी हो आई।

'क्यों? बरबादी कैसी? इतना शानदार अतीत तो दे गये हैं विरासत में, यह इतना ऊंचा मकान, इतने लम्बे-चौड़े कमरे और सबसे बड़ी बात तो यह कि उनकी तहसीलदारी तुम्हें आज भी इतना सम्मान दिला रही है।' दुर्गा की आवाज़ में मज़ाकिया व्यंग्य भर गया।

नरेन्द्र घूरने लगा तो वह हंसती हुई तस्वीरों को दीवार पर टांगने लगी।

नरेन्द्र की आंखें फिर दीवार पर जम गईं। शालीमार बाग में बैठे हुए बाबू!

रोबीला चेहरा, बड़ी-बड़ी मूंछें, लम्बा-चौड़ा शरीर। सोने के कई गहने पहने हुए दूसरी तस्वीर में खड़ी मां उसे परायी-सी लगने लगी। अपनी मां को उसने देखा है सूने गले और नंगी कलाइयों के साथ। अनगिन झुर्रियों से भरे हुए मां के चेहरे को याद करते हुए वह बड़े भाई साहब को देखने लगा। यह उनकी पढ़ाई के ज़माने की तस्वीर थी जब वे लखनऊ में वकालत पढ़ रहे थे। पूरे रईसज़ादे लग रहे थे। तहसीलदारों की ड्योढ़ी के बीते हुए दिनों की याद करते हुए नरेन्द्र कुछ क्षणों के लिए यह भी भूल गया कि उसे पचास रुपयों की सख्त ज़रूरत है और उसके लिए उसे मिर्ज़ा इकराम अली के अखबार का सम्पादकीय लिखना है।

उसे कभी-कभी आश्चर्य होता है, कितने अतीतजीवी हैं इस घर के लोग! शान्ता बहन, बड़े भाई साहब, सबसे छोटी लीला···कभी इकट्ठे होते हैं तो एकदम बाबू के ज़माने की कहानी शुरू हो जाती है। भाई साहब अपनी व्यस्तता को भूल जाते हैं। शान्ता बहन बाबू की उदारता के किस्से सुनाते हुए आंसू बहाने लगती हैं और बीच-बीच में अपनी मां को भी याद कर लेती हैं। तहसीलदार साहब की पहली पत्नी से ही शान्ता बहन और बड़े भाई साहब हुए थे। लीला तल्लीनता से अपने मायके का अतीत सुनती रहती है। रह जाता है नरेन्द्र। कितनी बार उसने घर के उन ऐश्वर्यशाली दिनों को अपने से झटककर अलग फेंक देने की कोशिश की है और हमेशा उसे हारना पड़ा है। उन दिनों के बारे में सुनते हुए तथा स्वयं उन दिनों की कल्पना करते हुए उसे अजीब-सा सुख मिलता है। उसे लगता है, वह एकदम पराजित या बेबस नहीं है। कुछ तो जुड़ा हुआ है उसके साथ जिस पर वह गर्व कर सकता है।

अभी कुछ ही दिन पहले अम्माजी के श्राद्ध पर सभी भाई-बहन मिलकर बैठे थे। नरेन्द्र के कमरे में बैठे हुए तथा दरिया को एकटक निहारते हुए शान्ता बहन की आंखें भर आईं, 'फुरसत के समय बाबू हुक्का लेकर यहीं बैठा करते थे। सिरीचन्द उनकी चिलम भरकर लाता था। महादेव उनके पांव दबाता रहता था। भगवान! कहां गए वे दिन! आज कौन कहेगा, यह राधामुकुन्द कौल का ही मकान है।' उन्होंने धीरे से आंखें पोंछ लीं।

नरेन्द्र ने वातावरण को हल्का बनाने की कोशिश की, 'भाई साहब, अचला को भी साथ ले आते। बच्चों और वीरेन्द्र के साथ आ जाती तो और भी अच्छा होता।' उसने अपने बेटे की ओर देखा, 'सुनते हो मुकुल, तुम्हारी अचला दीदी को मैंने गोद में खिलाया है। एक बार की बात सुनाऊं, उसने चीकट तकिए के साथ टेक लगाई, वह चार-पांच साल की रही होगी। मैंने उसे बोरे में भरा। बोरे में से सिर निकालकर वह हंसती रही। और खाना तो वह मेरे साथ ही खाती थी।'

नरेन्द्र कुछ और कहने जा रहा था कि शान्ता बहन बीच में बोली, "अचला

की बातें तो याद हैं नरेन्द्र, यह भी याद रख लेते कि मैं तुम्हें बचपन में कितना प्यार करती थी।'

मुकुल की आंखों में उत्सुकता की चमक भर गई, 'आंटी, आपको पापाजी के बचपन की बहुत-सी बातें याद होंगी। हमें भी बताइए न।'

'अरे, कितना कुछ बताऊं! हम सबका लाड़ला था यह तो। यहां तक कि बाबू भी इसके बिना नहीं रह सकते थे। आखिरी सांसें गिन रहे थे तब भी इसी का नाम उनके होंठों पर था। पैदा होने के बाद छः साल तक यह केवल दूध, और फल और अण्डों पर पलता रहा। चाहो तो पूछ लो किसी से।'

मुकुल की आंखों में उत्सुकता का स्थान अविश्वास ने ले लिया। दूध और फल तो उसे कभी-कभी चखने को मिलते हैं और पापाजी तो कभी अण्डा या फल खाते भी नहीं। बचपन में केवल दूध और अण्डों पर पले थे! वह पिता के बचपन और उनकी आज की हालत में संगति नहीं बिठा पा रहा था।

नरेन्द्र का चेहरा मुस्कान की ताज़गी से भर गया। सामने की दीवार पर टंगी हुई पुरानी तस्वीरें उसके इर्द-गिर्द एक स्वप्न-लोक-सा रचने लगीं जिसमें भरा-पूरा घर था, नौकरों की फौज थी, बाबू थे। ऊंची-ऊंची दीवारों में जगह-जगह लगे हुए शीशे और प्रत्येक कमरे में बिछी हुई कीमती कालीन! उसे यह सब कुछ बड़ा रूमानी, बड़ा अछूता-सा लगता था।

दुर्गा चुपचाप बैठी हरेक के चेहरे को निहार रही थी। ये सारी ऐन्द्रजालिक कहानियां सुनते-सुनते उसके कान पक गए हैं। उसकी समझ में नहीं आता, ये सभी लोग अपने पिता को इस तरह आले में क्यों बिठा रहे हैं जबकि उस औरत का कभी नाम भी नहीं लिया जाता जिसकी जवानी इसी घर में मिट्टी में मिल गई और बुढ़ापे में भी जिसे चैन नसीब न हो सका। अपनी मृत्यु से कुछ महीने पहले दुर्गा की सास अपने पति को याद करती रही थीं। दुर्गा को याद आया, मोटे-मोटे आंसू उनकी बूढ़ी आंखों से बह-बहकर चेहरे की झुर्रियों में विलीन होते जा रहे थे।

'नरेन्द्र उन दिनों सात-आठ साल का रहा होगा, बेटी! तुम्हारे बाबू का रोग बहुत बढ़ गया था, डॉक्टरों ने बिलकुल जवाब दे दिया था। मैंने कहा, हमें किसके सहारे छोड़े जा रहे हो? उन्होंने कुछ नहीं कहा, केवल रोकर अपना दायां हाथ ज़ोर से माथे पर दे मारा। वैसा बेबस मैंने उन्हें कभी नहीं देखा था। आज भी नहीं भूल पाती हूं, किस तरह वे रो रहे थे और नरेन्द्र के लिए किस कदर चिन्तित थे।' अम्माजी की आंखों से आंसू दुगुने वेग से बहने लगे थे। दुर्गा बड़ी मुश्किल से खुद को सम्भाल पायी थी।

'और जानती हो, बेटी! मरते हुए उनके होंठों पर नरेन्द्र का ही नाम था। तुम्हारे जेठ ने पूछा था, बाबू, किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं है। उन्होंने कहा

था, हां, मुझे एक लम्बी आयु चाहिए।'

अपनी बड़ी ननद से दुर्गा ने सुना था, अम्माजी के पास बीस पच्चीस तोला खालिस सोना था जो वे बेच-बाचकर खा गईं। उसे विश्वास नहीं होता था और एक बार उसने अम्माजी से इसकी चर्चा छेड़ ही दी थी। उनके चेहरे पर पीड़ा की असंख्य रेखाएं खिच गईं, 'तुमने ठीक ही सुना है, बेटा ! मेरे पास लगभग तीस तोला निखालिस सोना था, पर वह मैंने बेचकर खाया नहीं था। वह तो तुम्हारे बाबू की दवाइयों के लिए बेचा था। मेरे रिश्ते का एक देवर तोला-तोला करके उसे बेच गया। एक तोला बेचता था और आधे तोले के पैसे देता था। सभी यह समझने लगे कि मैंने सारे सोने को बेच खाया है।'

चौंक उठी दुर्गा। शांता बहन उसी को पुकार रही थी, 'सुनती हो, दुर्गा ! जहां आज तुम्हारी रसोई है, वहां बाबू का घोड़ा बंधता था। उनके जीवनकाल में अम्माजी को जब भी कहीं दूर जाना होता था, वे घोड़े पर चढ़कर ही जाती थीं।' शान्ता बहन ने उसांस ली, 'उनके अन्तिम दर्शन भी नहीं कर सकी मैं। आखिर वे भी तो मेरी मां थीं।'

दुर्गा को विरक्ति हो आई शान्ता बहन की इस मक्कारी से। अम्माजी की मृत्यु से एक दिन पहले ही शान्ता बहन को फोन किया गया था। वे नहीं आईं और जब अम्माजी ने आंखें मूंद लीं, उस दिन रोती-पीटती हुई आईं और पछाड़ खाकर उन पर गिर पड़ीं। चुपचाप आंसू बहाती हुई दुर्गा उनका विलाप सुन रही थी। वे अम्माजी की रुपहली देह, उनके सोने के आभूषणों और उनके पति के गौरवशाली जीवन को रो रही थीं और बीच-बीच में ताने भी देती जाती थीं। सास के चालीस वर्षों के लम्बे वैधव्य का दर्द केवल दुर्गा जान सकी थी और उसकी ज़बान को मानो ताला लग गया था।

अम्माजी की देह को नहलाने की तैयारी करती हुई दुर्गा बड़े कमरे में आई तो बड़े भाई साहब अपने बहनोई, शान्ता बहन के पति से बातें कर रहे थे, 'कोई बीमारी नहीं थी, साहब ! अच्छा पौष्टिक भोजन नहीं मिलता था, और कुछ नहीं, और ऐसी गन्दी हालत में वे रखी गई थीं, मैं क्या बताऊं आपको।'

बहुत बुरा लगा था दुर्गा को, पर कुछ बोल नहीं पायो। खुद उसे डॉक्टर ने पौष्टिक भोजन खाने की हिदायत दी है। अठारह साल की आयु में ही पिंकी की हड्डी-हड्डी निकल आई है। पिछले साल ही नरेन्द्र को हल्का-सा दिल का दौरा पड़ा था। डॉक्टर ने आराम करने को कहा था, पर वह तीन-तीन अखबारों का काम करता है तब कहीं महीने भर का खर्च चलता है।

और नरेन्द्र का बिस्तर ! दुर्गा की आंखें भर आईं। फटे-पुराने गद्दे और बेहद खस्ताहाल रज़ाई में दुबका हुआ नरेन्द्र पूरी सर्दियों में ठिठुरता रहता है। सर्दियों में रात भर कांगड़ी उससे अलग नहीं हो पाती, यहां तक कि उसकी टांगों

की चमड़ी झुलसकर रह जाती है। बड़े भाई साहब को भलीभांति मालूम है. वे लोग किस तरह जी रहे हैं। फिर लोगों के सामने उन्हें इस तरह नंगा करने की क्या ज़रूरत है ? कई कड़वे घूंट निगलकर वह बाहर आ गई।

बाहर आते ही शान्ता बहन उसकी बांह पकड़कर अलग कमरे में ले गईं, 'दुर्गा, अम्माजी की अर्थी पर एक अच्छी-सी शाल तो डालनी पड़ेगी। निकालकर रख लो।'

'नहीं, शान्ता बहन ! कोई शाल नहीं डालनी होगी। मेरे पास तो कोई नयी शाल है नहीं और खरीदने के लिए इनके पास पैसे नहीं होंगे। फिर मैं इस आडम्बर की कोई ज़रूरत भी नहीं समझती।'

'अम्माजी का पुराना बक्स खोलकर देख लिया था ?' शान्ता बहन का स्वर अजीब तरह से रहस्यमय हो उठा।

''जी हां, बहुत पहले देख लिया था। उसमें उनके दो-चार पुराने कपड़े थे और एक 'फैरन' जो आपने बनवाया था।' क्रोध को दबाती हुई दुर्गा संयत स्वर में बोली।

'खैर, छोड़ो इन बातों को। शाल मैं लेती आई हूं। नरेन्द्र से कहना धीरे-धीरे पैसे चुकाता रहे।'

'आप इतना परेशान क्यों हो रही हैं ? अर्थी पर शाल न डालने से कोई फर्क तो नहीं पड़ेगा…'

शान्ता बहन ने उसकी बात बीच में ही काट ली—'नहीं, तुम नहीं जानतीं। तहसीलदारों की ड्योढ़ी से अर्थी केवल कफन पहनकर कैसे निकलेगी ? पूरा शहर क्या कहेगा ? तुम्हें मालूम नहीं दुर्गा, एक ज़माने में इस घर की शान राजमहल से भी बढ़कर हुआ करती थी। पूरे श्रीनगर के लोग राधामुकुन्द कौल को आज भी याद करते हैं।'

दुर्गा खीझकर बाहर आ गई। तहसीलदारों की ड्योढ़ी, राधामुकुन्द कौल, राजमहल जैसा घर…यही कुछ बातें हैं इनके पास बखानने के लिए। मिथ्या सम्मान को बनाए रखने की यह कोशिश आखिर कब तक चलती रहेगी ?

अम्माजी को अग्नि को सौंपकर सभी लौट आए और अलग-अलग कमरों में बैठ गए। शान्ता बहन और उसके पति बड़े भाई साहब के साथ उनके कमरे में चले गए। नरेन्द्र रात गए तक सिसकता रहा और दुर्गा को राजमहल जैसा वह मकान एकदम भुतहा लगने लगा।

शान्ता बहन की अमेरिका से आई बहू कुछ घण्टों के लिए नरेन्द्र और दुर्गा से मिलने आई थी। दुर्गा को शांता बहन ने सख्त हिदायत दे दी थी कि वह अपने कमरे का दरवाजा बन्द रखे। रीना बड़े भाई साहब के कमरे में ही बैठेगी। ऐसा न हो कि दुर्गा के कमरे को खस्ताहाल देखकर रीना कुछ गलत सोच बैठे।

अपमान को चुपचाप पीकर दुर्गा रसोई में काम करती रही। वहां से छुट्टी पाकर सोने गई तो नरेन्द्र को सबसे अलग, चुपचाप सिगरेट फूंकते हुए देखा। अपमान का दंश और तीव्रता से सालने लगा, बरस पड़ी नरेन्द्र पर, 'बस! बैठे-बैठे धुआं उगलते रहो। यह नहीं कि एक अच्छी-सी दरी ले आते कमरे के लिए। जानते हो, आज मुझे कितना कुछ सुनना पड़ा है केवल इसलिए कि तुम्हारे पास ढंग की नौकरी नहीं है। तुम्हारा कमरा सजा-धजा नहीं है। अम्माजी के अन्तिम संस्कार तक के लिए तुमने भाई साहब से पैसे लिये थे। बताओ मुझे, उनसे मांगने की क्या जरूरत थी? कोई दोस्त नहीं था तुम्हारा? इस तरह अपनी और मेरी फ़ज़ीहत करवाने से तुम्हें क्या मिलता है?'

नरेन्द्र का चेहरा कातर हो उठा, 'दोस्त तो बहुत हैं, दुर्गा! मांगने पर वे रुपये दे भी देते। पर वे सभी जानते हैं, मैं राधामुकुन्द तहसीलदार का छोटा बेटा और वकील हरगोपाल का छोटा भाई हूं। पिता मेरे लिए न जाने कितना कुछ छोड़ गए हैं और भाई आड़े समय में मेरी ज़रूरत पूरी करेंगे ही। किसी को यह मालूम नहीं कि तहसीलदार की बीवी ने कितने दुःख सहे हैं और उनका बेटा अपने परिवार के साथ किस तरह गिन-गिनकर सांसें ले रहा है।' नरेन्द्र एक ही सांस में बोलकर थका-थका-सा लेट गया।

यह सब सुनकर भी दुर्गा फट पड़ी, 'तुम भी तो नहीं चाहते कि लोग इस सच्चाई को समझ लें। लूटो मजे अपने बीते हुए दिनों के गौरव के। आखिर इतने ऊंचे परिवार के सुपुत्र हो।'

लेटे-लेटे ही नरेन्द्र फीकी हंसी हंसा, 'सच कहती हो, दुर्गा। कई बार चाहता हूं कि लोगों के मन से यह गलतफहमी दूर हो जाए। लोग यह समझने लगें कि मैं एक निहायत साधारण आदमी हूं जो उन्हीं की तरह जिन्दगी की लड़ाई लड़ रहा है। लेकिन जब भी कुछ कहने की कोशिश करता हूं, जबान लड़खड़ाने लगती है। लगता है, मैं अन्दर से बिलकुल खाली हो जाऊंगा···मेरा एक आधार भरभराकर बिखर जाएगा। तुम नहीं समझोगी, दुर्गा मैं अपने संस्कार के हाथों विवश हूं। मुझे माफ़ कर दो।'

दुर्गा आश्चर्यचकित उसे देखती रही। फटी हुई रजाई को ऊपर तक खींचता हुआ तथा कांगड़ी को पेट के साथ सटाता हुआ नरेन्द्र बोला, 'मुझे रात को चार-पांच बजे ही जगा देना। शिवनारायणजी ने एक नया अखबार शुरू किया है। उसका सम्पादकीय लिखकर कल उन्हें देना है। रात में लिखकर कल सवेरे पिंकी के हाथ भिजवा दूंगा। कल तो समय मिलेगा नहीं, इकराम अली के अखबार का काम करना है।'

नरेन्द्र के थके हुए चेहरे पर से आंखें हटाकर दुर्गा लकड़ी की नक्काशीदार छत को घूरने लगी।

न्यूज़ लेटर

□ क्षमा कौल

दफ्तर का आयोजन है। राजभाषा की सेवा। और न्यूज़ लेटर छपे, उससे बढ़कर क्या सेवा हो सकती है इस कमबख्त भाषा की। द्विभाषी न्यूज़ लेटर छपेगा, हिन्दी में और अंग्रेजी में। राजभाषा के प्रसंग में अहिन्दीभाषी प्रदेश का कीर्तिमान होगा। यह सब बड़े साहब का कहना है।

कौल के केबिन से खूब शोर आ रहा है। बातों, ठहाकों के बीच से उसका एक किस्सा मुखर हो उठता है, 'कल मेरी बच्ची ने अपनी वर्दी पर स्याही उंड़ेल दी थी, क्या कहता मैं, बड़ी शरीर मिजाज़ है, कुछ डांट-फटकार दूं तो खून के आंसू रोती है, और यहां भी मुझे विभिन्न तरह के बच्चों से निपटना पड़ता है, क्या तुम सब लोग मेरे बच्चों जैसे नहीं हो ?' यों कौल घर की बात को दफ्तर में सरका कर अपनी बात जारी रखता है और धीमे-धीमे फैक्टरी के वित्त से भी बात को जोड़ता है। विमल गहरे विचारों में है। न्यूज लेटर की कल्पना कर रहा है; वाह जब छपकर आयेगा—न्यूज़ लेटर कितना सुन्दर होगा ! सम्पादक, विमल ! मुख्य सम्पादक, कौल ! क्या है कुछ खोने से ही कुछ पाया जाता है। वह सम्पादक का दर्जा तो रखता है। विमल सुन्दर से सुन्दरतम रूप में न्यूज़ लैटर को पुस्तिकाबद्ध करने के लिए कटिबद्ध है। कोई कोताही नहीं होने देगा। वह सोचता है, ज़रूरी बातों के सम्बन्ध में, बड़े साहब से विचार-विमर्श करना होगा। पर तभी संशय मन में आता है—जाने दो, ज्यादा उसके पास जाने से फायदा, सोचेगा इसको व्यक्तिगत रुचि है, इस न्यूज लेटर के सम्बन्ध में। अच्छा कौल से विचार करूं, तुरन्त फिर से वह कनफोडू आवाज़ उसके दिल में धंस जाती है। वह निकट-स्थित सहयोगी से कहता है—'अगर किसी बेचारे का हृदय कमजोर होगा, तो इस आवाज़ से पंचतत्त्व में जा मिलेगा। क्यों ?' सहयोगी चुप रहने का संकेत करता है। उसे याद आती है वह सीख, जब उसने आक्रोश में कुछ कहा था तो किसी ने समझा दिया था 'चुप, ऐसा करो कि ये दीवारें भी तुम्हारी बात न सुन

सकें, यह दफ्तर है, कोई भी जाकर चुगली खा सकता है, और तुम्हें परिणाम भुगतना पड़ सकता है।'

विमल बहुत खाली रहता है। काम ही बहुत कम है। राजभाषा को पूछता कौन है! एक दिन नोटिस निकाला गया था कि वे सभी पत्र जो 'अ' और 'ब' क्षेत्रों को भेजने हैं, हिन्दी अनुभाग में हिन्दी रूपान्तर के लिए भेज दिए जाएं। प्रतिक्रिया में, मैनेजर ने प्रश्न किया कि 'अ' और 'ब' के क्या मानी हैं, समझाएं। तुरन्त यह मानी वाला नोटिस भी निकाला गया, पर पत्र एक भी नहीं आया वहां। विमल ने एक नोटिस और बनाया की तारें देवनागरी में भेजी जाएं, और अनुमोदन के लिए कौल के सामने फाइल रखी। कौल ने न जाने क्यों दूरदर्शिता से काम लेते हुए महीनों फाइल ही दाब दी। तब इसका रहस्य जानकर विमल एक दिन अफसर की अनुपस्थिति में फाइल को निकाल लाया और मन मसोसकर राजभाषा पर तरस खाकर रह गया। और खाली समय में पुस्तकें पढ़ने का दुस्साहस कर बैठा। वह जानता था कि अफसर को उसका यह काम बहुत ज्यादा अखरता है, फिर भी उसका यह व्यसन न उसे छोड़ता, न ही व्यसन को वह छोड़ता। नौकरी में आने के समय उसको चेतावनी दी गई थी कि यह फैक्टरी कार्यालय है, यहां पुस्तकें पढ़ना सख्त मना है। कुछ दिन तक विमल ने देखना चाहा कि क्या फर्क पड़ता है अगर वह पुस्तक पढ़ता है, तो लगा कोई खास फर्क नहीं पड़ता है। दफ्तर का काम हो तो वह अधिक प्रसन्न रहता है, और खुशी-खुशी करता है, पर वह रहता ही कितना है, दिन में एक-आध घंटे का, बाकी समय खाली। कितनी बड़ी त्रासदी है कि राजभाषा का काम भी अंग्रेजी में होता है, विमल सोचता है। कौल हिन्दी में स्वयं स्नातकोत्तर कर चुका है पर दफ्तर की देहली पार करते ही उसकी अंग्रेज़ी अनवरत शुरू हो जाती है। विमल ने एक दिन किसी पत्र का हिन्दी प्रारूप अनुमोदन के लिए कौल के सामने रखा था तो पास बैठे किसी बाहरी व्यक्ति ने कहा था—'आपको हिन्दी समझ आयेगी क्या?' और कौल चहककर बोला था, 'अरे वाह! मैंने हिन्दी में मास्टर्स डिग्री ले रखी है, आप समझते क्या हैं?'

कौल के भीतर इतनी शक्ति नहीं है कि वह विमल के अहम् भरे व्यक्तित्व को सहन कर सके। कौल ने आज तक विमल के विषय में जाना तो मात्र इतना कि वह दबना नहीं जानता, न ही उसकी अफसरी को कोई मान्यता देता है। कभी ऐसा मौका विमल ने आने न दिया था कि कौल का अहम् सन्तोष पाता। कौल का व्यक्तित्व भीतर ही भीतर कुण्ठित होता गया, विमल के सामने, बदस्तूर। पर कौल ने जब सीमाओं का अतिक्रमण होते देखा तो अपने दोस्त बूढ़े इन्जीनियर से अपनी समस्या कही।

विमल उस दिन लंच के समय 'दॉस्तोयवेस्की' को पढ़ रहा था कि अचानक महसूसा, उसके कन्धे को कोई झिंझोड़ रहा है। वह सहमकर देखने लगा, बूढ़ा

जिन्सी उसके सामने खड़ा है, संकेतों से केबिन के भीतर आने का आग्रह कर रहा है। विमल हतबुद्धि-सा सिर्फ देख रहा है और जिन्सी ऊंची आवाज़ में कह रहा है, 'मैं कहता हूं जरा अन्दर आओ कुछ ज़रूरी बात करनी है।' विमल उठा। नहीं समझा इस क्षण क्या करना चाहिए, क्या बात हो सकती है, जो यह बूढ़ा कहना चाहता है। उठकर मानो वह अन्धकार से होते हुए केबिन में आया। बूढ़ा दम सम्भाल रहा था, पर विमल परेशान बात सुनने को उत्सुक, पूछा--'क्या बात है?' 'तुम पढ़ते रहते हो। यह बात इस आदमी की बर्दाश्त से बाहर है।' वह कौल की कुर्सी की ओर इंगित करता है। विमल की परेशानी और गुस्से का ठिकाना नहीं रहा और कहा, 'इस आदमी में इतना साहस नहीं कि यह स्वयं आकर मेरा सामना करता। मैं कहता हूं कि यह अफसर है या उसकी दुम', विमल क्रोध में चीखा, 'मुझे इस आदमी पर तरस आता है, पिटिएबल।' और केबिन से बाहर आकर विमल मानो अंगारा हुआ, और ज्यों की त्यों स्थिति बनाए रखी, पढ़ने की धृष्टता नहीं छोड़ी।

न्यूज़ लेटर का काम मिलने के बाद उसने सोचा था, ठीक है, हिन्दी में एक सुन्दर-सी लघु पत्रिका निकलेगी। वह भी मानेगा कि कोई ठोस काम हुआ, इस भाषा को जिन्दा रखने के सन्दर्भ में। कर्मचारियों से योगदान मांगने की अनुमति मिल गई तो लोग एक के बाद एक उसके पास अपनी-अपनी रचना लेकर आने लगे। एक लेख--विकलांग वर्ष पर, एक कविता असफल प्रेम पर, एक कविता भगवान से डरने का विषय लेकर, शायद किसी उसी के जैसे ने लिखी थी जो शायद अफसरों को दिखाना चाहता है कि उसे सिर्फ ईश्वर का डर है। विमल अपनी हंसी अपने मुंह में ही समेटकर रह गया। एक कहानी मिली, भाई ने प्रेमोन्माद में भागी बहन से समझौता किया। किसी ने गुलशन नन्दा शैली में कहानी लिखकर दी, और विमल ने सबका स्वागत किया, 'वाह, अब तो न्यूज़ लेटर छपेगा जरूर, उसके पास सामग्री भी काफी आ रही है, चार पृष्ठों का न्यूज़ लेटर छपेगा इसलिये चुस्त सामग्री भर देंगे। योगदान मांगने की अन्तिम तिथि के दूसरे दिन वह बड़े साहब के पास फाइल लेकर गया। विभिन्न शीर्षकों और उपशीर्षकों के साथ-साथ न्यूज़ लेटर का ढांचा तैयार किया, क्योंकि उसके कान पक चुके थे, कौल की सिर्फ एक बात सुनते-सुनते कि पहले न्यूज़ लेटर का स्केलटन तैयार करके दो। यह वाक्य हज़ारों बार उसके कानों में पड़ा था, पर योगदान न मिलने तक यह कर पाना किस प्रकार सम्भव था, वह समझ नहीं पा रहा था। आज प्रसन्न-चित्त वह बड़े साहब के पास गया, और न्यूज़ लेटर की समीक्षा होने लगी। विमल मन में विचार बांचता है, 'बड़ा साहब काइयां है। आंखों को नीचे से नचाते हुए कूटनीतिज्ञ ढंग से हर बात का जायज़ा लेता है। सबसे बड़ी बात है हिन्दी के विषय में असमर्थ है, अतः हिन्दी को नहीं चाहता। बेचारा डर रहा है हिन्दी में काम हुआ तो अंग्रेज़ी का प्रवाह रोड़ों से अकड़ा जाएगा। विमल की इस बात पर

कि 'उर्दू के बिना हिन्दी वस्तुत: अधूरी है और हिन्दी के बिना उर्दू' पर प्रतिक्रिया देते हुए बड़े साहब ने कहा था, 'लेकिन मैं समझता हूं कि हिन्दी के बिना उर्दू अधूरी नहीं।' विमल चुप रहा था यह सोचकर कि इसके सामने हिन्दी का ज्ञान बघारना बहुत बड़ी बेवकूफी है, बेचारा नीरज का 'कारवां गुजर गया' रटकर आया था इन्टरव्यू के दिन।

बड़ा साहब लिख रहा है अपनी डायरी पर—फोटोग्राफ्स लेने हैं, उनके ब्लाक्स बनाने हैं। 'और हां, लीगल नोट्स लिये तुमने। वह भी एक कालमन् रहेगा। मैनेजमेन्ट क्या करता है कर्मचारियों के लिए, यह भी लिखना होगा, जैसे वर्दी इन लोगों को मिलती है, इन्सैन्टिव मिलता है।' विमल का क्रोध भीतर ही भीतर भड़क उठता है—'हूं। जैसे अपने घर से देता है इन्सैन्टिव और वर्दी, काइयां कहीं का।' और साहब फिर 'लीगल नोट्स' पर टिकता है, हां क्या कहा था लीगल नोट्स भी देंगे। विमल सुझाता है, 'सर, लीगल नोट्स अगले अंक में देंगे। पहली जनवरी में थोड़े दिन रह गये हैं। यह अंक निकालेंगे फिलहाल।' अफसर अपनी बात इस ढंग से चालू रखता है मानो विमल जो कुछ कह रहा था, वह उसने सुना ही न हो, 'हां, हम प्रिन्ट करवायेंगे अपने प्रेस में', और वह अपने ढंग से फिर आंखें नचाने लगा। 'इस किस्म का दौरा पड़ता होगा इस पर, अपने आप से कहते हुए विमल साहब का मुखापेक्षी बना रहा। वह कह रहा है, 'अध्यक्ष को, राव को, तिवारी को जाने किस-किस को पत्र लिखना है, अपने आशीर्वचन भेजें इस लघु पत्रिका के लिए।' विमल मन में हंस रहा है 'अबे समझता हूं।' बड़ा साहब बयान जारी रखे हुए है। 'जानते हो हमने यह काम इसलिए शुरू किया ताकि तुम व्यस्त रहोगे, आगे देखते जाओ, तुम्हें अपने टेबुल पर से सिर उठाने तक का समय नहीं मिलेगा। इतने व्यस्त हो जाओगे। हां, आगे चलो। करते जाओ न्यूज़ लेटर का काम, जाओ, शाबाश।' विमल मूर्ख-सा बना चुपचाप केबिन से बाहर निकल आया। तीन दिन तक फिर गौर किया, कुछ और सुधार किये और बड़े साहब के पास फिर से न्यूज लेटर की रूपरेखा लेकर गया। आठ दिसम्बर है, बड़े साहब चाहते हैं कि नये साल के 'ईव' पर हमारा न्यूज़ लेटर भी छपकर आये, इसलिए शीघ्र ही साहब के पास जाना होगा। अब की बार बड़े साहब इसको अन्तिम रूप अवश्य देंगे, और कल-परसों तक प्रेस में भी। बाकी फोटो, ब्लाक्स और संदेश आदि की जिम्मेदारी तो बड़े साहब की है। अध्यक्ष जो हैं। पर विमल के अवचेतन में एक बात गहरे समाई है कि शायद बड़े साहब नहीं चाहते हैं न्यूज़ लेटर। लोगों की अनुक्रिया भी हिन्दी भाषा में ही आई है, इसकी प्रतिक्रिया क्या रहेगी बड़े साहब की। चिढ़ जायेंगे। ठीक वैसे ही जैसे किसी महाजन को समाज-सुधार की बात से चिढ़ हो जाती है। इसके चेतन में उत्साह है पर अवचेतन का यथार्थ उसके उस उत्साह को धुंधला बना रहा है। उसके भीतर से कोई बोलता है, 'बड़ा साहब

कहेगा, रखो फिर विचार करेंगे,' और पहली जनवरी को हमारे पास कुछ भी प्रकाशित रूप में नहीं होगा। लेकिन नहीं, उन्हीं का तो सुझाव है, न्यूज़ लेटर छपना चाहिए, वह भी पहली जनवरी को नये वर्ष की बधाई के साथ। अपने मन को वह नकारात्मक विचारों से उभरने को तैयार करता है और बड़े साहब के कमरे में आता है। बड़े साहब की दृष्टि खीज भरी है। और वह 'हां कहिए ?' प्रश्न इस तरह करता है मानो प्रश्न में ही उत्तर मिल जाता है कि 'अबे तू जो पूछने वाला है, उसकी अनुदृष्टि में 'न' सुन।'

'सर, यह न्यूज़ लेटर है न···फाइनल शेप···' बड़ा साहब उसकी बातचीत में ही काटता है और विमल मानो इस बात की पूर्व प्रत्याशा में था, अपरिवर्तित मुद्रा में —'मैं समझता हूं, पहली जनवरी को हम प्रवेशांक नहीं निकाल पायेंगे।' विमल लम्बी हामी भरता है, और एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया सिर से, ऐसा महसूसता है। चलने को होता है, कानों में बड़े साहब के यह शब्द अब भी पड़ रहे हैं 'हम आराम से निकालेंगे जनवरी, फरवरी तक, कोई जल्दी नहीं।'

वह कमरे से इस एहसास के साथ आ रहा है मानो बहुत बड़ा कर्तव्य निभाया हो। 'कौल की आवाज ने कमरे को मछली बाजार बना दिया है' वह मन में सोचता है और कुर्सी पर बैठते ही कौल का एक और उदाहरण कान में पड़ता है —'मेरा बच्चा बहुत जिद्दी है, उसको फटकारूं तो उसकी मां बेहोश हो जाती है, बड़ी सैन्सिटिव है···'पास में बैठा सहयोगी विमल से कहता है—'कौल की आवाज़ और ढोल की आवाज़ में कुछ फर्क नहीं, दोनों दूर से ही सुनने को मिलें तो ठीक।' विमल उसको चुप रहने का संकेत देता है और कहता है, 'कहीं ये दीवारें सुन न लें।'

लहराती हुई पूंछ

□ शक्ति शर्मा

सन्तुष्ट और असन्तुष्ट के पाटों में वह बराबर पिसता रहा है। अब भी पिस रहा है। तब उसे बड़ा अजीब-सा लगता है। जीवन के माने तो उसके लिए कुछ भी नहीं। अजीब से झंझट में फंसा वह छटपटाने लगता है। मन के किसी कोने में पलती असन्तोष की लपट, झुंझलाहट और ऊब यही तो खाये जा रहे हैं उसे। मौत ! नहीं, वह मर नहीं सकता। कैसे मर सकता है ?

ऑफिस में 'जी, जी' करने का वह अभ्यस्त हो गया है। 'न' कहना सीखा ही न हो जैसे। साहब की झाड़-फटकार उसके लिए अपमान की बात है या मजबूरी का अलार्म... वह कभी नहीं जान पाया। वह तो बस, खिसियानी-सी हंसी बिखेरे खड़ा रहता है। उसे तब लगता है, झाड़-फटकार खाना भी मानो उसकी 'ड्यूटी' में शामिल है।

टर्रनऽऽऽऽ टर्रनऽऽऽऽ

घंटी की चिंघाड़ उसके अस्तित्व को सदैव झिंझोड़ती रही है। पहले, जब वह नया-नया आया था तो झटपट कुलांचें भरता हुआ भीतर जाता था। जब वह उठा तो उसके घुटने की ठोकर से 'स्टूल' कराह कर पीछे की ओर लुढ़क गया। किवाड़ पर लटके परदे को घूरकर देखने से उसके माथे पर आड़ी-तिरछी रेखाएं किसी खेत की ऊबड़-खबड़ पगडंडी-सी उभर आई थीं। उसने परदा उठाया और घिसटता-सा साहब की टेबल के पास खड़ा हो गया। साहब आंखें मूंदे, टांगें पसारे आराम कर रहे थे। उन्होंने आंखें खोले बिना ही उसे पुकारा था। शायद साहब उसे सूंघ लेते हैं—उसने सोचा।

साहब ने अपने मोटे होंठों पर जिह्वा घुमाई। नासापुटों पर हथेली रखी। सांस भीतर की ओर खींचा। तत्पश्चात् एक-दो बार हथेली सूंघी। यह उनकी पुरानी आदत है।

'बीड़ी-सिगरेट होगा तेरे पास ? कब से तलब दबाएं हूं।' साहब ने कहा।

फिर अपनी 'पुरानी आदत' दुहराई। उसने साहब को गौर से देखा था। लिज़लिजे चेहरे पर पिचके गाल। आंखों के चश्मे के पीछे से झांकती हुई दो धूमिल आंखें। सर के बीच तक है माथा। या यूं कहूं, अधगंजे हैं साहब। उसे सदैव उनकी आदमियत कुहासे में लिपटी हुई लगती है। व्यवहार बहुत मीठा किन्तु फिर भी घिनौनेपन में लिपटा हुआ। सिगरेट के पैसे भी खर्च नहीं कर सकते, मांगकर ही गुजारा कर लेते हैं।

साहब को कोसते हुए उसने चारमीनार का पैकेट जेब से निकाला और साहब के हाथ में रख दिया। साहब ने एक सिगरेट सुलगाई और दूसरी टेबल की दराज़ में घुसेड़कर पैकट उसे लौटा दिया। वह मुंह बनाता-बिगाड़ता हुआ बाहर आ गया।

—'मोतीऽऽऽ!' साहब जब शब्द खींचते हैं तो वह कसमसा उठता है, झुंझला उठता है। अगले ही क्षण वह कसमसाहट, वह झुंझलाहट कहीं झर जाती है और उसके होंठ जबरन मुस्कान से खिच जाते हैं। स्निग्ध-सी मुस्कान। तब उसे लगता है, उसके होंठों पर मुस्कान नहीं, उसका समूचा अस्तित्व बिछ जाता है। पेट का बोझ इतना भारी है कि वह उठा नहीं सकता और उसका अस्तित्व इतना सस्ता है कि उसके बिछने से उसके पेट का बोझ हल्का-सा प्रतीत होता है···ऐसा उसने प्रायः महसूस किया है और फिर एक पेट का बोझ हो तब न, वह तो एक साथ तीन पेट उठाये फिरता है।

बहुत पहले, जब वह पहली बार साहब के घर गया था, साहब के साथ—शायद कुछ उठा कर ही—उसने साहब का घर देखा था तो काफी अजीब लगा था। घर क्या था, अच्छी-खासी कोठी थी वह। गेट से दस-बीस फुट दूर तक बगीचा था। उसके काफी आगे दायें मुड़कर असल मकान। बरामदे में फूलों की बेल के साथ जुड़ा गमलों का लम्बा सिलसिला। उसे धूप में सब ऊंघता, अलसाया-सा, अकेला-अकेला लगा था।

बगीचे में पानी देते हुए माली के पास एक हट्टा-कट्टा पीले रंग का कुत्ता पेड़ की छांव में लेटा हांफ रहा था। गेट खुलने की चरमराहट से वह सावधान हो गया और उधर की ओर भागा। साहब की टांगों से लिपटकर वह पूंछ हिलाने लगा। साहब उसकी पीठ सहला रहे थे।

'मोतीऽऽऽ!' साहब ने शब्द खींचे थे, फिर अपनी पुरानी आदत दुहराई थी।

'जी साहब!' वह झट से बोला था। साहब के लिजलिजे चेहरे पर व्यंग्य की हल्की-सी मुस्कान दौड़ गई थी। उनकी नुकीली मूंछें ज़रा-सी फड़क गई थीं। वह विस्मित-सा उन्हें देखता रहा था।

'तुम्हें नहीं भाई, यह भी अपना मोती ही है।' उन्होंने आंखों से कुत्ते की ओर संकेत किया था और वह साहब को शब्द द्वारा खींचकर पुकारने का रहस्य जान

गया था। वह उन्हें घूरने लगा था। गर्मी में बोझ उठाने के कारण वह बुरी तरह पसीने से भीग गया था। किन्तु इस ओर उसका ध्यान नहीं गया था। उसे लगा था, उसके पीछे भी एक लम्बी पूंछ निकल आई है और साहब के कुत्ते की पूंछ से भी अधिक गति से लहरा रही है···और भी अधिक वेग से···।

एक हाथ में अंगोछा समेटे माली भागता हुआ आया था। उसकी काली-कलूटी टांगों पर चिपकी गीली मिट्टी की परत, पसीने से लिजलिजी-सी होकर चमक रही थी। चेहरे पर भी मिट्टी की तह जमी थी। मानो मिट्टी फांकता रहा हो। मरियल-सा अस्थि-पंजर शरीर, 'एनॉटमी हॉल' में पड़े मुर्दों की भांति।—'जी मालिक, मुझसे कुछ कहा।'

साहब के जबड़े पुनः खिंच गये, 'नहीं, अपना काम करो। उसके जाने के पश्चात् उससे बोले थे—इस कम्बख्त का नाम भी मोती है। तब उसने उचककर माली को देखने का प्रयास किया था। उसे विश्वास हो गया था कि वहां भी जरूर पूंछ उगी होगी और शायद लहरा भी रही होगी। अब उसे इप बात पर हंसी नहीं आती, बस खीझ-सी होती है। वह अब प्रायः यह जानने को उत्सुक रहता है कि उसमें और मोती कुत्ते में आखिर क्या फर्क है? उसके मनुष्य होने में क्या कमी है?

उस दिन के पश्चात् वह आता-जाता रहा था और उसके व कुत्ते के बीच की औपचारिकता—यदि वह थी—धीरे-धीरे कम होती गई थी।···और कम··· बहुत ही कम।

उसने मेम साहब और साहब के व्यवहार में समानता पायी थी। अन्तर था तो मात्र इतना कि मेम साहब अकड़ और घमंड की गंदगी से बुरी तरह लथपथ थीं। साहब नहीं···।

पहले जब वह साहब और मेम साहब कहता था तो उसे अजीब-सा लगता था। चूंकि कॉलेज में उसने सर का पाठ पढ़ा था। अगर कोई चपरासी किसी प्रोफेसर को साहब कहता तो वह भन्ना-सा जाता था। आज भी वह अपने शौक से साहब नहीं कहता, उसकी मजबूरी है यह तो।

वह साहब की किसी बात का विरोध नहीं कर सकता। वह उनका ज़रखरीद गुलाम नहीं, यह ठीक है। वह स्वतन्त्र भारत का स्वतन्त्र नागरिक है। फिर भी परिस्थितियों का पूर्णरूप से गुलाम है और साहब उसकी विवशताओं का लाभ उठाने से नहीं चूकते। उन्होंने उसे अपना ज़रखरीद गुलाम समझ रखा है। ऊंह, वह विद्रोह कर देगा। वह सरकारी नौकर है, साहब का घरेलू नहीं। 'विद्रोह'! शायद खीझ की पराकाष्ठा पर पहुंचकर ही उसने इस शब्द को चुना है। किन्तु हर बार परिस्थितियों का बन्दी बना छटपटाकर रह जाता है। वह पेट का बोझ उठाकर नहीं चल सकता। वह आदमी है, घास चरता गधा नहीं।

उसे याद आया। जब वह बी० ए० की परीक्षा में असफल रहा था तो क्लर्की

के लिए मारा-मारा फिरता रहा था। सुबह सूर्य चढ़ने से शाम का झुटपुटा छाने तक वह भटकता रहता था। मां काफी परेशान थी। पापा एक-डेढ़ वर्ष में रिटायर होने वाले थे। मां इसी बात के लिए परेशान थी कि पापा के अवकाश पाने के बाद घर का सिलसिला कैसे चलेगा। पांच-सात माह बेकार घूमते रहने के बाद मां ने उसे आवारा-लोफर का फतवा दे दिया था। अब वह मां को कैसे समझाता कि उसकी बेकारी में उसका अपना हाथ कितना है और उसकी बद-किस्मती का कितना हिस्सा है ?

जब वह किताब लेकर पढ़ने बैठता तो मां टोक देती—'क्या रखा है पढ़ाई-बढ़ाई में। कहीं भरती हो जाये तो अपने पैरों पर चलना सीख जाये।' मां का चिड़चिड़ापन उसे मुंह खोलने पर विवश कर देता। तब मां बोलने लगती। अच्छा-खासा झगड़ा न हो जाये, लोग तमाशा देखने इकट्ठे न हो जायें, यह सब सोच कर वह बाहर खिसक जाता था। वह बहुत कुछ सोचने लगता—ऊटपटांग। अन्त में सोचता इसमें मां का भी क्या दोष, वह भी तो पेट का बोझ उठाने से घबराती है।

शाम के धुंधलके में जब वह सीढ़ियां चढ़ रहा था तो मां की कर्कश आवाज़ उसके कानों से टकराई थी। वह वहीं बरामदे में, सीलनों से टपकती उमस में खड़ा सब सुनता रहा था।—'सुबह का गया है, न जाने कहां आवारागर्दी करता होगा। अब तुम्हीं कहो जी, घर में जवान बेटा हो तो क्या राशन मैं सिर पर लाद कर लाया करूं। आयेगा तो गधे से कम नहीं खायेगा।'

पापा ने कदाचित कुछ नहीं कहा था। क्योंकि उसे पापा की आवाज़ नहीं सुनाई दी थी। वह धीरे-धीरे चलता हुआ, मुंह लटकाये दहलीज पर खड़ा हो गया था। शायद वह खीझा भी था।

'नहीं, वह गधा नहीं, भाग्य और परिस्थितियों का मारा बेकार मनुष्य है। जिसके माथे पर परेशानी की रेखाएं खिंची हैं। यह देखो, उसके दो हाथ हैं, दो टांगें हैं···चार नहीं। उसकी पूंछ नहीं है। वह गधे से बहुत कम खाता है। और आज, वह नहीं खायेगा। बिलकुल नहीं···।' किन्तु आवाज़ कंठ से निकली नहीं। बहुत बार अक्सर ऐसा होता है कि अपनी समझ में वह बेतहाशा चीखता-चिल्लाता है परन्तु आवाज़ है कि किसी और को सुनाई ही नहीं देती। शायद बेकारी के भय से। आज उसे लगता है, शायद जानवर शब्द उसके लिए उपयुक्त ही है। पहले, जब बेकार था तो 'गधा' था। अब जबकि वह कमाता है तो कुत्ता है, साहब का पूंछ हिलाता हुआ मोतीऽऽऽ···। फिर अपने इस विचार पर उसे खुशी होती है···आखिर तरक्की ही तो की है ?

मां ने उसे देखा था। उसकी भौहें सिकुड़ गई थीं।—'आ गया है— लाट-साब।' वह बड़बड़ाती हुई रसोई में चली गई थी। पापा कुछ नहीं बोले। शायद वह उसका दुःख समझते थे। अपना जीवन क्लर्की की भेंट चढ़ाकर उन्होंने इतना

अनुभव अवश्य ग्रहण कर लिया था। वह धीरे-धीरे चलते हुए उसके पास आ गये थे।—बहुत पास···। लगभग सटकर खड़े हो गये थे। कितनी ही देर तक वे उसे अपलक निहारते रहे थे। वह सिर झुकाकर जमीन कुरेदता रहा था। पापा काफी देर तक चुपचाप खड़े रहे थे—'तार-घर में कुछ चपरासियों की जगहें निकली हैं। अर्जी दे दो।' उन्होंने कहा था। उसे लगा, इस वाक्य को कहने के लिए ही पापा को इस लम्बे क्षण का रास्ता हांफते हुए तय करना पड़ा था।

उसने पापा को देखा था। पापा के चेहरे पर कुछ ऐसा था, जो उसके लिए नया था। —'देखो, तुम पढ़े-लिखे व्यक्ति हो अगर कहीं क्लर्की की जगह निकली तो अर्जी दे देना। पहले अपने पांव तो जमने दो। अगर मेरे अवकाश पाने के बाद भी तुम इसी प्रकार बेकार रहे तो बेटा, घर का सिलसिला कैसे चलेगा?' पापा ने जो चुप्पी साधी थी तो फिर लगातार चुप रहे थे। लम्बे समय तक···।

वह खामोसी से खिसक गया था। काफी परेशान होने पर वह मन्दिर के अहाते में एक ओर गुमसुम बैठ जाता था। ऊपर वैष्णो देवी का मन्दिर था और नीचे लक्ष्मी-नारायण का। अलग-थलग थे हनुमान और शिव के मन्दिर। अधिकतर हनुमान और शिव के मन्दिर शाम को शान्त ही रहते थे। वैसे पण्डित जी उसके काफी पास फटक आये थे। वह उसे समझाते। भगवान् राम और दूसरे देवताओं की कड़ी परीक्षा की बातें विस्तारपूर्वक बताते। तब वह सोचता, वे भगवान् राम थे, देवता थे और वह त्रेता युग था। वह भगवान् या देवता नहीं, कलयुग के असंख्य कुलबुलाते कीड़ों में से एक है। जिस पर परिस्थितियां पूरी तरह हावी हो गईं हैं। उसका नाम किसी भी इतिहास में नहीं दुहराया जायेगा। अगर आज उसकी जगह भगवान् राम भी होते तो शायद वह भी पेट का बोझ उठाने में असफल रहते।

उसे याद आया, जब वह साक्षात्कार के लिए गया था तो साहब ने अजीब दृष्टि से उसे घूरा था, पांव से सिर तक। उसके सिर पर उनकी दृष्टि अटक गई थी। तब उसे लगा था, शायद उसके सिर पर अजीब तरह के सींग उग आये हैं जिन्हें देखकर साहब शायद सोच रहे थे कि इस जानवरनुमा आदमी से वे किस प्रकार का प्रश्न करें। —'तारा चन्द के बेटे हो?' साहब ने पूछा था। उसने सिर हिला दिया था—'जी।'

'ठीक है, जाओ।'

घंटी फिर चिंघाड़ी थी। वह अलसाया-सा उठा। लम्बी जम्भाई ली। मुंह कुत्ते-सा फैलाया। फिर धीरे-धीरे सरकने लगा। —'मोतीऽऽऽ, घर जाकर मेम साहब से कहना आज मैं थोड़ा लेट आऊंगा। समझ गये नऽऽऽ।' उसने सिर हिला दिया, फिर वापस पलटा और बाहर आ गया।

'ऑफिस में ऑफिस के काम कम और साहब के घरूनी काम अधिक होते हैं।' उसने सोचा।

गेट के पट खुलने से पहले चरमराये थे। वह धीरे-धीरे चलता हुआ भीतर आ गया। बरामदे में से माली को निकलते देखकर उसने पूछ लिया—'मेम साहब भीतर हैं क्या?' माली ने उसे खूंखार दृष्टि से घूरा था। जैसे उसे चीर-फाड़कर खा जायेगा—'हां।' वह भौंका फिर हांफने लगा। उले माली की झुंझलाहट की आड़ में मजबूरी से हिलती हुई पूंछ देखने का विचार आया। तब तक माली आंखों से ओझल हो गया था। दीवार के पिछवाड़े में...।

भीतर मेम साहब मि० भाटिया से शतरंज खेल रही थीं। उसने पहली दफा किसी औरत को मर्द के साथ शतरंज खेलते देखा था। कॉलेज में कभी-कभार प्रोफेसर और लड़के आपस में खेलते थे तो अंग्रेजी के प्रोफेसर मि० गिल को चिढ़-सी होती थी। उनका विचार था कि शतरंज बेकार लोगों का खेल है। वह मेम साहब की तस्वीर देख रहा था। मेम साहब तस्वीर में मुस्करा रही थीं। उसे वह तस्वीर काफी अजनवी लगी थी। क्योंकि वास्तव में उसने उन्हें कभी मुस्कराते नहीं देखा था किन्तु वह सोच रहा था—क्या मेम साहब भी बेकार हैं। उनके पास कोई काम नहीं?

मेम साहब ने उसे देखा था—'क्या बात है, मोती?' वह अपनी आवाज़ सख्त करना नहीं भूली थीं।

'जी, जी,' उसने अपने आप पर काबू पा लिया था। 'साहब कहते थे, रात को लेट आयेंगे।'

'बहुत अच्छा!' उन्होंने कहा, फिर चाल चली।—'मोती एक काम करना, चौके में थोड़े बर्तन हैं, मल देना। फिर बाजी खत्म करके चाय का पानी रखूंगी। अच्छा, बेटा!' उसे गुस्सा नहीं आया। बस कुढ़न-सी हुई थी। जो उसके भीतर उठती है और वहीं चुपचाप झर जाती है। जिसका उसे मात्र पल भर के लिए एहसास होता है।

माली बाथरूम में कुत्ते को नहला रहा था। बर्तन मलने के बाद वह भी उसके पास खड़ा हो गया था। माली ने एक-दो बार जलती आंखोंसे उसे घूरा भी था। वह चुपचाप खड़ा रहा था। मेम साहब बाजी खत्म करके उधर आई थीं और छोटे से क्षण तक उनको देखती रही थीं। उनके गाल जरा से फूल गये थे। 'अपने तीनों मोती आपस में कितने घुलमिल गये हैं।' उन्होंने कहा था और खुशी से भर गई थीं।

वह झटके से मेम साहब की ओर घूमा था। उसकी मुट्ठियां भिचने-खुलने लगी थीं।—'हर व्यक्ति उसे जानवर समझने लगा है क्या? वह उसके दो हाथ नहीं देख रहीं। उसकी जुबान मूक नहीं, वह बातें करता है। अभी-अभी उसने

साहब का संदेश कहा था। उसके बाल संवरे हैं। उसने कपड़े पहन रखे हैं। देखो, देखो उसकी पूंछ···'

उसने घूमकर पीछे देखा। उसकी पूंछ लहरा रही थी। उसे पेट का बोझ हल्का-सा लगा था और लगा था उसकी मां का चिड़चिड़ापन मर गया है। वह दिन भर आवारा बना भटकता हुआ नहीं फिरता। शायद, यह सब उसकी लहराती पूंछ के ही कारण है।

अचानक वह मुड़ा और तेज कदमों से भागने लगा। वह सड़क पर आ गया था। उसकी सांस फूल गई थी। किन्तु वह अपने को बहुत हल्का अनुभव कर रहा था। वह स्वतन्त्र था। कल सुबह नौ-साढ़े-नौ बजे तक वह पूर्ण रूप से मनुष्य बना रह सकता है। फिर दस-से पांच-छः बजे तक साहब के कुत्ते का अभिनय करेगा। साहब का पूंछ-लहराता—मोतीऽऽऽ।

सौगात

□ अवतार कृष्ण राज़दान

हां, यह वही पत्थर है जो न जाने कब से हमारे ठाकुरद्वारे में है। चपटा-सा और चौरस ! लगभग दो गज़ लम्बा ! शिवलिंग की दायीं ओर लकड़ी के एक बड़े फ्रेम के सहारे टिका हुआ। इसके चारों ओर फूल-पत्तियों का भव्य अलंकरण है जो अब कहीं-कहीं घिस गया है। फिर भी ये फूल-पत्तियां बहुत सुन्दर हैं। पार्श्व में स्याही है। पास वाले भाग में तीन चित्रों का चित्रांकन किया हुआ है। पहला चित्र एक नन्हे-से बालक का है जो गोद में सिमटा निश्चिन्त रूप से अपनी माता के स्तनों से दुग्धपान कर रहा है। दूसरे चित्र में एक स्त्री और पुरुष की आलिंगन-बद्ध आकृतियां खुदी हुई हैं और अंतिम में किसी का आखिरी सफ़र — चार-पांच आदमी एक शव को कपाट पर लिटाकर श्मशान की ओर ले जा रहे हैं और उसके पीछे-पीछे कई शोकाकुल जन ! उनको देखकर ऐसा लग रहा है कि ये सब अपने किसी प्रिय को विदा कर रहे हैं।

यह चौरस पत्थर आज भी हमारे ठाकुरद्वारे में है। छोटी उम्र से आज तक मैं इसको यहीं देखता आया हूं। वैसे तब से आज तक यहां दीवारों की खूंटियों पर टंगे पुराने कैलेण्डरों के स्थान पर नये कैलेण्डर लगा दिये गये या ताक पर रखी मूर्तियों में कुछ विविध आकार-प्रकार की कलामय मूर्तियों की बढ़ोतरी की गयी, किन्तु यह चौरस-पत्थर अपने स्थान पर से कभी न हटाया गया। यह जहां था, अब भी वहीं है।

घर में सर्वाधिक चहल-पहल इसी कमरे में रहती है। खासकर सुबह दस बजे तक। कोई आकर टीका लगाता है तो कोई अपने दोनों हाथों में कहीं से रंगारंग फूल लाकर शिवलिंग पर चढ़ाता है। कोई सुबह से यहीं बैठकर गीता के आठों अध्याय समाप्त करता है। इस प्रकार यह ठाकुरद्वारा हमारे घर का मंदिर बन गया है। छुटपन से ही मैं यहां बड़े शौक से आता था। इसलिए नहीं कि यह ठाकुर-द्वारा है और यहां भगवान की पूजा होती है। बल्कि इसलिए कि यहां रंगारंग

मूर्तियां हैं—कलापूर्ण तथा आकर्षक। मूर्तियां क्या होती हैं तथा मूर्तिकला किसे कहते हैं – यह न मैं उस समय जान पाया था, न ही आज इसका ज्ञान है। अलबत्ता यह बात तो जरूर थी कि उस समय मैं इन मूर्तियों को बड़े ध्यान से देखता, खुश हो जाता तथा मचल उठता था। किन्तु ज्यों ही दिन बीतते गये, मैं सोचने लगा कि यह चौरस पत्थर यहां किस लिए है? इस बड़े भारी-से पत्थर को यहां रखने की क्या तुक? इसने ठाकुरद्वारे की एक-तिहाई जगह घेर रखी है! यह न किसी देवी-देवता का आकार-रूप है, न ही यहां इसकी पूजा होती है। इस पर जिन चित्रों का रेखांकन किया हुआ है, उन्हें देखकर पूजा करने को दिल ही नहीं करता।

कितनी बार मेरे दिल में आया कि इस चौरस पत्थर को ठाकुरद्वारे से बाहर निकाल दूं। लेकिन इसको छूने में डर-सा लगा। न जाने ऐसा क्यों हो रहा था! शायद इसलिए, क्योंकि यह मेरे पिता जी को जान से भी प्यारा था।

एक दिन पूजा करने के बाद जब मेरे पिता जी ठाकुरद्वारे से बाहर आ गये तो मैंने उनको ज्योंही कहा—'पिता जी! इस चौरस पत्थर पर यह चित्रांकन किसने किया है? इस पर नजर पड़ते ही दिल पर एक अजीब असर होता है।'

मेरे पिता जी तबीयत से कुछ तेज थे उन्होंने गुस्से में कहा—'क्यों?'

'मैं सच कहता हूं पिता जी! इसको देख पूजा करने में दिल नहीं लगता। जिस श्रद्धा के साथ पूजा करनी होती है, इस पर अंकित चित्रों को देखकर वह नहीं रहती।' मेरा उत्तर था।

यह सुनकर पिता जी ने पहले मेरी तरफ देखा, फिर मां की ओर नज़र दौड़ायी। कहने लगे—'यह चौरस पत्थर मेरे पिता की एकमात्र निशानी है जो वह अपने पीछे छोड़ गये हैं। यही तू यहां से हटाने के लिए कहता है?'

'लेकिन आवश्यकता भी क्या है इसे यहां रखने की? इस पर यह बेहूदा चित्रालंकरण मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता।' मैं दरजवाब बोला।

यह सुनकर पिता जी को बहुत गुस्सा आया। उन्होंने मेरे गाल पर एक चपत जड़ दी। कहने लगे, 'अच्छा क्यों नहीं लगता?'

मैंने उन्हें कुछ नहीं कहा। लेकिन आंखें झुकाकर नीचे फर्श की ओर देखने लगा। मां ने मेरी तरफ देखा। वह थर-थर कांप गयी। गुस्से में पिता जी का मुंह लाल हो गया था मानो किसी ने उस पर लाल स्याही पोत दी। यह देखकर मैं भी कांप उठा। मैं धीरे-धीरे मां के बगल में बैठकर सिर नीचे झुकाये सोचने लगा कि आखिर मैंने ऐसी कौन-सी बात कही है कि पिता जी इतना गुस्सा गये हैं। इस बीच पिता जी के कमरे से बाहर चले जाने पर मां ने कहा—'तू क्यों बार-बार इनको यह चौरस पत्थर ठाकुरद्वारा से बाहर निकालने के लिए कहता है?'

अबकी बार मैंने मां पर गुस्सा थूका। मैं गरज उठा—'हां, कहता हूं और

बार-बार कहूंगा। मैं जो सच कहता हूं और ये एकदम गर्म हो जाते हैं। कहते हैं न, आजकल सच कहना पाप है और झूठ बोलना पुण्य।'

'तो फिर सच कहते ही क्यों हो ?'—मां ने कहा।

'सच नहीं कहता मां !' लेकिन मुझसे रहा नहीं जाता। ज़रा आप ही बताइए मां, हमारे घर में क्या कोई ऐसी जगह नहीं रह गयी जहां पर यह चौरस पत्थर रखा जाता। ठाकुरद्वारा में इसके रखने की क्या आवश्यकता! माना कि यह पत्थर है। मगर यह तो किसी देवी-देवता का आकार-रूप नहीं कि इसकी पूजा करनी है। ऐसा कुछ नहीं है इसमें। तिस पर भी देखो, क्या चित्रालंकरण किया हुआ है इस पर ! मां की गोद में बच्चा सिमटकर उसके स्तनों से दुग्धपान कर रहा है, स्त्री और पुरुष आलिंगनबद्ध रूप में और वह भी नंगे······वाह ! वाह ! क्या इसी की पिता जी पूजा करते हैं ?''

यह सुनकर मां पसीने से तरबतर हो गयी। वह कुछ न कह सकी। एकदम गूंगी-सी हो गयी। फिर उठी और कमरे से बाहर आ गयी। मैं यहां अकेला रह गया। कुछ क्षण पश्चात् मैं आंखों के सामने इस पत्थर को लाया – स्याह ! चपटा-मा और चौरस ! चारों ओर फूल-पत्तियों से अलंकृत ! सामने तीन चित्रों का अंकन। पहले चित्र में एक नवजात शिशु मां की गोद में सिमटकर उसके स्तनों से मजे में दुग्धपान कर रहा है। दूसरा चित्र स्त्री-पुरुष का है जो एकदम नंगे हैं तथा एक-दूसरे के बाहुपाश में बद्ध चुंबन ले रहे हैं तथा तीसरे या अंतिम चित्र में किसी की अर्थी ले जाई जा रही है। इसके पीछे-पीछे लोगों का एक बड़ा कारवां है।

समय को सच ही पानी का बहता दरिया कहा गया है। इसके बहते हुए पानी को रोकना किसी के बस की बात नहीं। अभी आज और कभी कल। दिन-रात के इस मिलन से इस बात का पता ही नहीं चल सकता कि कब महीने गुजर जाते हैं और कब सालों-साल बीत जाते हैं। यह सिलसिला चलता है और हमेशा के लिए चलता रहेगा। इसी चलते सिलसिले में एक दिन मेरी समझ में नहीं आया कि अचानक यह क्या हो गया। घर में सब सुन्न होकर रह गये। मैंने दायें-बायें देखा, घर में देखते-देखते हाहाकार मच गया। सब चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे। रोने का इतना शोर हो गया कि रात के उस गहन अंधकार में पक्षी भी पंख फड़-फड़ाते हुए अपने घोंसलों से बाहर निकल आये। घर में मातम छा गया और यह सब मेरे पिता जी के स्वर्गवास होने पर हुआ था। इसमें सब सम्मिलित हो गये। सारा परिवार। यार-दोस्त—कुछ सच्चे, कुछ झूठे। घर में केवल एक मर्द की कमी हो गयी और वह अपने साथ घर की रौनक भी ले गया।

मेरे पिता अधिक समय तक बीमार नहीं रहे। बीमार होने के मात्र छः घंटे बाद ही उनका स्वर्गवास हो गया।

पिता के इस दुनिया से चले जाने के बाद मुझ पर मानो वज्र-सा गिर पड़ा। मैं यह जान ही न सका कि अब मेरा भविष्य क्या होगा ! लेकिन समय का चलता दरिया आखिर सबका पथ-प्रदर्शक बन जाता है। आज मुझे ऐसा लग रहा है कि पिताजी के इस दुनिया से चले जाने से मेरे जीवन का एक नया अध्याय शुरू हो गया। एक नयी दुनिया ! एक नया वातावरण ! मुझे सब कुछ नया-नया-सा दिखने लगा।

पिता के स्वर्गवास होने के बाद घर का प्रधान अब मैं हो गया था। माता ने मुझे उनकी अलमारी की कुंजी दे दी। इसमें कुछ कपड़े तथा काग़जात थे— मकान के काग़जात। माल-संपत्ति से संबंधित कुछ काग़जात।

एक दिन मैंने अलमारी खोली—अपने किसी मरे हुए प्रिय की चीजों को, जिन्हें उसने अपने हाथों सम्भालकर रखा हो, देखकर आंखें गीली हो जाती हैं। कभी उन चीजों पर प्यार आता है कि उसकी थीं, कभी नफ़रत कि उसने दग़ा दे दी। अपने प्रिय की ये चीज़ें कितने प्यार से देखी जाती हैं मानो उसकी आत्मा इन्हीं में छिपी हुई हो। मुझे भी पिताजी की ये चीज़ें देखकर ऐसा ही महसूस हुआ। कौन-सी चीज़ कब खरीदी थी, कहां खरीदी थी, कितने शौक से ली थी। यह कोट-पतलून कितने चाव से पहनते थे ! सिर पर यह रंगदार पगड़ी कब बांधते थे ! यह मकान कब बनाया था ! इसके काग़जात भी इसी अलमारी में थे और इसके साथ ही दो-चार ऐनकें भी जो वह कभी-कभी लगाते थे।

इन सभी चीजों को देखकर भी मेरा ध्यान इन सबकी ओर नहीं गया। मैंने इसमें से केवल मकान के काग़जात निकाले। ये सब एक बड़ी फाइल में सलीके के साथ रखे हुए थे। फाइल खोलकर ज्योंही मैं इन काग़ज़ात को पढ़ने लगा तो पहले ही पृष्ठ पर पिताजी ने मकान के संबंध में वसीयत की थी। कब ? यह न मुझे पता है, न ही मेरी माता को। इसमें इन्होंने मकान को दो भागों में बांटा है। जो भाग मेरे नाम लिखा है, उसके अन्तर्गत ठाकुरद्वारा भी आता है। अंत में लिखा है कि मुझे पूरी आशा है कि मेरे स्वर्गवास होने के बाद मेरी की हुई वसीयत पर अमल होगा।

ठाकुरद्वारा—यह पढ़ते ही मैं चौंक-सा गया। आंखों के सामने एकदम वह पत्थर घूम गया—स्याह, चपटा और चौरस ! चारों ओर फूल-पत्तियों से अलंकृत सामने तीन चित्रों का चित्रालंकरण !

पिछले बीस वर्षों से मैं इस ठाकुरद्वारा में पूजा करने नहीं आता। इस चौरस पत्थर को देखकर मुझे यहां पूजा करने में मन की शान्ति नहीं मिलती। यही कारण है कि मैं मंदिर में जाकर ही भगवान की पूजा करता था।

कुछ दिन इसी तरह बीत गये। आखिर मैं एक दिन ठाकुरद्वारे के अन्दर आया। वैसे तो मैं यहां यह चौरस पत्थर हटाने के लिए आया था। तभी मुझे मन

की शान्ति मिलनी थी न। तभी भगवान की पूजा-अर्चना करने में दिल लगता। मैं अपने-आपसे सोचने लगा कि उस पूजा करने का क्या सार जब दिल कहीं हो और दिमाग कहीं। यह तो भगवान के साथ मखौल करने के बराबर होगा। हां, यदि यहां पूजा करूंगा तो पहले इस चौरस पत्थर को हटाना ही होगा।

मैं ठाकुरद्वारा के अन्दर आया। मेरी नज़रें एकदम इस चौरस पत्थर की ओर गयीं, लेकिन यह क्या! इसको ज़मीन पर इस तरह किसने लिटाया है? मैंने जीवन में पहली बार इसको इस तरह देखा। बहुत आश्चर्य हुआ मुझे। मैंने मृगछाला बिछाया तथा इस पर बैठकर पूजा करने में तन्मय होने लगा। लेकिन मेरा ध्यान इस चौरस पत्थर की ओर था। यह उल्टा लेटा हुआ था। इसका पिछला भाग मुझे साफ दिख रहा था—काला स्याह।

मैंने पूजा खत्म की। फिर उठा और मृगछाला को लपेटकर अपने स्थान पर रखा। इसके बाद चौरस पत्थर की बारी आयी। मैंने इसको यहां से हटाने की सोच ली। इसके हटाने से तो यहां से एक बला हट जायेगी! क्या ज़रूरत है इसकी इस कमरे में। मैंने इसकी ओर एक बार फिर ध्यान से देखा। फिर इसको दोनों हाथों से उठाया। लेकिन······लेकिन इसके नीचे यह पुर्ज़ा! यह क्या है। मैं एक-दम चौंक-सा गया। मैंने पत्थर को फिर अपने स्थान पर रखा और कांपते हाथ इस पुर्ज़े की ओर बढ़ा दिये। मैंने इसको खोला। लिखा था—

"प्यारे बेटे,

मेरा निधन होने के बाद यह चौरस पत्थर अपने स्थान पर से नहीं हटाना। इस कमरे में जो भी कलामय मूर्तियां हैं उन सब से बढ़कर मुझे यह चौरस पत्थर अच्छा लगता है। मेरे बाद यह तुम्हारे हवाले है। इसकी रक्षा करना, पूजा करना। उस दिन तुमने पूछा था न कि इस पर जिन चित्रों का अंकन है, वे बेहूदा हैं। मगर मैं क्या कहता तुमको उस दिन, इन चित्रों का राज़ क्या है! तुम तो नन्हे बालक थे न। उस समय तुम कुछ नहीं जान सकते थे। मगर आज समय तुम्हें समझायेगा कि ये चित्र क्या हैं—ये चित्र जीवन के तीन दौरों के स्पष्ट उदाहरण हैं। जीना, जवानी और बुढ़ापा तथा इसके साथ ही जीवन का अंतिम सफर। मतलब जहां से मनुष्य आता है, वहीं उसको जाना है। यही तो जीवन की वास्तविकता है। इसी को पूजना है। जीने के बाद जो जीवन की इस वास्तविकता को समझ नहीं पाता, वह कुछ नहीं पा सकता।"

हां, यह तो वही पत्थर है—स्याह! चपटा-सा और चौरस! लकड़ी के बने एक बड़े फ्रेम के सहारे खड़ा किया गया। चारों ओर फूल-पत्तियों से अलंकृत। पास में तीन चित्रों का चित्रालंकरण! आज भी यह चौरस पत्थर हमारे ठाकुरद्वारे में उसी तरह खड़ा है जिस तरह पहले था। यह एक सौगात है जो पिता जी अपने पीछे मेरे लिए छोड़ गये हैं।

मुड़ती दिशाएं

□ छत्रपाल

पत्र के स्थान पर रश्मि को जो कुछ मिल गया था उसे देखकर वह अत्यन्त उल्लसित हो उठी। फोटो पीली पड़ गई थी, एक कोना दोहरा होकर फट भी गया था। हाय···डैडी कितने यंग और हैंडसम लग रहे हैं, और साथ वाली औरत···क्या मम्मी हैं, कितनी स्लिम और स्मार्ट हैं, बिल्कुल पहचानी नहीं जातीं। मम्मी को आज सरप्राइज दूंगी। जिस पत्र के लिए वह इतनी चिंतित थी उसे भूल गयी। फोटो पीठ पीछे छिपाये, दबे पैरों वह सुपारी काटती मम्मी के पीछे जा खड़ी हुई और उनकी आंखें मीच लीं।

—अरे-अरे यह क्या कर रही है, मेरी उंगली कट जाएगी।

—जब तक मैं कहूं नहीं, आंखें मत खोलिएगा।

—अच्छा ले, उन्होंने सरौता रखते हुए कहा।

उसने आगे आकर फोटो उनके सामने कर दी।

—अब खोलिए।

उन्होंने आंखें खोलीं तो फोटो देखकर चौंक पड़ीं।

—फोटो से तो आप पहचानी नहीं जातीं, कितनी सुन्दर थीं!

वह उनके पास बैठ उनसे लिपट गयी।—आप कुछ बोलतीं क्यों नहीं? डैडी को देखकर स्तब्ध रह गई हैं न। उन्हें फोटो की ओर एकटक देखते देखकर बोली।

सावित्री ने एकबारगी लड़की को देखा और फोटो परे फेंक दी।

—तेरी आंखों पर पट्टी बंधी है, देख नहीं रही यह मैं नहीं हूं। उन्होंने लड़की को डांट दिया। वह अवाक् रह गयी।

—आप नहीं हैं? वह फर्श से फोटो उठाकर उस औरत को मम्मी से मिलाने लगी। एक मिनट-भर ध्यान से देखने पर ही उसने जान लिया कि फोटो में डैडी के साथ कोई और ही औरत है, कम-से-कम उसकी मम्मी नहीं।

—तो फिर यह कौन है ? ठण्डे पड़े उत्साह से उसने पूछा ।

—मैं क्या जानूं, तेरे डैडी आने वाले हैं उन्हीं से पूछ लेना । अपनी आवाज़ के गुस्से और उत्तेजना को गले में ही सोखते उन्होंने उत्तर दिया । भीतर-ही-भीतर एक प्रश्नचिह्न कुलबुला रहा था । वह दांत भींचकर चुपचाप सरौता चलाती रहीं ।

—मम्मी आप कुछ बोल क्यों नहीं रहीं, डैडी आते हैं तो पूछ लेंगे ।

जस्टिस रघुवीर ठाकुर घर पहुंचे तो उन्हें घर भर पर एक अजीब मनहूसियत छायी हुई दिखाई दी । वातावरण भी कुछ बोझिल-बोझिल था । उन्होंने रश्मि को आवाज दी और टाई की नाट ढीली कर उसकी प्रतीक्षा में एक कुर्सी पर बैठ गए । उन्होंने बूट भी खोल दिए पर कोई नहीं आया । पत्नी को पुकारा, उसे आता देख-कर वह समझ गए कि अवश्य ही कोई बात हुई है । वह पास आकर खड़ी हो गईं । हाथ पीछे थे ।

—यह पीछे क्या छिपा रखा है तुमने । उन्होंने लापरवाही में पूछा ।

—यही पूछने तो आयी हूं । उसने झट से फोटो उनकी आंखों के सामने कर दी । चर्र···उनके भीतर कुछ तेजी से उधड़ गया है ।

—कौन है यह ? किसकी फोटो है ? वह मौन फोटो की ओर देखते रहे जो अब उनके हाथ में थी ।

—मैं पूछ रही हूं कौन है यह ? अपनी बात का उत्तर न पाकर वह तमतमा उठी ।

—मुझे कुछ याद नहीं कि यह कौन है, हमने फोटो कब उतरवाई ।

—तुम मेरे सामने झूठ नहीं बोल सकते । सच-सच बताओ यह कौन है और तुम्हारे इससे क्या सम्बन्ध हैं ? पत्नी के स्वर में आदेश था । स्थिति काफी हद तक बिगड़ गई है, उन्होंने जायजा लिया । अब बिना कुछ बताए छुटकारा नहीं । लेकिन एक बार कुछ कहने से उम्र भर के ताने-बोलियां हो जाएंगी ।

—इसका अर्थ हुआ मेरी आशंका सत्य है । मेरे साथ नाहक इतने साल नाटक करते रहे, इसी को बुला लेना था ।

—सावित्री, यह मत कहो, तुम्हारे प्रति मैं पूरी तरह ईमानदार रहा हूं···

—और तुम्हारी ईमानदारी का सार्टिफिकेट है यह फोटो ! उनकी बात काटते वह व्यंग्यात्मक लहजे में बोली ।

जिस औरत के साथ चौथाई सदी बिताई और वह भी पूरी ईमानदारी से, उसी के मुंह से ऐसी बातें सुन उन्हें धक्का लगा । आशंका तक नहीं थी कि उनकी आधुनिका पत्नी इतनी शंकालु और संकीर्ण-हृदय होगी । उन्हें ऐसी औरत का पति होने पर शर्म महसूस हुई ।

--मैं तुम्हें नहीं बता सकता कि यह कौन है। उन्होंने कठोर स्वर में कहा।

—रश्मि···उसने बेटी को आवाज दी।

—वह चौंक पड़े—उसे क्यों बुला रही हो ?

—ताकि वह भी यह सब सुन-देख ले।

—तुम नाहक बात को बढ़ाए जा रही हो। उन्हें झुंझलाहट होने लगी।

—क्या है ? लड़की ने कमरे में पांव रखते ही पूछा।

—सावित्री, कुछ मत कहना तुम्हें मेरी कसम···

—उसने फोटो देख ली है। वह मुझसे पूछ भी रही थी।

—रश्मि, अपने डैडी से पूछ कि यह कौन है ? फोटो को आग्नेय दृष्टि से देखते हुए उसने कहा और भुनभुनाती हुई कमरे से बाहर चली गई। लड़की को इस विषय में वह क्या बताएं ? वे सोचने लगे।

वह उत्सुकता से उनके चेहरे की ओर देख रही थी।— हां तो, बताइए···

—बताने को कुछ हो तो बताऊं···तुम लोगों को आज हो क्या गया है ?··· मुझे क्यों परेशान कर रहे हो ! उनकी ऊंची आवाज़ सुनकर वह सहम गई।

पत्नी और लड़की का एक-एक प्रश्न उन्हें कुरेद गया। एक-एक प्रश्न इल्जाम है—कष्टकारक, पर इससे भी अधिक मर्मांतक है वह सब कुछ जो मां-बेटी ने याद दिला दिया है। वह बाहर जाने के लिए तैयार होने लगे। सोचकर आए थे कि उद्घाटन समारोह में बेटी को भी साथ ले जाएंगे, पत्नी को भी। पर यहां तो सीन ही बदल गया है। ड्राइवर को गाड़ी निकालने के लिए कहा। किसी ने नहीं पूछा, कहां जा रहे हैं···अभी तो आए हैं। वह भी बिना किसी से बात किए पिछली सीट पर बैठ गए। पत्नी के कमरे की ओर देखा, दरवाजे पर लगा पर्दा हिल रहा था। लड़की के पांव झांक रहे थे। अकेले बैठते ही अस्तित्वहीन स्मृतियां समय की कब्रों से उठकर एकदम नये अर्थ लेकर आसपास तैरने लगीं।

—चलो···

गाड़ी चल पड़ी थी। वह उनके कंधे पर सिर झुकाए उदास चित्त बैठी थी। बीच-बीच में बातें करते हुए कभी रो पड़ती थी। वह ढाढ़स बंधा रहे थे।—शहर में कितने ही डॉक्टर हैं, कोई-न-कोई तो मान ही जाएगा।

अनु, वह लड़की उनकी बात सुन सिसक पड़ी।

—तुम जल्दी से डैडी को चिट्ठी लिखकर मेरे बारे में बता दो। अब छिपाना मुश्किल है।

डैडी ! उनकी आंखों से एक चेहरा गुजर गया— सख्त और रौबीला। जिसकी हर बात आदेश होती। उनसे इस किस्म की कोई आशा रखना बेकार है।

वह पतझड़ के दिन थे। शाम गहरा रही थी जब उन्होंने शहर को आखिरी

बार देखा। लोग अपने-अपने काम में व्यस्त थे। उनके दाएं-बाएं सड़क की बत्तियां जलने लगी थीं; उन्हें लगा था जिस सड़क पर उनका टांगा चल रहा था वह दूर पीछे से किसी तिलस्म-टूटे देश से चली आ रही है। वह शहर छोड़ रहे थे। कारण स्पष्ट था फिर भी वह मान नहीं रहे थे कि वह उस लड़की के गर्भ से डर गए हैं, कि वह कायर हैं। और कोई कारण तलाश करने लगे वह। टिकट लेने के बाद, ट्रेन में चढ़ने तक उन्हें आशंका रही कि लोग उन्हें पहचान लेंगे। उन्होंने बारीकी से आसपास भी देखा था। कहीं उनके हाव-भाव से लोगों को यह पता तो नहीं चल गया कि वह भाग रहे हैं। वह वक्त से पहले ही डिब्बे में बैठ गए और बड़ी बेसब्री से ट्रेन के चलने की प्रतीक्षा करने लगे थे। ट्रेन सरकी तो उन्होंने सुख का सांस लिया। गाड़ी जैसे-जैसे आगे जा रही थी उनका मन पीछे भाग रहा था। बार-बार अनु का आंसुओं में डूबा चेहरा याद आ जाता। मन ग्लानि से भर उठता। फिर उन्होंने सोचा था, न कोई रोजगार है न कोई काम-धन्धा, वह अनु के साथ कैसे सैटल हो सकते हैं। वही ठीक है जो होने जा रहा है।

उन्होंने गाड़ी उद्घाटन-स्थल से कुछ फासले पर खड़ी करवाई। वह जल्दी आ गए हैं। अभी वहां इक्का-दुक्का आदमी ही आया है। उन्होंने गाड़ी मुड़वायी और नदी की तरफ चल पड़े, किसी मित्र के पास जाने से उन्होंने कहीं एकांत में बैठना बेहतर समझा। घाट की भीड़ से परे एक पत्थर पर बैठ गए। नदी की लहरें किनारा छोड़ रेती पर लौट रही थीं। लौटती दफा पानी रेती पर अपने निशान छोड़ जाता—आड़ी-तिरछी कुछ रेखाएं।

उन्होंने कोट की जेब से फोटो निकाली। पीली पड़ गई फोटो, पच्चीस साल पुरानी। पर फोटो की आकृतियां उतनी ही, उतनी ही आकर्षक जैसे थीं। अचानक उनकी मानसिकता ने पलटा खाया। रेती पर किसी के फड़फड़ाने की आवाज़ आई। लगा कोई मर रहा पक्षी पंख फड़फड़ाने लगा है।

अनु ने आत्महत्या की थी। छत से लटककर या शायद कुछ खा कर। बरसों बाद वह उस शहर से गुजरे थे तो उन्हें लगा था हर आदमी उनको पहचान गया है, उनके विरुद्ध कोई षड्यंत्र बुन रहा है। वह चुपचाप वहां से गुजर गए थे।

उन्होंने उस तरफ से ध्यान हटाना चाहा पर उनके विचार उसी सीमित परिधि में भटकने लगे। पूरी विचारधारा उसी पेट फूली लाश पर आकर केन्द्रित हो गई, उन्होंने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। अपराध भाव के आते ही उन्होंने कुछ आवाज़ें सुनीं, कोई हंस रहा था। आसपास देखा, सिवाय रेत के ढूहों के और कोई नहीं था। आवाज़ पुनः आयी, कोई अट्टहास कर रहा था। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि आवाज बाहर से आ रही है कि अन्दर से। फिर कोई औरत लहरों पर हल्के पैरों चलती, रेत पर बिना कोई चिह्न बनाये उनकी ओर आने

लगी, दूर से वह पहचान नहीं पाये, पर ज्यों-ज्यों वह पास आती गयी उनकी धड़कन बढ़ती गयी। वह नपी-तुली चाल से उनके सामने आकर खड़ी हो गयी। उसकी आंखें भावशून्य थीं, चेहरा पीला, उसके केवल होंठ हंस रहे थे। डर से उन्होंने आंखें बन्द कर लीं, पर वह जैसे पलकों से चिपक गयी, अचकचाकर उन्होंने आंखें खोल दीं। वह वहीं थी, उन्होंने नज़र घुमायी तो वह साथ-साथ चलने लगी।

—पहचाना मुझे ?

—हां···हां···चली जाओ···तुम्हारा कोई वजूद नहीं। उन्होंने हाथ झटक हिम्मत बांधकर कहा। बेशक वह अन्दर से कांप रहे थे······उन्होंने देखा वह उल्टे पैरों चलती पानी में घुस गयी। उन्होंने पसीना पोंछा और गाड़ी तक आ गये। ड्राइवर उनका इन्तजार कर रहा था।

वह उद्‌घाटन स्थल पर पहुंचे। काफी लोग इकट्ठे हो गये थे। कुछ तो उनकी प्रतीक्षा में ऊबकर चले भी गये थे। कार से उतरते ही लोगों ने उन्हें घेर लिया। संयोजक उन्हें भीड़ से बचाते उस गेट तक ले गये जहां एक लाल फीता बंधा था और जिसे काटकर उन्हें आश्रम का उद्‌घाटन करना था।

उन्होंने कैंची से फीता काटा तो कई हथेलियां टकरा उठीं, कुछ लोगों ने आगे बढ़कर उनके गले में फूल मालायें डाल दीं। उनके अभिवादन का मधुर मुस्कान से कर-बद्ध हो जवाब देते वह मंच पर आये।

—उपस्थित सज्जनो······उन्होंने पहला शब्द ही उच्चारित किया था कि वही अट्टहास कानों के पास सुनाई दिया। उन्हें गर्दन मोड़ने का साहस न पड़ा।

—तुम फिर आ गयीं। उन्होंने उसे डांट दिया।

—मैं यह देखने आई हूं कि तुमने अपने अपराधी चेहरे पर कौन से मुखौटे चढ़ा लिये हैं।

उन्हें लगा वह सभी के सामने उनका भांडा फोड़ देगी और पल भर बाद लोग उन पर जूते बरसा रहे होंगे। उन्होंने उसे कोहनी से पीछे धकेल दिया और लोगों से मुखातिब हुए। आश्रम के महत्त्व पर दो-चार बातें कहकर वह बैठ गये। संयोजकों को निराशा हुई। उन्होंने अस्वस्थ होने का बहाना बनाकर क्षमा मांग ली।—तुम अब झूठ भी बोलने लगे ! वही थी। उन्होंने सिर झटककर उसे हटा दिया।

संयोजक उन्हें कक्ष में ले गये जहां मीटिंग होनी थी। सभापति ने आश्रम द्वारा किये जाने वाले कार्यों का ब्यौरा रखा। उनकी राय पूछी गई।

—हमें चाहिए कि पहले-पहले हम······सभी उनकी ओर अपेक्षित नज़रों से देख रहे थे कि किसी ने उनके मुंह पर हाथ रख दिया।— ये सब तुम करोगे ? तुम जो अपनी अनब्याहता पत्नी को स्वीकार करने की हिम्मत नहीं कर सके।

—अरे तुम लोग चुप क्यों हो गए ! मैं कहीं उलझ गया था, अपनी स्थिति का

भास होते ही वह बोले और खुद ही हंसने लगे ।—भई, आदमी जैसे-जैसे बूढ़ा होता जाता है उसका चित्त भटकने लगता है। वह बातचीत में पुनः खुलकर हिस्सा लेने लगे । कई योजनायें बनीं, उन्होंने अपने ऊपर कई जिम्मेवारियां ले लीं ।

—तुम कोई काम पूरा नहीं कर सकोगे, तुम कायर हो। वह अशक्त हो गये। हर बार जब वह आती है तो दिल की धड़कन तेज हो जाती है । लौटते समय वह उन्हें शरीर की कुल चेतना के बदले ठंडा पसीना दे जाती है ।

—आपकी तबीयत ठीक नहीं तो आप चले जाइये। आपका संरक्षण ही हमारे लिए सौभाग्य की बात है, संयोजक बोले । वह उठ पड़े, घर जाना ही ठीक होगा। पर घर जाकर फिर पत्नी का सामना करना पड़ेगा। वह पूछेगी— वही प्रश्न ।

घर पहुंचे तो उनके कमरे में अभी अंधेरा था। कुछ देर वह यूंही अंधेरे में बैठे रहे। जो कुछ आज हुआ था उस पर सोचने लगे। न चाहते हुए भी ध्यान उस लड़की की ओर चला जाता, उससे भी आगे—उसके गर्भ पर।

उन्हें लगा कमरे में उनके अलावा कोई और भी है। किसी के दबे-दबे सांस लेने की आवाज़ आ रही है। चौंककर उन्होंने बत्ती जला दी। कोई नहीं, केवल एक ठहाका खिड़की के रास्ते बाहर चला गया।

कमरे की बत्ती जली देखकर उनकी लड़की भीतर आई और कोट उतारने में उनकी मदद करने लगी।—डैडी आप मम्मी को बता क्यों नहीं देते, उन्होंने तब से कुछ खाया नहीं है। जिद्द करके बैठी हैं, उन्हें बिजली का तार छू गया। तो इन लोगों ने बात खत्म नहीं की है।

—अच्छा तो सुनो, यह लड़की मुझसे प्रेम करती थी, उन दिनों मैं लॉ पढ़ता था, फिर अचानक एक दिन मुझे छोड़कर चली गई।

—कहां ?

—मुझे मालूम नहीं, मुझसे रूठ गयी ।

—पर आपसे रूठी क्यों वह ?

— मुझे क्या पता ?

—कहीं आपने तो नहीं छोड़ दिया उन्हें।

—नहीं···उन्हें फील हुआ बातचीत आगे चली तो वह रेत के टीले की तरह भुरभुरा जायेंगे।

—आप झूठ बोल रहे हैं, आपसे कुछ पूछना बेकार है। वह कुछ और न बोली और चली गई।

कमरे में वह अकेले नहीं हैं, उन्होंने महसूस किया।

—तो मैं तुम्हें छोड़ गई··झूठे···इतना बड़ा आरोप लगाते तुम्हें शर्म नहीं आयी······खैर, अब मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगी। वह अन्दर तक कांप गये।

तो वह अब उनके साथ रहेगी। उन्हें लगा वह एक अंधेरे कुएं में गिर पड़े हैं और उनके साथ एक पेट फूली लड़की की लाश है। लड़की मृत है पर उसका पेट अभी जीवित है और भीतर कुछ कुलबुला रहा है।

डाइनिंग टेबल पर वह अकेले ही थे। पत्नी का चेहरा गर्दन तक तना हुआ था और लड़की मां के पास बैठी हिकारत से उन्हें देख रही थी। वह बीच में ही उठ पड़े। सुबह उनके मुलाकाती न आये होते तो वह मौन और अकेले बैठे पगला जाते। छोटे-छोटे कामों में अपने को उलझाए रखा उन्होंने। हर समय खतरा रहता कि कहीं वह फिर न आ जाए। वह न भी आती तो भी उसका अहसास उनसे चिपटा रहता, जोंक की तरह। वह मुक्त होने की जी-तोड़ कोशिश करते। उनकी हर असफल कोशिश पर वह मुस्कराती—रघु, मैं अब तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगी, तुम्हारे साथ ही रहूंगी।

कचहरी में अपनी कुर्सी पर बैठे उनका दिल घबराता। कटघरे में मुजरिमों के चेहरों में उन्हें अपना चेहरा नजर आता। कोई सवाल पूछने से पहले वह उसे मन ही मन दोहरा लेते। उनके मुंह से कुछ और ही न निकल जाये। फैसला देते समय उनका हौसला अंजुरी में लिये पानी की तरह रीत जाता। सामने लगे क्लाक में कांटों के स्थान पर लाश लटकती नजर आती।

अपने हर काम को वह उसे तराजू मानकर तौलते। उन्हें विगत पच्चीस वर्षों में किया अपना हर काम अवसादपूर्ण और गलत लगता। वह कुछ भी करें उस कालिख को धो नहीं सकते। लगता, उनके भीतर काला कोलतार सड़ांध मार रहा है। पसीने के स्थान पर उनके रोम छिद्रों से वही कोलतार रिस रहा है, उनके कपड़े काले होते जा रहे हैं।

कचहरी में कोई मूर्ख अपराधी उनके सामने माफी के लिए गिड़गिड़ाता तो उन्हें महसूस होता वह विवश होकर अनु के आगे गिड़गिड़ा रहे हैं।—अनु, मुझे माफ कर दो। मैंने जो कुछ किया था उसकी सज़ा मैं इन दिनों में भुगत चुका हूं। अपने रघु को माफ नहीं करोगी।

—माफी तुम मुझसे क्यों मांग रहे हो? अपने आप से मांगकर देखो। माफ करना क्या तुमने इतना आसान समझ रखा है! वह आवाज़ सुनकर सहम जाते। अपने मन की अदालत में अपने को असली रूप में प्रस्तुत करने का साहस उनसे नहीं होता।—रघुवीर ठाकुर तुम पर कत्ल का इल्ज़ाम है। एक गर्भवती लड़की के कत्ल का इल्ज़ाम! तुम्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई जाती है। बची आयु तुम इसी कोठरी में पूरी करोगे।

उन्होंने स्वयं कई उलझे हुए केसों के बड़े-बड़े फैसले दिये हैं पर इस फैसले को सुनकर वह बेवस हो गये। उन्होंने हाथ पीछे छुपा लिये, जैसे उन पर हत्या के निशान बाकी हों।

पत्नी से कतराने लगे हैं आजकल।

—आप यहां क्या कर रहे हैं? वह उन्हें आजकल अकेले नहीं छोड़तीं। हर समय इस खोज में रहती कि उनके विरुद्ध उसे कोई और ठोस सबूत मिले। वह ऐसे आदमी की तरह फुफकारती फिरती जिसका गुस्सा पल-पल बढ़ता जा रहा हो और उसे फूट पड़ने के लिए कोई उचित बहाना न मिल रहा हो। पत्नी की शंकालु आंखें उन्हें दूर तक सालती गईं। हाथों को पीछे छिपाते हुए कहा—कुछ नहीं।

—हाथों में क्या है?

—कुछ नहीं···उनके जवाब देने तक उसने कागज झपट लिया। केवल कलम ही उनके हाथ में रही। अनु, मुझे माफ कर दो। अनु, मुझे माफ कर दो··· कागज पर ऊपर से नीचे तक बारीक, मोटे, तिरछे-आड़े अक्षरों में एक ही बात लिखी थी। कोई और सुराग न देखकर वह हाथ नचाकर बोली—उससे कौन से गुनाह की माफी मांगी जा रही है! माफी तो तुम्हें मुझसे मांगनी चाहिए···कौन है यह कुलच्छनी जिसका बुरा साया मेरी गृहस्थी पर पड़ा है। बताओ कौन है? मैं उसका मुंह नोच लूंगी। वह मुट्ठियां भींचकर उनके और पास आ गयी। वह बोलने लगे पर शब्द गले में किसी सोखता कागज ने सोख लिये, केवल हवा बाहर निकली—पफ···पफ···

वह कैसे बता दें। बता देने पर स्थिति और भी विस्फोटक हो जायेगी। जो बात उनके हृदय की कब्र में दफ़न है उसे वहीं रहने दो। उस लाश को सामने न लाओ। चाहे उसमें कीड़े पड़ गये हों और सड़ांध उठने लगी हो।

उन्हें कुछ बताते न देख पत्नी जो मुंह में आया उगलने लगी। उन पर असंगत दोषारोपण करने लगी। उसकी बातों से वह तड़प उठे, कोई सफाई देना सम्भव नहीं था। पत्नी कागज की चिन्दियां उनके चेहरे पर उड़ाती बाहर चली गई। वे नीचे झुके और एक-एक बिट को बीनकर फोटो के पास वास्केट की जेब में रखा। उनकी क्षमा-याचना की अपील नामंज़ूर हो गई है। अब उन्हें सज़ा भुगतनी है। जीवन भर इस अंधे कुएं में चमगादड़ की तरह भटकना है।

दिन अग्निकुण्ड बन गये और रातें अन्धेरे कुएं। हर सुबह सूर्य नयी जलन लेकर आता। वह झुलसते रहते, ज्यों ज्यों शाम होने लगती, अंधेरा घिरने लगता तो अग्निकुण्ड कुआं बन जाता। वह चमगादड़ की तरह चक्कर काटते। वही परिधि, वही व्यास। वह सपना देखते एक अंधा सांप किसी खड्डे में गिर पड़ा है। घबराया हुआ बाहर निकलने की कोशिश कर रहा है। बार-बार वह दीवार पर फन मारकर लहूलुहान हुआ जा रहा है। उन्हें लगता अतीत बर्फ की सिल्ली है और वह तिनके की तरह उसमें जम गये हैं। ईश्वर जाने यह बर्फ कब पिघलेगी!

अपने दिमाग से चिमटी जोंक से मुक्ति पाने के लिए वह सिर झटकते। चारों

ओर से आती आवाज़ें उठती उंगलियां बनकर उनकी ओर लपकतीं। एक-बारगी तो वह कांप जाते। हर उंगली उन पर शर्मनाक तोहमत लगाती। पर धीरे-धीरे वह स्थिति पहचानते, यह सब तो उनकी नियति बन गया है। इससे भागकर कहीं नहीं जा सकते। वह किसी भी दिशा में भागें सभी दिशायें कुछ दूर जाकर मुड़ जाती हैं, उसी कुएं की ओर।

साफ लगता, उनके कन्धों पर एक लाश है। कितने ही दिन हो गये इस लाश को उठाये-उठाये। कोई ऐसी जगह नहीं मिली जहां वह उसे रख सकें। उन्हें भय लगता, यदि वह उसे कहीं छोड़ेंगे तो वह फिर जीवित हो उठेगी और उन्हें दबोच लेगी। मजबूरी! एक दीर्घकालीन मजबूरी! आजीवन इसे ढोते जाना है। कभी तो उन्हें यहां तक लगता कि वह लकड़ी का विमान है जिस पर एक लाश सजा-कर रखी है। चलते-चलते वह मुड़कर देखते। कहां लोग शवयात्रा के लिए तो नहीं आ रहे पीछे-पीछे।

उनकी यही कोशिश रहती कि घर से बाहर ही रहा जाये। पार्क में बैठे वह अपनी पिछली ज़िन्दगी पर नज़र दौड़ा रहे थे। उन्हें संतोष हुआ कि सिवाय उस काम के उन्होंने ऐसा कोई काम नहीं किया है जिसके लिए उन्हें पछताना पड़े। उन्होंने आंखें मीचीं तो दूर तक एक हरा-भरा मैदान फैल गया। उनकी ज़िन्दगी का मैदान कितना हरा-भरा रहा है, उन्हें यह देखकर संतुष्टि हुई। पर इसी मैदान में एक सूखा ठूंठ तन्हा खड़ा है जिसकी डालों में कई मरोड़ पड़े हैं। इसे देखकर उनका मन संताप से जलने लगा। उनके देखते-देखते ठूंठ आग उगलने लगा, जिस से सारी हरियाली झुलसने लगी।

उन्होंने घबराकर आंखें खोल दीं। दूर कोई जोड़ा लिपटा-सा बेंच पर बैठा था। मर्द ने एक बार चारों ओर देखा और लड़की को चूम लिया। लड़की तृप्त-सी पड़ी रही। कुछ देर बाद वह लोग उठ पड़े। उन्होंने एक बार पुनः सरसरी तौर से देखा तो चौंक उठे। उनकी अपनी लड़की! रश्मि! उन्हें लगा वह दौड़कर जायेंगे और उस लड़के, राघव को दबोच लेंगे। उनके कुछ करने से पहले ही वे एक-दूसरे में डूबे उनके सामने से निकल गये। उन्होंने बड़ी अशक्तता महसूस की। उनके सामने कोई उनकी लड़की को कलुषित कर रहा है और वह कुछ नहीं कर सकते। अपना आप अपाहिज लगने लगा।

वह चलने को हुए तो दूर से वह आती दिखाई दी। वही नपी-तुली चाल! —जानते हो यह सब देखकर भी तुम कुछ कर क्यों नहीं पाये हो? तुमने मेरे साथ वह सब किया था जो आज वह नौजवान तुम्हारी लड़की से कर रहा था। तुमने तो···वह उठे और लगभग भागते-से सड़क पर आ गये। घर पहुंचे तो अभी लड़की नहीं आयी थी।

—तुम्हारा दिमाग फिर गया है। जरा सोचो अगले साल तुम रिटायर हो

रहे हो फिर भला तुम्हें कौन पूछेगा। रश्मि के लिए इतना अच्छा लड़का मिलना कठिन है। पत्नी से अन्तरंगता का टूटा तार जोड़ने के लिए उसे परामर्श दिया था कि लड़की को राघव से अधिक मिलने-जुलने की छूट न दे, उसके लक्षण ठीक नहीं, उत्तर में पत्नी फट पड़ी थी।—तुम्हें घर की फिक्र नहीं, मुझे तो है। बेटी जवान हो गई है और बाप को अपनी ही प्रेम-पींगों से फुर्सत नहीं मिलती।

उनका जी हुआ पत्नी का गला दबा दें। पर जब अपने ही अन्दर कोई कमजोरी हो तो किसी को क्या कहा जा सकता है। ऐसी ही कमजोरी उन्हें फटने से पहले ही दबा देती है और वह फिस्स···हो जाते हैं!! उनकी पत्नी समझती है उनका अब भी उसके साथ कोई अनैतिक सम्बन्ध है। उन्हें लगता आज जब वह नहीं है तो उसके साथ उनके सम्बन्ध पहले से अधिक ईमानदार और करीबी हैं। उन दिनों जवानी में उन्होंने कभी इसे पूरी ईमानदारी से नहीं स्वीकारा था। हमेशा एक सतही भाव बना रहता था। यही कारण था कि उसे उस हालत में असहाय छोड़ते हुए उन्हें कोई विशेष दुःख नहीं हुआ था। पर अब उन्होंने अपने उस सतहीपन को इतनी तीव्र संवेदनशीलता से महसूस किया है कि वह मानसिक यंत्रणा के शिकंजे में जकड़े जा रहे हैं। फिर वह सोचने लगे कि यदि वह उससे विवाह कर लेते तो जीवन कितना सुखी हो जाता! उनके सामने उसकी देह उभर आई। महसूस करने लगे वह उनकी पत्नी है।

—तो अब तुम एक मरी हुई औरत के साथ मानसिक व्यभिचार पर उतर आए हो? वह सर्र से उनके सामने से गुजर जाती।—नहीं-नहीं, वह तो मैं यूं ही ··वह कांप उठे।

वह स्टडी में बैठे फैसले लिख रहे थे। बहुत दिनों बाद उनका काम में जी लगा था। इन दिनों में उन्होंने स्थिति को स्वीकार कर लिया था। एक आदत डाल ली थी, उसकी उपस्थिति में काम करने की।

पत्नी आकर दहलीज पर खड़ी हो गई और उनकी आंखों का इन्तजार करने लगी। वह चुप और उदास थी। उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया तो वह उनके सामने आकर बैठ गई। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद उसने गर्दन नीचे किये-किये ही कहा – कितने दिनों से राघव नहीं आया। उसका स्वर चिंतित था।

—मुझे खुशी है। उन्होंने बिना उधर देखे कहा।

—रश्मि रो रही है। उसे किसी डॉक्टर के पास ले जाओ।

—क्या रोग है उसे? वह चौंक पड़े।

—अब डॉक्टर ही उसे इस कलंक से बचा सकते हैं।

—यह तुम क्या बक रही हो···उनकी समझ में बात आ गई थी,—होश तो ठिकाने हैं तुम्हारे···

—रश्मि···उन्होंने बेटी को आवाज दी।

—जो कुछ तुम्हारी मम्मी कह रही है वह ठीक है?

—डैडी···वह उनसे लिपट गई···उसने मुझे धोखा दिया।—वह कहीं चला गया है···

उन्होंने अपना आप छुड़ा लिया और एक तरफ खड़े हो गये!

सहसा वह उनके सामने आकर खड़ी हो गई और अट्टहास करने लगी। इस बार वह चौंके नहीं, चुपचाप सुनते रहे – बोलो अब क्या करोगे?···भाग जाओगे तब की तरह···वह देखते-देखते उनकी लड़की के शरीर में प्रवेश कर गयी।

—नहीं···पहले से ही मेरे कन्धे पर एक लाश है—मैं दूसरी लाश नहीं उठा सकता···मैं दूसरी लाश नहीं उठा सकता।

उन्हें लगा, अपने बारे में सही बातें उनके मुंह से अपने आप निकल जाएंगी। अब स्थिति इतनी विस्फोटक नहीं रही है। उन्होंने एक अजीब बात महसूस की—वह हल्के हो गये हैं।

लड़की के साथ वह गाड़ी में बैठ गए। वही पिछली सीट, वही समस्या, केवल पात्र अलग हैं···अजीब पुनरावृत्ति हुई है।

दिशायें एक बार फिर मुड़ गई हैं, उन्हें लगा।

कौरव-पाण्डव

□ दीदार सिंह

छम्ब सैक्टर में भारत तथा पाकिस्तान की सेनाओं के मध्य युद्ध टैंकों, तोपों और मशीनगनों के बाद हाथा-पाई पर उतर आया था। संगीनों, कुन्दों और कमर की बैल्टों से भी काम लिया जाने लगा। पाकिस्तानी रेंजर्ज़ के एक सैनिक ने भारतीय गोरखा रेजिमेण्ट के एक जवान को मारने के लिए राइफल का कुन्दा जब ऊपर उठाया तो मजीद ने उसके गले में बैल्ट डालकर उसे पीछे अपनी ओर खींच लिया। गला दबाए जाने से पाकिस्तानी सैनिक की आंखें बाहर को आने लगीं। जब उसके सिर का पिछला हिस्सा मजीद की छाती पर आकर रुक गया तो उसे देखते ही मजीद हक्का-बक्का-सा रह गया।

यह तो रशीद था—उसका चचेरा भाई। बंटवारे के बाद मजीद के चचा अपने परिवार को लेकर पाकिस्तान चले गये थे लेकिन मजीद अपने अब्बा के साथ भारत में ही रह गया था। उस समय मजीद और रशीद बहुत छोटे-छोटे थे। बंटवारे के बाद दोनों परिवारों के बिछुड़ने पर दोनों के बीच पत्र-व्यवहार जारी रहा। बीच-बीच में दोनों परिवार एक दूसरे को मिल भी आते। मजीद और रशीद के बीच गहरी मित्रता हो गई थी। कोई महीना ऐसा नहीं जाता था जब एक-दूसरे के एक या दो पत्र न आते हों। दोनों ने अपने-अपने देश में एक साथ शिक्षा समाप्त की और फिर कुछ समय के लिए दोनों बेकार रहे। बाद में पहले मजीद सेना में भरती हुआ और फिर रशीद। लेकिन दोनों ने यह कभी नहीं सोचा था कि ऐसे इनकी टक्कर भी होगी।

चेहरा पहचानते ही मजीद ने बैल्ट ढीली छोड़ दी और बोला, 'अरे रशीद, तुम ?'

'कौन ? मजीद !' रशीद ने भी पहचान लिया। फिर वह शीघ्र ही सम्भल गया और बोला, 'तू भी इन हमलावरों के साथ शामिल है जिन्होंने हमारे मुल्क पर हमला किया।'

'हमला हमने नहीं किया पहले तुम्हारी फौज ने किया है !'

'क्या सबूत है तुम्हारे पास ?'

'और तेरे पास क्या सबूत है ?'

'मजीद भाई, तुझे भारत के लिए नहीं बल्कि अपनी पाक धरती के लिए लड़ना चाहिए ।'

'तुझे भी उस धरती के लिए लड़ना चाहिए जहां तुमने जन्म लिया और पहली बार आकर आंखें खोलीं ।'

'हमारा वतन भारत नहीं बल्कि पाकिस्तान है जिसे हमने बहुत कुरबानियां देकर हासिल किया है ।'

'और मेरा वतन है भारत, जिसकी मिट्टी से मैं पैदा हुआ, पला और बड़ा हुआ—जिसके पानी, धूप और हवाओं को मैंने भोगा है ।'

'तू काफिरों से जा मिला है, खुदा तुझे कभी माफ नहीं करेगा ।'

'अपने वतन के साथ गद्दारी को भी खुदा कभी माफ नहीं करता । तुम्हारा वतन पाकिस्तान नहीं, बल्कि भारत है ।'

'अब भी कुछ नहीं बिगड़ा मजीद, तुम भारत को खैरबाद कह दो ।'

'तुम ही जिस मादरे-वतन को हमले से नापाक कर रहे हो, उसकी पनाह क्यों नहीं ले लेते ?'

'मेरा ईमान है अपने पाक वतन के लिए लड़ना और मरना । मैं अपने वतन का गाज़ी हूं ।'

'तू ईमानदार है तो हम ही क्या बेईमान हैं ! मैं भी जान दे दूंगा लेकिन तुम्हारी फौज के नापाक कदम अपने वतन पर नहीं पड़ने दूंगा ।'

'देखो भाई मजीद···'

'नहीं ! इस समय हम भाई नहीं हैं—एक-दूसरे के दुश्मन हैं । रिश्तेदारी एक तरफ और फर्ज़ एक तरफ ।'

'तो फिर ठीक है । मजीद ! तुम अपने वतन के लिए लड़ो और मैं अपने वतन के लिए लड़ूंगा ।'

और फिर दोनों आपस में उलझ गये । रात ढल चुकी थी । कभी पाकिस्तानी यान रेड करते तो कभी भारत के । रात भर वहां घमासान का युद्ध हुआ ।

प्रातः जब वहां भारतीय सेना का प्रभुत्व स्थापित हुआ तो रशीद का शव पाकिस्तानी सेना को सौंप दिया गया जबकि मजीद का शव भारतीय सेना ने स्वयं संभाल लिया था ।

छन्द के बन्ध

तो मैं स्वर्ण-विहान करूंगा।

□ दुर्गादत्त शास्त्री

देख रहा हूं महादम्भ का, कुटिल भयंकर मोहक नर्तन,
दुर्विलास इस राग-रंग से, उसके क्रीड़ा-गृह छूम-छनन,
मैं पशुता की अंधियारी में, साथी! ज्योतिर्दान करूंगा।
अरे नहीं कलियां खिल पातीं, और नहीं है सुमन-विकास,
दूर दूर अति दूर है उनसे, उनका मंगलमय मधु-मास,
मैं उनकी आशायें पूरी करने, यत्न महान् करूंगा।
जल-थल-अम्बर पर मानव ने, अपनी जय के गीत अलापे,
स्वयं प्रभु है आज बना यह, कौन है जो इसका बल मापे,
फिर भी मानवता रोती है, मैं उसका सम्मान करूंगा।
आओ यौवन! शक्ति-पुंज तुम, आगे बढ़ मुझको गति देना,
सुन रे भाग्य-विधाता जग के, सृजन-यज्ञ में आहुति देना,
तू ने साथ दिया यदि मेरा, तो मैं स्वर्ण-विहान करूंगा।
मेरा यौवन, मेरी मस्ती, मेरा सब कुछ मेरा जीवन,
मेरे सपने मेरी चाहें, मेरा सुख-दुख औ तन-मन-धन,
जग के हित हैं, इस पर ही मैं, हंस-हंस सब बलिदान करूंगा।
ओ माया के मादक इंगित, तब तक दूर रहो तुम मुझसे,
जब तक जगती के कण-कण पर सुषमा का अमृत-कण सरसे,
मैं स्वार्थ के विकट वक्ष पर, तेज तीर सन्धान करूंगा।
मेरे साथी नभ के तारे, जो जीवन देकर उजियारे,
मेरी प्रिय है दीप की बाती, जो जगहित निज जीवन बारे,
दोनों से संबल लेकर मैं, अपने को गतिमान करूंगा।

गीत के पहले बोल

□ चन्द्रकान्त जोशी

गीत के पहले-पहले बोल।
गये कानों में मधुरस घोल।।
हृदय के मुक्त हुए सब द्वार
उड़ा तब पंछी नभ की ओर
पंख पवन से भी कुछ तेज़—
ढूंढ़ते थे प्राणों का छोर।
दूर कुछ देखा उसने चांद,
गया उस नील क्षितिज को फांद,
पुनः उड़ता पंखों को तोल
मिला क्या लेकिन वह अनमोल?
गीत के पहले-पहले बोल।
गये कानों में मधुरस घोल।।
प्रणय के बन्धन फिर-फिर बांध,
काटता पंछी नभ के फेर।
धरा से जाता जब वह दूर,
मेघ लेते फिर उसको घेर।
सुनाई जाने किसने टेर!
धरा पर फिर आया वह लौट,
किन्तु विवश-सा वह अनजान,
स्वयं ही जाता बेसुध डोल।
गीत के पहले-पहले बोल।
गये कानों में मधुरस घोल।।

गीत को करुण-सिन्धु में बोर,
लिये लाखों के हिय ही खींच।
स्वप्न देखें दिन को यह प्राण।
इसी से लोचन रहते मींच।
सभी इस गायन में हो लीन,
भूल जाते सुख-दुख का ज्ञान।
भरा रहता मन में आलोक
नाचता पंचरंगी सब चोल।
गीत के पहले-पहले बोल।
गये कानों में मधुरस घोल॥

एक रहती है केवल चाह
रुके मत यह गायन की धार।
लीन हो जाएं तन-मन-प्राण—
पले जीवन में निश्छल प्यार।
आज सपने का चुभता शूल,
बही जाती दृग से जल-धार,
जगत की है कुछ ऐसी रीत।
डालते हैं सपनों का मोल॥
गीत के पहले-पहले बोल!
गये कानों में मधुरस घोल!!

गीत

□ शंकरदास 'पिपासु'

अपनेपन के गीत सुना दे!
गीत सुना दे, हिय हर्षा दे, जग पर सरस सुधा बरसा दे।

दुख के बादल घिर-घिर आए,
बिजली तड़प-तड़प तड़पाए,
सुख समीर के प्रिय झोंकों से दुख के बादल दूर भगा दे।
अपनेपन के गीत सुना दे।

जगती जागरूक हो जाए,
जब तू सुख के गीत सुनाए,
तुझ पर निर्भर जगती का सुख, जग के रूठे मीत मना दे।
अपनेपन के गीत सुना दे।

दुख के गीत न सुनता कोई,
सुनकर सीस न धुनता कोई,
गा-गा जी ले, जी ले, गा ले, जीवन जग का सरस बना दे।
अपनेपन के गीत सुना दे।

प्रात की चेतना

□ पृथ्वीनाथ 'मधुप'

चांदनी अपना आंचल
पसारे चली
बस्तियां और वन
एकमन हो गये
लालिमा की डगर पर
फिसलती हुई
कालिमा के चरण
थरथराते रहे
रात की बात भी
ऊंघती-ऊंघती
वेद की झुरमुटी डाल पर
सो गई
सहमे सहमे सितारे
चुनरिया लिये
आंख मलते हुए
झेंपते रह गये
खामुशी नीड़ के
राज़ की वेदना
झींगुरी साज़ पर
गुनगुनाती रही
रात के वक्ष में
प्रात की चेतना
करवटें ले के भी
कसमसाती रही
कसमसाती रही !

अंगार हूं मैं

□ मनसा राम शर्मा 'चंचल'

राख में लिपटा हुआ अंगार हूं मैं।
समझना मत भस्म का अम्बार हूं मैं।।

धधकती है इस हृदय में एक ज्वाला।
वेदना को प्रिय समझ कर है सम्हाला।
है हलाहल प्रिय मुझे भाती न हाला।
मिट चुके अरमान, पर साकार हूं मैं।
राख में लिपटा हुआ अंगार हूं मैं।।

थी कभी लाली बदन पर अब नहीं है।
चमकती आभा नयन में अब नहीं है।
है रुदन इक शेष पर सिहरन नहीं है।
जल चुके अरमान का आधार हूं मैं।
राख में लिपटा हुआ अंगार हूं मैं।।

एक झोंके तक बचे हैं प्राण मेरे।
युग-युगों से सुप्त हैं मृदुगान मेरे।
हैं समेटे इक कसक आह्वान मेरे।
है नहीं अधिकार जिसको, प्यार हूं मैं।
राख में लिपटा हुआ अंगार हूं मैं।।

कौन नभ में मुस्कराया

□ गंगादत्त 'विनोद'

सांध्य बेला आ गई जब,
अरुणिमा भी छा गई तब,
दूर अम्बर छोर से यह,
रंग था किसने हटाया !
कौन नभ में मुस्कराया !

तड़ित के कुण्डल पहन कर,
बादलों के पर लगा कर,
तारकों के दीपकों का,
हार भी किसने सजाया !
कौन नभ में मुस्कराया !

बह चली आंधी प्रखरतर,
चल रहा चारों बवण्डर,
सांस लेकर हाय ! किसने
गग़न का उद्गम बहाया !
कौन नभ में मुस्कराया !

जलधि में तूफ़ान भर कर,
धरणी पर भूकम्प ला कर,
पर्वतों की हलचलों से,
विश्व था किसने हिलाया !
कौन नभ में मुस्कराया !

मधुर स्वप्नों में विचरते,
प्रिय-मिलन-अभिसार करते,
कान में मेरे मधुर स्वर-
नाद किसने झनझनाया !
कौन नभ में मुस्कराया !

मैं हुआ पुलकित निरन्तर,
यह मिलन संकेत पा कर,
विलग होते बिन्दु को,
किस सिन्धु ने उरसे डराया !
कौन नभ में मुस्कराया !

खुल गए छन्द के बन्ध

तुम मांगते हो इतिहास

□ मोहन निराश

तुम मुझ से मांगते हो इतिहास
मैं समर्थ हूं केवल देने में एक लम्बा जुलूस
जो हर बार, हर गली से गुज़र कर
उसी चौक में जा पहुंचता है
जहां न जाने किस समय से वह ईश्वर खड़ा है !
जो मौसम बदलने के साथ टूटता है
और अचानक बिजलियां बुझा कर
कौन उसकी हर टूटन पर बासी खबरें मढ़ता है !
नहीं कह सकता
क्योंकि मैं नहीं जानता
इसलिए तुम्हारे इतिहास मांगने पर
मैं केवल दे सकता हूं
उसका अख़बारों की कतरनों से बना चेहरा
जो उसका कितनवां मुखौटा है
यह कौन कह सकता ?
क्योंकि समर्थ, असमर्थ सभी व्यक्ति
उस जुलूस के साथ गुज़रने के आदी हैं
बैसाखियों के साथ पिन की हुई गर्दनों पर लटकते चेहरे
किसके अपने हैं !
अपने नहीं हैं किसके ?
कम-अज़-कम मैं नहीं जानता
जिससे तुम इतिहास मांगते हो।

तुम मुझसे मांगते हो इतिहास
मैं केवल दे सकता हूं तुम्हें
एक बहुत-बहुत बड़ी सिल-चट्टान
जिसके आर-पार एक तेज़ चाकू उतरा पड़ा है।
एक हाथ हर बार जेब से बाहर आकर
उस चाकू को चट्टान से निकालता है और
घुसेड़ देता है अपने माथे में।
अपनी जिह्वा से चट्टान पर उसी के रक्त का
लेप चढ़ा देता है।
मैं इतिहास नहीं
उस चट्टान में पत्थर हुआ कोई विश्वास दे सकता हूं
जो कितना पुरातन है!
और है कितना शाश्वत!
नहीं कह सकता कोई हाथ
क्योंकि हाथ पर खिंची रेखायें
चाकू की नोक उतरने से बनी हैं
जो चट्टान की पीठ से निकली हैं।
मैं विवश होने पर
चाकू की नोक से अपनी दोनों आंखें निकाल कर
तुम्हें दे सकता हूं
तब भी तुम मुझसे इतिहास मांगते रहोगे।

तुम मुझसे मांगते हो इतिहास
मेरे पास बाकी बचा है केवल एक नारा,
मैं वही दे सकता हूं
और नारा है—
"तुम्हें इनकार है जिसे इतिहास मानने से
उसी को इतिहास मानो!"
हाट-बाज़ार में बिक रही कठपुतलियों से जो आंखें देख रही हैं
उनका रंग क्या है?
जो ज़बानें बिजली के खंभों पर लगे इश्तहार चाट रही हैं
उनकी भाषा कौन-सी है?

जिस रीढ़ में ताबूत की आखिरी कील उतर गई
वह मनुष्य कहाने-वाले किस पशु की है ?
जिन चरण-चिह्नों पर सूर्य के घोड़ों के खुर पड़े हैं
उनमें पड़े कीड़ों का यह कितनवां जन्म है ?
रातों में किसी धूमकेतु की किसी दिवस के नाम इबारत
किस लिपि में लिखी गई थी ?
मैं प्रश्नों के रूप में इतने सारे उत्तर दे सकता हूं,
इतिहास नहीं।
क्योंकि मेरी जेबों में इस नाम का कोई रुपया-पैसा नहीं।

तुम मांगते हो मुझसे इतिहास
मैं देने में समर्थ हूं
केंचुए, कांतर, छिपकलियां
या यदि दे ही सकूं
तो
दे सकता हूं चिमगादड़
जो हर मैं के साथ चिमटे पड़े हैं !
यदि काम चला सकते हो
तो तुम्हें अपना मैं दे सकता हूं
क्योंकि तुम जाति-बन्धु हो न मेरे !
वैसे तुम मांगते हो इतिहास।
मैं
और कितनी सारी तिथियों के साथ
दे सकता हूं
दो खूबसूरत-सी मृत्यु-तिथियां
(यह करने में मैं
        समर्थ भी हूं
        सक्षम भी)
क्योंकि तुम भी मर चुके हो
और मैं भी मर चुका हूं।

अभयदान

□ सुभाष भारद्वाज

"सुनते हो !
लोग तुम्हारे बारे में
क्या कहते हैं ?"

"भला क्या ?"

"वे कहते हैं—
तुम्हारी ज़ुबान
बहुत लम्बी हो गई है।
इतनी लम्बी
कि लाख पकड़ने पर भी
पकड़ में नहीं आती
लाख मापने पर भी
मापी नहीं जाती।"

"हां दोस्त !
मैंने भी सुना है
मेरे बारे में लोग
यही कहते हैं।
और उनका यह कहना
सत्य भी है
अक्षरशः सत्य।
लेकिन इस सत्य के साथ

थोड़ा-सा
यह सच भी जोड़ना चाहूंगा
(जो शायद मुझे लम्बी जुबान वाला
कहने वालों को
नहीं मालूम)
कि अपनी ज़ुबान को
इस बेपनाहदराज़ी के लिए
उतना मुजरिम
मैं स्वयं नहीं हूं
जितने कि ये लोग
जो मेरी ज़ुबान के पीछे
हाथ धोकर पड़े रहते हैं।
इसकी ताक-झांक
इसकी पकड़-धकड़ के लिए
जब देखो, जहां देखो
इसके रास्ते में खड़े रहते हैं
इसे खामोश रखने के लिए
अपने-अपने हाथों में
तरह-तरह के साइलेंसर पकड़े
हमेशा
इसके सन्मुख
अड़े रहते हैं।
और इस छीना-झपटी से
बचते-बचाते
अब हालत यह हो गई है
कि यह मेरी अपनी ही ज़ुबान
मेरी अपनी ही पकड़ से
बाहर हो गई है।"

"लेकिन मित्र !
आश्चर्य सिर्फ एक बात का है ?"

"वह क्या ?"
"वह यह, कि
इसकी लम्बाई से
लोग भला क्यों डरते हैं
यह लम्बी ज़रूर है
मगर सिर्फ लम्बी ही तो है
लेकिन न तो यमराज के हाथों जैसी
और न ही शैतान की आंत जैसी
अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र की तरह
दूर-दूर तक
मार करने वाली भी नहीं।

मेरे विचार में
शायद वे
इस तथ्य को नहीं जानते
कि जुबान
तब लम्बी होती है
जब दिमाग बेकार हो जाता है
यह तब बेतहाशा बढ़ती है
जब दोनों हाथ सिकुड़ कर
कंधों के भीतर धंस जाते हैं
जब आंख, कान और पैर
अपना-अपना काम छोड़ देते हैं।

और मित्र, सच कहना
इस हालत में
इसकी लम्बाई से
डरने वाले
बहुत बड़े मूर्ख नहीं
तो और क्या हैं ?"

अगस्त, १९८०

□ रतनलाल शांत

कपासी बादल !
कितने दिनों कांचों के पीछे से लुभाते रहे
आज रात
बिना पुकारे
रोशनदान उढ़का देखकर
नीले आसमान सहित घुस आए हो
तो पड़े रहो

सुनो, अंधेरा काजल नहीं राख है
जिसे अपनी आंखों में खुद झोंककर
लोग आंख मींचने का बहाना पाते हैं
कुछ देर
फिर दो-चार हाथ दाएं-बाएं मारकर
सो जाते हैं
कुछ और देर।

सुनो,
रात के सन्नाटे में नौजवानों ने
अखाड़ाई शंख फूंके हैं।
मेरी रीढ़ में त्रिशूल और फरसा
बजाती हुई
कुंडलिनी झनझनाने लगी है।

पेट दोनों हाथों से थामे
मैं सहमकर करने लगा था इंतजार।

सुनो,
रौरव से लौटे कुहरामी प्रेत
और रोज़े-क़यामत के दादे
दौड़ रहे हैं सरपट
उन दीवारों में आग लगा रहे हैं
जिनके आइनों में उन्हें अपने चेहरे
बदनुमा नज़र आए।
सीलन भरी कालिख वाली
पस्त दीवारों में।

श्वेत पुती ऊंची दीवारों के सामने
वे अचरज में खड़े रहेंगे
हड़बड़ाएंगे
कि सुबह होने से पहले कब्रों में
उतर जाएंगे।

दो भिन्न मूडों के दो गीत

□ पृथ्वीनाथ मधुप

शोले हुए चिनार।

ऊंचे हैं
फैले हैं
देख रहे
लाखों आंखें बन
क्या होता हर बार—
शोले हुए चिनार।

आग लगेगी
धू-धू धधकेगी
हर कर्म अवांछित
सूखे तिनकों, पातों-सा होगा
लपटों से दो-चार—
शोले हुए चिनार।

(२)

पत्ते चिनार के—
एक-एक झर गये
हो गई
एक ही

डालियां और मन
क्षण हुए सर्प-फण।
मर गई उड़ान—
परिंदों के पर गये।
धूप
मृत्यु-सेज पर
शोकरत यह गगन
पवन बांटता घुटन
धूम तिक्त फैलता—
बो रहा ज़हर नये।
पत्ते चिनार के—
एक-एक झर गये।

हरसिंगार झरे भिनसारे

□ उषा व्यास 'छवि'

शीश महलों में तुहिन के
नृत्य करती चांदनी के
हो गये हैं मूक नूपुर
तारिकायें सो रही हैं गोद में रख एकतारे
हरसिंगार झरे भिनसारे

बादलों की खींच चादर
ताल में सोये कमल-दल
छेड़ता फिरता है मलयज
टटकी कचनारी कली को चूमकर खिल जा पुकारे
हरसिंगार झरे भिनसारे

अमलतासी स्वर अधर पर
धर प्रभाती गाए निर्झर
नीड़ में पंखों की फड़-फड़
लो उनींदी शर्बरी ने पलक रतनारे उघारे
हरसिंगार झरे भिनसारे।

टूटते क्षितिज के साये

□ निर्मल 'विनोद'

बहुत त्रासद
टूटते ये क्षितिज के साये !
इस तरफ़—
ख़ानाबदोशों का सिहरता,
नित्य की मजबूरियां ढोता—

बिखरता
—एक पूरा देश है;
सब जहां निश्शेष है···

और वे हैं,
उस तरफ़—
यह सोचकर खुश—

बहुत दिलकश
हैं कई
हमने नये नारे उगाये।

बहुत त्रासद—
टूटते ये क्षितिज के साये।

राजा, तेरी नगरी में चोर

□ डॉ० अग्निशेखर

दिन
कोने में दुबकी हुई
सहमी बिल्ली से हो गए हैं
सांसों के उतार-चढ़ाव में
डूबते हुए
बच निकलती है
दिये की लौ।

अब हर ओर
दुर्गन्ध-सी फैल चुकी है खबर
कि जमीन की तहों को फाड़ता हुआ
घाटी का पिशाच
सतह पर उभर आया है
अब गुजरती नजरों से
कोई चोर झांकने लगा है
हर रोज खिड़की से सूरज
हिजड़ों की भाषा में
लिखा पत्र
दे जाता है लोगों के हाथ।

अब शहर में
हर ओर से तंग सड़कें

मुहल्लों में घुसकर
फुफकार रही हैं।

मुझे शिकायत नहीं
कि मेरा ढहता हुआ मकान
धूल के आंसू बहा रहा है
मेरा बचपन
धुंधलके में खोये पर्वत दामन में
गिरे हुए जहाज की तरह धंसा पड़ा है
नजरें दूर तक नहीं जातीं
हमारा नेतृत्व
बुझी लालटेन-सा
झोंपड़ी की खूंटी पर टंगा है।

लोग
बंद बिस्तरे में
चिनार की जड़ें लिये
किसी सुरक्षित कोने की तलाश में
एक अंधी सुरंग से कहीं भाग रहे हैं।

कुछ लोग
बाहरी और भीतरी घुटन में
तालमेल बिठाते हुए
नदी के आर-पार
एक पूरे शहर-सा बंट गये हैं
अब सैलाब
सिर की ऊंचाई से बह रहा है
हर कहीं शंकित भीड़ के बीच।
मंदिर मदारी से लग रहे हैं
मेरे आंगन में अक्सर
दिन की उगी घास
अंधेरे की भैंस चर जाती है

वैसे भी अब
मेरी बात रद्दी कागज में बदल रही है
यह नदी जो उम्र है
मत पूछिए कि तटों पर
कुछ खाली मकान
क्यों मायूस-से खड़े हैं
खिड़कियों से बाहर निकलता धुआं
वीराने को शब्द दे रहा है
मेरे मित्रों को शिकायत है
कि वे सरकारी नल के पानी-सा
व्यर्थ बह रहे हैं।

दफ्तरों में
कूड़ादानियों पर
रंग-रोगन के आदेश लागू हैं।
इधर अब हरे जंगल में
आरी तेज-तेज चलने लगी है
डरे हांगुल को कोई अंतर नहीं
कि देश के अखबारों में चर्चा है
कि उसकी रक्षा में
एक डाक-टिकट जारी हुआ है
अब अपनी बस्ती के पिछवाड़े
मलबों के नीचे दबी पड़ी
सड़कें खोजनी ही होंगी
कि कहां से मेरे पूर्वज
उतर कर गये थे
पर्वतों के उस पार।

बच्चे अब सोने से पहले
कहानियां नहीं सुनते
उनके भीतर
खुलती पंखुड़ियों पर

कोई सुई-सी चुभ रही है
मेरा बच्चा
रात को नींद में
एक खेल के बोल बड़बड़ाता है :
'राजा जी राजा'
क्यों राजा
श्रीनगर में चोर आया
किस रास्ते
इस रास्ते···
अब हर सांस में
कांपती है दिये की लौ

कलगी वाला मुर्गा

□ डॉ0 आदर्श

मुन्ना बहुत खुश है
ताली बजाता वह देख रहा है
अपने सामने कलगी वाला
सुनहरी मुर्गा !
मुर्गा देख रहा है—एकटक
सामने वाली दीवार की मुण्डेर
और उस पर बैठी नन्ही चिड़िया।

मुर्गा भी शायद चाहता है
मुण्डेर पर बैठना
पंजों पर डालता है जोर
फड़फड़ाता है पंख/उड़ाता है धूल
फिर गिर पड़ता है भरभराकर नीचे।
मुन्ना खुश होता है
मारता है किलकारियां
कितना अच्छा है यह प्यारा-सा मुर्गा !

फिर मुन्ना करने लगता है प्रतीक्षा
कि मुर्गा फिर करेगा कोशिश
कितना अच्छा लगेगा जब वह
फड़-फड़ करता उड़ेगा
ज़रूर पहुंच जाएगा मुण्डेर तक
वह इस बार—

बैठेगा नन्ही चिड़िया के पास।

किन्तु मुर्गा चुगता जाता है
दाने लगातार
मुन्ना सोचता है
जब मुर्गा गर्दन उठाकर
उस मुण्डेर और चिड़िया को देखेगा
तब वह ज़रूर उड़ेगा
पर मुर्गा गर्दन उठाकर देखता है
अपने सामने वाली मुण्डेर को
अजनबी की तरह
फिर से टूंगने लगता है अपने दाने !

मुन्ना खिन्न हो चला है
लौट चलता है अनमने कदमों से
घर की ओर—
पलटकर फिर से देखता है एक बार
शायद भरने वाला हो मुर्गा
अपनी पहले जैसी उड़ान।

आस्था का अकेलापन

□ अशोक कुमार

ओ पिता !
तुम्हारी आस्था
मैं वहन नहीं कर पाया
और अकेला हो गया
जैसे
बाढ़ में घिरा हुआ मंदिर।

अब जबकि
मुझे संबल चाहिए
और तुम नहीं हो—
कैसी विडम्बना है—
गत वैभव पर
गर्व तो कर सकता हूं
पर न वैभव हो पाता हूं
न आस्था।

जुगुप्सा और
भयावह
अंधड़ों के घेरे में
यह कैसा भविष्य है
पशुओं के मुंह से
जुगाली-सा टपकता हूं
मौसमों के अनिर्णायक
संघर्ष में
मेरी आंतरिकता और
व्यक्तित्व का जोड़
मात्र घास की
निरीह पत्ती…।

मेरी कविता बनाम रोगग्रस्त शहर

□ उपेन्द्र रैणा

मेरी कविता आज तुम्हें रुलाएगी नहीं
मैं जानता हूं
सारा शहर एक दर्दनाक कहानी सुन कर
अपना नाम तक भी खो चुका
मैं क्यों न इसे सच समझूं
लोग कुत्तों को पीले चावल खिलाकर
मेरी कविता को लिकोमिया की तरह पाल रहे हैं
जिस किसी को भी मेरे बीमार कुत्ते ने
काट खाया
फैलता गया वह
मेरी डायरी के पन्नों पर
एक कविता की तरह
इस शहर के पूरे इतिहास का साक्षी
यानी मेरा बीमार कुत्ता
अर्थात् मेरी कविता को लिकोमिया
की तरह पालना
अर्थात्/मेरे किसी भी पर्याय का इतिहास पूरा होना
अर्थात्/
कल रात जो मैंने स्वयं
अपना कुत्ता रोते देखा।
एक दस्तावेज़ है मेरी कविता का।
मैं कब का कह चुका हूं

मैं जो कुछ भी कहूंगा—सच-सच कहूंगा
सच के सिवा जो कुछ भी होगा—
कमज़कम मेरी कविता नहीं—
फिर भी लोग
मेरे बीमार कुत्ते को हमेशा
यही शब्द खिलाते रहे—
तुम्हारा मालिक महज़ एक कवि है।
खिड़कियां-दरवाज़े बन्द करके
उसकी बात मानने से इनकार करना।

टूटने के बहुत नज़दीक

□ महाराज कृष्ण सन्तोषी

हर टूटना
मेरे ही नज़दीक होता है
जैसे दीवार से गिरे शीशे की झंकार
कि जिसे मैं सुन लूं !

वह एहसास भी
मुझसे ही लिपट जाता है
जिसमें मरी हुई चिड़िया
और उजड़ा हुआ घोंसला—
दोनों साथ-साथ रहते हैं !

सूख जाने वाला हर
कुआं
मुझमें ही पनाह लेता है;
मैं
समुद्र में विनष्ट किसी पोत का
अंतिम जल हूं···
कि किसी भी सड़क पर घटी दुर्घटना
मेरे ही भीतर घटती है !

टूटे दर्पण के हर टुकड़े पर
झांकता है एक प्रतिबिम्ब
कि जिसे मेरे हस्ताक्षरों ने
प्रमाणित किया है !

मैं अब अपने को
टूटने के बहुत नज़दीक
पाता हूं।

परिचय

□ बलनील देवम्

व्यथाओं के घेरे में हम
चीखते-चिल्लाते से
कभी हंस पड़ते हैं अपने आप पर
वक्ष तान कर खड़े होते हुए भी
दब्बू से दिखने लगते हैं—
और कभी
नभ की ऊंचाइयों को
थामते-थामते
नीचे धंस जाते हैं—
इंगित की ओर बढ़ते पाद
विरोधी दिशा को
भागते हैं—
फिर भी
'मैं-मैं-मैं' का शोर
वायुमंडल में
तैरता रहता है।

प्रतिक्रिया

□ चंचल डोगरा

बंजर थी धरती
पर नदी उफनती
आंगन में मेरे
अनजाने रोपा
तुमने एक बिरवा
खुले
असंख्य अनुत्तरित प्रश्न
कोंपलों में

उझक कर
मेरे आंगन का बिरवा
छूने लगा खिड़की
भोर की
पहली किरण
फुनगी पर उतरी
गई पसर-पसर

ओ मेरे आंगन के बिरवे
मेरी नदी, नदी की धारा, धारा की गति
तुम्हारी हो, तुम्हारी हो।

अचानक
सूख गई
भीतर
लरजती-गरजती नदी।

हर शाम शहर से गांव की ओर

□ जवाहर रैणा

हर सीधी सड़क के बाद
एक मोड़—
अनचाहा;
अन्तर को और अकुला देता है—
कोई बेशर्म चौराहा।
कंकड़ीली, कंटीली पगडंडी पे
लौटने को पैर बेचैन
पत्तों से झांकता सवेरा
मेंहदी रची सांझ,
कजरारी रैन

आकाश के विस्तार को तोड़ देते हैं—
मिलों के भोंपू,
ऊंचे मीनार;
कंक्रीट के खंबे,
इस्पात के तार।
झूठे मेक-अप से परेशान
रंग भरे फूल,
हर कली के उरोजों पर
कितने घृणास्पद स्पर्शों की धूल।

हर शाम जब मैं
शहर से गांव की ओर चलता हूं,
पराग के हर कण से
लिपटता है—
कस्बाई शाम का
काला साया
हर सीधी सड़क के बाद
एक मोड़—
अनचाहा,
अन्तर को और अकुला देता है—
कोई बेशर्म चौराहा।

रिपोर्ताज

बटी-कटी घाटियों का दर्द

□ ज्योतीश्वर पथिक

बफ़लियाज की पहाड़ियों से सूर्य की किरणें झांकती हैं तो यह सुनहली घाटी चमचमा उठती है।

सुरणकोट की पहाड़ियों से निकला हुआ सुरण नाला और मंडी से आता हुआ कलाई नाला मिलकर पुंछ नदी के रूप में प्रकट होते हैं। इस नदी के झागदार दूधिया पानी को देखकर पहलगाम की लिद्दर नदी की याद आ जाती है। नदी का सफर बढ़ता है और बेतार (आंचलिक भाषा में इसे बेताड़ कहा जाता है) और पुंछ के साथ कृष्णा घाटी से मेंढर नदी मिलकर कुछ ही दूर जेहलम में मिल जाती है। बेतार हाजी पीर की पहाड़ियों से निकलती है और कृष्णा घाटी से आगे जेहलम में समा जाती है। हाजी पीर और जेहलम दोनों ही अब पाक-अधिकृत कश्मीर में हैं।

'पुंछ और मेंढर···अब यही दो तहसीलें हैं इस सिकुड़ते हुए जिले की जो कभी एक खुशहाल राज्य था। बाकी सब विभाजन की नज़र हो चुका साहब'—मली सिंह ठंडी सांस छोड़कर कहता है।···छरहरे कद का राजपूत युवक मलीसिंह चिंगस का रहने वाला है और मेरे दफ्तर का सहयोगी है।

वादिए-गुरबत में

बेतार नदी के साथ कृष्ण चन्द्र का बचपन जुड़ा हुआ है। उसकी कला को इन्हीं पत्थरों ने निखारा और संवारा था। इन्हीं हवाओं ने उसे ताज़गी दी थी जो बम्बई के स्काई-स्क्रैपर बंगलों में रहकर भी मद्धम नहीं हुई।

'कृष्ण चन्द्र को पुंछ के साथ प्यार है मगर मेरे बच्चों को नहीं'—चौधरी दयानन्द कपूर भावुक स्वर में कहते हैं—'मैं यहीं पैदा हुआ और यहीं···' कहते-कहते उनकी आंखों में आंसू आ जाते हैं। दयानन्द कपूर यहां के पुराने पत्रकार हैं। जब पुंछ के राजा का हर दिशा में दबदबा था तो भी उनका मस्तक उनके दरबार

में नहीं झुका था। वे डुंगस से उर्दू साप्ताहिक 'प्रभाव' निकाला करते थे, जो १९६२ के कुछ ही देर बाद बंद हो गया था। जवानी के समय की दयानन्द कपूर से बातें करना शुरू तो कीजिये, बस प्रवाह चल पड़ता है—अज़ीज़ कृष्ण चन्द्र ने **सराय के बाहर** फिल्म बनाई थी तो वह इस धरती को नहीं भूला था। **मेरी यादों के चिनार** में भी इसी बेतार की धड़कनें हैं और अब फिर वह पुंछ पर एक डाक्यूमैंट्री तैयार कर रहा था, लेकिन···!'

'कपूर साहब, चराग हसन हसरत का कोई शे'र तो सुनाएं'—'हसरत को तुम क्या जानो, वह बहुत बड़ा आदमी था। उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और फ्रेंच साहित्य का गहरा अध्ययन किया था उसने। क्या मजाल थी जो उसके सामने कोई पर मार जाए। जानते हो वह उस मोहल्ले में पैदा हुआ था और विभाजन के बाद पाकिस्तान रेडियो का डायरेक्टर जनरल था'— फिर वे हंस देते हैं और कहते हैं —'कमाल आदमी था यार जिसने गंजे मित्रों पर खूब शे'र कहा था—

इनको महताब-उद्दीन कहते हैं।
सर पे हैं बाल तीन कहते हैं।

माहौल ठहाकों से गूंज उठता है। और फिर वह कहने लगते हैं—जानते हो एक बार उन्होंने अपने शिष्य दीनानाथ 'रफ़ीक' को एक तरह मिस्रा (गज़ल) लिखने के लिए नमूने की पंक्ति दी थी—

कव्वा अंधेरी रात में दिन भर उड़ा किया

अरे भई 'अंधेरी रात' और 'दिन भर' के टकराव को न समझते हुए रफ़ीक साहब ने आव देखा न ताव, एक लम्बी-सी गज़ल लिख दी—वातावरण फिर ठहाकों से गूंज उठता है। कपूर साहब ठंडी सांस छोड़कर कहते हैं—'अज़ीज़, हसरत को इन घाटियों को छोड़कर जाने का बहुत ग़म था। उसकी रग-रग में इन वादियों के लिए मुहब्बत का जज़्बा था। उसका एक शे'र सुनो—

हमने जब वादिए-गुरबत में कदम रखा था
दूर तक यादे वतन आई थी समझाने को।

मैं किले के महराबी दरवाज़ों से पार, बाज़ार में प्रवेश करता हूं तो ठाकुर मदन सिंह से भेंट हो जाती है। मदन सिंह ठाकुर पुंछी का रिश्ते में भाई है जिसे उसने बाप से बढ़कर प्यार किया। मदन सिंह के मां-बाप का देहान्त बचपन में हो गया था, ठाकुर उसकी सहायता के लिए आगे बढ़ा—'ठाकुर अभी ज़िन्दा है मदन, तुम्हें आंच तक न आने देगा।' 'कौन जानता था ठाकुर इतनी जल्दी मौत की वादियों में खो जाएगा'—मदन सिंह ने ठंडी आह भरकर कहा था।···'बाबूजी गरम चाय पीजिये और अपने ग़म को ग़लत कीजिये', टी स्टाल का मालिक, शर्मा, बोल उठता है। वह एक अवकाश-प्राप्त फौजी है और उसकी बातों के

माधुर्य के कारण शहर के सभी बुद्धिजीवी एवं युवा लोग उसकी दुकान पर बैठते हैं। 'मेरी चाय पीकर आप खूबसूरत गज़लें लिख सकते हैं'—शर्मा का यह दावा किसी तौर पर भी गलत नहीं हो सकता भले ही आप चकित रह जाएं।

ज़रा उम्रे-रफ़्ता को आवाज़ देना

मैं सिगरेट सुलगाए किसी सोच में गुम हूं कि पंडित चूनी लाल आ जाते हैं। वह एक कुशल कथावाचक और मधुरकण्ठी गायक हैं। विभाजन से पहले वे लाहौर में जाकर कथा किया करते थे। 'मैं महाराजा पुंछ के बैंड में भी भरती हुआ क्योंकि मुझे क्लारनेट बजाने का शौक चढ़ आया। मेरा वेतन ९ रुपये मासिक तय हुआ। एक मास में मैंने ड्रम, फ्ल्यूट बजाना सीख लिया। फिर दूसरे साज़ों की ट्रेनिंग प्राप्त की और फिर क्लारनेट बजाना सीखा'—वे कहते चले जाते हैं—'फिर मैं गहरे जंगलों में जाकर क्लारनेट पर अलाप बजाया करता था और जब मेरा शौक पूरा हो गया तो नौकरी छोड़ दी'—वे कहते-कहते रुक जाते हैं। सहसा बातचीत का क्रम फिर जारी हो जाता है—'हम पाक-अधिकृत कश्मीर के गांव छातरा के रहने वाले हैं, विभाजन के बाद यहां पर आकर बस गए थे।' फिर वह महाराजा के समय की यादें ताज़ा कर देते हैं—'महाराजा का बैंड चौबीस घंटे बजता रहता था। बाग के फव्वारे से पानी छूटता था और जब कभी महाराजा खास दरबार लगाते तो वह फव्वारे बंद कर दिये जाते।' · बातचीत का क्रम जारी रहता है और पंडित चूनी लाल कहते हैं—'राजा की सेना में २०० जवान और एक सौ पुलिस के सिपाही थे जिनका सारे प्रदेश में दबदबा था। आज फव्वारों वाले बाग में डिग्री कालेज है और किले में सरकारी दफ्तर हैं—सारा नक्शा तब्दील हो गया साहब, सब कुछ मिट गया। अब सिर्फ बलदेव महल, मोती महल और शीश महल पुराने शासकों की कहानियां दुहराते हैं।'

'तुम लोग कितने बहादुर हो पंडित जी, जंग की तबाही का शिकार होने पर भी तुम साहित्य और कला से प्यार करते हो।'

'साहब यह हमारी ज़िन्दगी है, अमन में हम प्यार और मुहब्बत के गीत गाते हैं और जब जंग होती है तो मैदान में डट जाते हैं, सैनिकों की सहायता करते हैं। बच्चे, बूढ़े, जवान, औरतें और सभी अपना-अपना फर्ज़ निभाते हैं। यह जर्नैली मोहल्ला है। यहां पर पुराने वक्तों में फौजी जर्नैल रहा करते थे। इसके आगे पुरानी पुंछ है, फिर बेतार के उस पार सीमावर्ती गांव हैं। हम सभी विभाजन और विभाजन के बाद तोपों के गोलों से जलते रहे हैं। १९६५ और १९७१ के युद्धों में यहां आग बरसाई थी दुश्मन ने पर हम यहीं डटे रहे। यहां के हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खों ने मिलकर सेना का साथ दिया और दुश्मन को दूर धकेल दिया।'

पंडित चूनी लाल चले जाते हैं। मैं और मली सिंह शहर पार बेतार की ओर

बढ़ जाते हैं। हाजी पीर की पहाड़ियों से अठखेलियां करता हुआ बेतार का दूधिया पानी बहुत ठंडा है।

विभाजन का घाव, अमन के गीत

'बेतार का कोई भरोसा नहीं साहब, बारिश हो या न हो, यहां अचानक बाढ़ आ जाती है। बहुत से माल-मवेशी बह जाते हैं और कई जानें चली जाती हैं। मैं पार की पहाड़ियों के उस पार झांककर देखना चाहता हूं। कभी वे सारे पहाड़ आज़ाद थे, सारी घाटियों में हम लोग आसानी से आ-जा सकते थे और एक-दूसरे के दुःख-दर्द को महसूस कर सकते थे। मगर आज सब कुछ बदल चुका है। सीमाओं के बंधन हैं। वादियां बट-कट चुकी हैं और यहां के लोग यह सारे घाव सहने के बावजूद भी ज़िंदा हैं, बल्कि अमन के गीत गाते हैं, साहित्य की रचना करते हैं।'

एक बार स्वर्गीय ठाकुर पुंछी ने मालिक राम आनंद के बारे में टिप्पणी करते हुए कहा था—**"ज़रा-सी नम हो यह मिट्टी बहुत ज़रखेज़ है साकी"** और यह मिट्टी वास्तव में ही साहित्यकारों के लिए उपजाऊ है। दर्शन सिंह अकाली, गिरधारी लाल बर्क़, प्रितपाल सिंह बेताब, भाई जयदेव दत्त, श्रवण नाथ आफताब, शिव लाल बेताब और वृद्ध कवि दीनानाथ रफ़ीक ठाकुर पुंछी के इस कथन की अब भी पुष्टि करते हैं। दर्शन सिंह अकाली का शरीर भले ही बूढ़ा हो परन्तु कविता एवं वाणी से वह अब भी तूफान हैं। गिरधारी लाल बर्क़ हास्य रस के कुशल कवि हैं। वह कहते हैं—

इन हसीनों को बनाया दिल लगाकर तूने
हम ही हैं जो ठेके पे बनवाए गए।

दीनानाथ रफ़ीक पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच एक पुल का काम कर रहे हैं।

संगीतकार परदेशी के यहां मेरी भेंट दो नेत्रहीन गायकों, करतार चंद और ओम प्रकाश से होती है। 'इन्हें सुनो पथिक, यह कलाकार गुमनामी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।'

तभी मेरे अनुरोध पर करतार चंद हारमोनियम उठा लेता है और उसकी दर्द भरी आवाज गूंज उठती है—

दोनों जहान तेरी मुहब्बत में हार के
वो जा रहा है कोई शबे-ग़म गुजार के

यह कलाकार पढ़े-लिखे नहीं मगर दोनों को संगीत और स्वर लिपि का जो ज्ञान है उसके सामने बड़े-बड़े गायक भी पर नहीं मार सकते। इन दोनों कलाकारों ने एक संगीत विद्यालय खोला हुआ है ताकि संगीत की ज्योति को इस दूर स्थित

सीमावर्ती क्षेत्र में प्रज्वलित रखा जा सके।

प्रगति के चरण

संगीत की एक गोष्ठी में कुलबीर सिंह की आवाज गूंज उठती है—'इश्क वाला शौ मिन्नां कालजे में ला लेयो।' गोजरी ज़बान की यह ग़ज़ल उन लोगों की छिपी भावनाएं प्रकट करती है जो न तो पढ़े-लिखे हैं और न ही जिन्हें नयी वैज्ञानिक सभ्यता का लाभ अभी पूरे तौर पर प्राप्त हो सका है। गाय, भैंस चराने वाले इन लोगों को चौपान कहा जाता है। यह लोग खानाबदोश हैं जो शीत काल में मैदानों और गर्मियों के दिनों में १० हज़ार फुट ऊंचे पहाड़ों पर चले जाते हैं। सरकार की ओर से अब इन लोगों के कल्याण के लिए बहुत-सी योजनाओं को कार्यान्वित किया जा रहा है। इनके लिए चल-पाठशालाएं खोली गयी हैं और इनके बच्चों को उच्च शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियां भी दी जा रही हैं। डिग्री कालेज पुंछ के सामने ही उनके लिए छात्रावास का निर्माण किया जा रहा है।

जिंदा-दिल और बहादुर लोगों की यह धरती युगों-युगों से तबाही और विध्वंस का शिकार रही है। सिकन्दर के आक्रमण के समय का दरवाभिसार यही क्षेत्र था और अजब नहीं कि यूनानी बादशाह मनेन्द्र की याद में बसाया गया नगर आज का मेंढर ही हो। लोहरकोट (लोरन) की सभ्यता के चिह्न हमें राजतरंगिणी के पृष्ठों पर मिलते हैं। यहां के राजाओं के सम्बन्ध कश्मीर के हिन्दू राजाओं के साथ रहे हैं। ग्यारहवीं शताब्दी में महमूद गज़नवी के दांत लोहरकोट में खट्टे हुए थे और उसने कश्मीर को पराजित करने का विचार छोड़ दिया था।

हिन्दू राजाओं के काल के पश्चात् यह क्षेत्र गृहयुद्ध और आपराजी की लपेट में आ गया। यह स्थिति लगभग आठ सौ वर्ष तक बनी रही। गांव-गांव में अपना-अपना राज्य था और यह मिनी राजा एक-दूसरे के साथ लड़ते रहते थे। कितनी जानें गईं, कितनी लूट-खसूट मची, इसका किसी को अनुमान नहीं था। यहां की तबाही के चिह्न यहां के पिछड़ेपन में अवश्य दिखाई देते हैं। इसी बीच यहां पर हिन्दुओं, सिक्खों और मुसलमानों की भारी आबादी जमा हो चुकी थी जो यहां की मिली-जुली सभ्यता की एक सुन्दर तस्वीर प्रस्तुत करती है।

'यह जिला बहुत बड़ा था। चार तहसीलें थीं इसकी मगर अब दो से भी कम तहसीलें रह गई हैं— तहसील हवेली और तहसील मेंढर का कुछ भाग', इन विचारों को व्यक्त करते हुए पुंछ के विकास आयुक्त वजाहत हबीबुल्लाह ने कहा— 'इन बटी-कटी घाटियों ने सीमा पार के तीन हमलों के घाव सहे हैं, अब हम इन खरोंचों को मिटाने के लिए प्रयत्नशील हैं और आशा करते हैं कि हम शीघ्र ही इस काम में सफल हो जायेंगे।'

नांगी टेकरी की पहाड़ियों से चांद निकल आया है और मैं सिग्रेट सुलगाए हुए सोच में गुम हूं।……'ये बटी-कटी घाटियां सदियों से जंग और तबाही की शिकार रही हैं। लाखों मन बारूद इस धरती पर फटा है, बेतार का पानी कई बार लहू से लाल हुआ है। इस पर भी यहां के लोग मुस्कराते हैं, गाते हैं और साहित्य और कला के प्रेमी हैं। आखिर कैसे……?'

'क्या सोच रहे हैं साहब ?'— मली सिंह पूछता है।

कुछ नहीं—मैं अपने अंतर्द्वन्द्व को छिपाने का असफल प्रयत्न करता हूं और बोझिल कदमों से उसके साथ शहर की तरफ़ वापस चल देता हूं।

रंग-नाटक

एकांकी नाटक

नंगे

□ मोती लाल क्यमू

पर्दा उठते ही मुन्शी रजिस्टर पर कुछ लिखते दिखाई देता है। फिर पढ़ता है। पार्श्व में घड़ी ११ बजाती है। इंस्पेक्टर अन्दर जाता है। हवालदार मुन्शी खड़ा हो जाता है। और उसके बैठने के लिए कुर्सी छोड़ देता है। दो सिपाही रतिरमण को अन्दर लाते हैं। रतिरमण अर्धनग्न है। उसने कमर पर तौलिया लपेटा है।

इंस्पेक्टर : यहां लाइये ! (स्वयं बैठ जाता है। रतिरमण उसके सामने खड़ा है।) बैठ जाइये !
(रति खामोश खड़ा है। वह कमरे के इर्द-गिर्द देखता है। पहली बार इस कमरे में पधारने के बावजूद उसे लगता है जैसे इस कमरे को बहुत बार देखा है। इंस्पेक्टर भी उसके मुख की ओर देखकर कमरे में नजरें घुमाता है। जैसे कि सचमुच कमरे में कोई देखने योग्य वस्तु ढूंढ़ रहा हो।)
मैं आप से कह रहा हूं। बैठ जाइये।
(रति दूसरी कुर्सी पर बैठ जाता है। इंस्पेक्टर जेब से कलम और हैण्ड-बैग से कागजात निकालकर लिखने लगता है। रजिस्टर के पृष्ठ उलटता है।)

रति : इंस्पेक्टर साहब, आपकी सब इन्क्वायरी फिजूल जाएगी। आप मुझ पर विश्वास कीजिए। मैं झूठ नहीं बोल रहा हूं। मेरे पास कन्सेशन था। फार्म था। टिकट थी।

इंस्पेक्टर : आप अपना नाम बता दीजिए।

रति : रतिरमण।

इंस्पेक्टर : (लिखकर) जात ?

रति : जी जाति ? ओ ! मैं भारतीय नागरिक हूं।

इंस्पेक्टर : मैं आपकी जात पूछ रहा हूं।

रति : मैं कमजात नहीं। बदजात नहीं, असलजात हूं।

इंस्पेक्टर : उफ ! आपका उपनाम, आई मीन सरनेम ?

रति : **(धीमे स्वर में)** मदन।

इंस्पेक्टर : **(लिखकर)** मिस्टर वदन !

रति : जी आपने गलत लिखा। बदन नहीं, मदन।

इंस्पेक्टर : ओ आई सी। मदन। मिस्टर रतिरमण मदन।

रति : दुरुस्त है। मेरे फार्म पर यही नाम था। प्रमाण-पत्रों पर यही नाम है।

इंस्पेक्टर : कहां के रहने वाले हैं आप ?

रति : **(चुप रहता है)**

इंस्पेक्टर : मिस्टर मदन, मैं पूछ रहा हूं—आप कहां के रहने वाले हैं ?

रति : **(कवि की भांति)** हिमालय के प्रांगण में रहता हूं।

(इंस्पेक्टर उसे घूरकर देखता है)

जी, आप घूर कर क्या देख रहे हैं। मेरे मुख पर मेरी रिहाइश का नाम नहीं लिखा है। सच ही तो कह रहा हूं ! हिमालय एक विशाल पर्वत है और उसकी बांहें सागर पर्यंत फैली हैं। मैं उसकी बांहों में रहता हूं।

इंस्पेक्टर : कहां से आ रहे हैं आप ?

रति : विश्वविद्यालय से। दो वर्ष का कोर्स समाप्त करके आ रहा था तो यह वाक़या हुआ। आप विश्वास क्यों नहीं करते ?

इंस्पेक्टर : तो आप पढ़े-लिखे भी हैं ?

रति : जी अंग्रेज़ी पढ़ सकता हूं, लिख सकता हूं। हिन्दी पढ़ सकता हूं, लिख सकता हूं। उर्दू पढ़ सकता हूं, लिख सकता हूं। संस्कृत···

इंस्पेक्टर : बस-बस। आपकी तालीम ?

रति : शायद मैं आप से अधिक पढ़ा-लिखा हूं !

इंस्पेक्टर : क्या मतलब ?

रति : जी, मतलब यह कि हो सकता है कि मैं आप से ज्यादा पढ़ा-लिखा हूं।

इंस्पेक्टर : मैंने १९५८ में इंटर पास किया, एक साल तक पंजाब में पुलिस ट्रेनिंग की और चार साल से यहां पर सब इंस्पेक्टर हूं।

रति : **(मुस्कराकर)** ठीक है। **(उसकी नकल करते हुए)** मैंने १९५३ में बी० ए० पास किया और आज तक बी० ए० का असली प्रमाणपत्र विश्वविद्यालय से नहीं मांगा।

इंस्पेक्टर : हुम् ! क्यों नहीं मांगा ?

रति : अभी तक उसकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ी।

इंस्पेक्टर : हु···म्। काम की बात करो। आपने बगैर टिकट सफर क्यों किया ?

रति : आप यह प्रश्न बार-बार क्यों पूछते हैं ? आप कैसे कहते हैं कि मैंने बगैर टिकट सफर किया ? आप उस टिकट क्लैक्टर पर विश्वास करते हैं, क्योंकि उसने सरकारी सफेद वर्दी पहनी है और मेरे कहने पर आपको विश्वास नहीं आ रहा है। क्यों ? क्योंकि मैं अर्धनग्न हूं। हूं न ? मेरे कपड़ों की चोरी हुई। बक्स चुराया गया। बिस्तर चुराया गया। टिकट चुराई गई। मेरा व्यक्तित्व चुराया गया। इंस्पेक्टर साहब, मुझे नंगा छोड़ा गया।

इंस्पेक्टर : चोरी के इल्जाम में जो भी पकड़ा जाता है, अपने को निरपराध प्रमाणित करने के लिए बहाना बनाता है।

रति : मैं बहाना नहीं बना रहा हूं। मैं एक शिकायत करने आया हूं। आप मेरी मदद कीजिये। मुझे मेरा सर्टिफिकेट्स वापस दिलाइए। मेरी मदद कीजिये जो कुछ मेरे पास था उसकी चोरी हो गई··· मेरा यकीन है कि चोर इसी स्टेशन पर उतरा होगा। मुझे मेरा व्यक्तित्व वापस दिला दीजिये। उसके बगैर मैं अधूरा हूं। बिल्कुल अधूरा हूं। आप विश्वास क्यों नहीं करते ?

इंस्पेक्टर : मिस्टर मदन, मुझे अपनी रिपोर्ट मुकम्मल करने में दिक्कत आ रही है। उचित यही रहेगा कि आप इस झूठ का निर्माण न करें।

रति : आप को यकीन है कि मैं झूठ बोल रहा हूं ?

इंस्पेक्टर : आप के पास कोई मुकम्मल सबूत नहीं है। कोई गवाह नहीं है। आप एक अजीब कहानी रच रहे हैं।

रति : गवाह ! प्रमाण ! इंस्पेक्टर, यही एक बड़ा दुर्भाग्य है। उस डिब्बे में मेरे और उस लड़की के सिवा कोई नहीं था। मेरा अनुमान है कि वह लड़की इसी स्टेशन पर उतरी है। हो सकता है कि उसने चोर को मेरा सामान चुराते देखा हो। क्या आप उसका पता लगा सकते हैं।

इंस्पेक्टर : बिना नाम, पता और किसी शक्लोसूरत के कैसे जाना जा सकता है ?

रति : मेरे पास उससे नाम पूछने के लिए समय ही कहां था ! ओह ! मेरा सब कुछ लूट लिया गया ! सब कुछ लूट लिया गया ! आप को यकीन क्यों नहीं आता। मुझ जैसा पढ़ा-लिखा नौजवान आखिर क्यों कर बगैर टिकट सफर कर सकता है ?

इंस्पेक्टर : क्या आप गाड़ी में ऐसे नंगे ही घुसे थे ?

रति : इंस्पेक्टर, आप यह सवाल बार-बार क्यों पूछते हैं ? मैंने कहा न कि मुझे नंगे ही सोने की आदत है। जब डिब्बे में कोई न था तो मैंने सारी बत्तियां बुझायीं और बर्थ पर सो गया। कुछ देर बाद जब मैं जागा

तो शौच चला गया। वहां से बाहर आने के लिए दरवाजा खोला तो वह लड़की बिल्कुल सामने अपने बाल संवार रही थी। मुझे देखते ही उसने मुझे यह तौलिया दे दिया। मैंने दरवाजे से केवल सिर और बाजू बाहर निकालकर तौलिया ले लिया। दरवाजा बन्द किया। जब मैं अपनी नग्नता छुपाकर बाहर आया तो गाड़ी उस स्टेशन पर रुक चुकी थी। मैं अपनी जगह पर गया तो देखा मेरा सब सामान गुम था। मैंने सारे डिब्बे की तलाशी ली। इधर ढूंढ़ा, उधर ढूंढ़ा पर कहीं कुछ भी नज़र नहीं आया।······मेरा दिल धड़कने लगा। मैं घबरा गया। मेरी सांस तेज चलने लगी। नहीं, मेरा दम घुटने लगा। बड़ी जुर्रत से मैं बाहर आया। कुलियों से पूछा। सारे प्लेटफार्म के चक्कर काटने लगा। गाड़ी के प्रत्येक डिब्बे में घुसा। लोग मुझे आश्चर्य से देख रहे थे। और अंत में उस टिकट कलैक्टर से पूछा तो उसने टिकट मांगा। उसे मेरी बातों पर यकीन नहीं हुआ। इंस्पेक्टर साहब, क्या मैं सचमुच शक्ल से चोर लगता हूं? क्या मेरे मुंह पर गंवारपन झलकता है? क्या मैं फूहड़ लगता हूं?

इंस्पेक्टर : क्या आप ने उस लड़की को पहले भी कभी देखा है?

रति : नहीं। उसी समय पहली बार देखा। पर गौर से देखने का अवकाश कहां मिला! उसने मुझे यह तौलिया देकर सहायता न की होती तो मैं अपनी नग्नता न छुपा सकने के कारण गाड़ी के नीचे दब कर प्राण दे देता।

इंस्पेक्टर : (**हंसकर**) तो क्या आप सचमुच आत्महत्या कर लेते?

रति : इसके अतिरिक्त मैं कर भी क्या सकता था? आप ही बताइए, क्या आप सैंकड़ों लोगों के सामने नंगे फिर सकते हैं?

इंस्पेक्टर : ओह, लीव इट।

रति : यह तो केवल एक अवस्था है जिसका मैं शिकार हुआ हूं। इंस्पेक्टर, आप बाथरूम में नहा रहे हों तो अचानक यदि मैं आपका दरवाजा खोल दूं तो आप क्या करेंगे? (**खामोश**) आप जल्दी से दरवाजा बन्द करने की कोशिश करेंगे। और अगर दरवाजा बन्द होने से पहले ही मैं आपको तौलिया पेश करूं तो? तो आप तौलिया लेकर, दरवाजा बन्द करके अपनी नग्नता को छुपाकर बाहर आयेंगे। गुस्सा होंगे। मुझसे मेरी मूर्खता का कारण पूछेंगे। परन्तु यदि मैं इतनी ही देर में गायब हो गया तो?··· तो?

इंस्पेक्टर : अजब परिस्थिति होगी।

रति : तो बस, इंस्पेक्टर साहब, मैं ऐसी ही अजब परिस्थिति में पड़ गया।

आप विश्वास कीजिए। मेरे कपड़े, मेरा बक्स, मेरे सर्टिफिकेट्स मुझे वापस दिलाइये। मेरी मदद कीजिए, मुझे मेरा व्यक्तित्व वापस पाने में मदद कीजिए। देखिए, मैं इस दशा में कैसे रह सकता हूं। मैं बिल्कुल अधूरा हूं। अधूरा हूं। अधूरा।

इंस्पेक्टर : मिस्टर मदन, मैं एक बात नहीं समझ सका !

रति : कहिये, क्या ?

इंस्पेक्टर : गाड़ी में आपको नंगे सोने की क्या जरूरत थी, जबकि आप एक…

रति : जबकि मैं एक पढ़ा-लिखा नौजवान हूं। यही न ?

इंस्पेक्टर : एग्जेक्ट्ली दि सेम।

रति : इंस्पेक्टर साहब, बीस साल की उमर तक मुझे यह नहीं मालूम था कि नाइटस्यूट भी कोई चीज़ होती है। मुझे एहसास था कि सारी दुनिया रातभर नंगी सोती है। जब मैंने पहली बार नाइटस्यूट खरीदा तो मुझे उसमें अपना आप बेढंगा-सा लगा। मुझे रात भर नींद नहीं आती थी। तब मैंने उसका इस्तेमाल करना ही छोड़ दिया। इंस्पेक्टर, मैं इस लम्बे सफर में जागकर अपने आपको कष्ट देना नहीं चाहता था। इसलिए डिब्बे में किसी आदमजात को न देखकर मैं अपनी आदत के मुताबिक ही सो गया था। किन्तु यह वाकया अजब हुआ। मैं इससे बिल्कुल बेखबर था।

इंस्पेक्टर : ओ० के० मिस्टर मदन, मैंने आपके बयान को गौर से सुना लेकिन अभी मेरे सारे संशय दूर नहीं हुए।

रति : तो क्या आपको अभी भी मेरे कथन पर संशय है ? क्या मैं झूठ बोल रहा हूं ? क्या आपको यकीन…

इंस्पेक्टर : यकीन हो सकता है, परन्तु मुझे लगता है कि इस समय आप नरवस फील कर रहे हैं और रात भी काफी गुज़र चुकी है। मैं आपके लिए कपड़े भेज देता हूं। आप पहन लीजिए। कल सवेरे बाकी कार्यवाही की जाएगी।

रति : लेकिन मुझे मेरे कपड़े दिलाइये। मेरी मदद कीजिए। मेरे सर्टिफिकेट्स, मेरा बक्स, और बिस्तर वापस दिलाइये। मुझे मेरा व्यक्तित्व वापस दिलाइये। मैं बिल्कुल अधूरा हूं। अधूरा हूं।

इंस्पेक्टर : मैं पूरी कोशिश करूंगा। (**चला जाता है।**)

रति : (**पीछा करता है।**) मैं बिल्कुल अधूरा हूं। अधूरा हूं।

मुंशी : (**टेबुल पर बिस्तर बिछाकर**) सिरफिरों का आलम है।

सिपाही : हां भाई, यह केवल अपनी ही बात दोहराता है। भला कोई सज्जन गाड़ी में नंगा होकर सफर कर सकता है ?

मुंशी : अरे भाई, हमारे गांव के मुखिया जी कहा करते थे—
तुलसी इस संसार में भांत-भांत के लोग

(दोनों हंसते हैं।)

सिपाही : वह टिकट कलैक्टर एकदम भांप गया कि दाल में कुछ काला है। भई, लोग सफर का किराया नहीं देंगे तो अपने लोगों का निर्वाह कैसे होगा ?

मुंशी : लोग जुर्म नहीं करेंगे तो हमारा काम बेकार हो जायेगा। अपना धंधा कैसे चलेगा ?

सिपाही : टिकट कलैक्टर चाहता तो इसको छोड़ सकता था।

मुंशी : कैसे छोड़ सकता था ? नंगे-अधनंगे आदमी से आधी टिकट का आधा भी नहीं मिल सकता था। अरे, यही तो अच्छा मौका मिला आदमी को पुलिस के हवाले कर देने का, ऐसे ही मौकों पर धाक जमती है।

सिपाही : धाक जमती है। अपनी तो आज की सांझ मारी गई। बगैर लाइट के साइकल सवारों से कुछ-न-कुछ मिल ही जाता।

मुंशी : अरे भाई, सब दिन होत न एक समाना।

सिपाही : हवलदारजी, दुनिया में कभी सब लोग साधू नहीं हो सकते। सभी पुण्य नहीं कमा सकते।

मुंशी : अरे, छोड़ दो इस पाप-पुण्य को। सो जाने का विचार करो। सुबह फिर वही घुमक्कड़ी धंधा शुरू होगा।
(बिस्तर बिछाकर सोने की तैयारी करता है। सिपाही बिस्तर ले कर स्टेज पार करता है। रोशनियां धीरे-धीरे कम होती हैं।)

रति : **(आवाज)** मैं अधूरा हूं। अधूरा हूं। उ-उ-फ !

(पार्श्व में घड़ी का एक टन)

(रोशनियां। रतिरमण पुलिस-वरदी पहने स्टूल पर बैठा है। वरदी उसके शरीर पर बिल्कुल नहीं फबती। वह बहुत विचलित है।) घुटन ! कितनी घुटन ! कमरे की घुटन। अंधेरे की घुटन। निस्तब्धता की घुटन। **(मुंशी खर्राटे लेता है)** नींद में सोये पड़े जानवरों के खर्राटों की घुटन ! उफ़, जी ऊब उठता है। इस बेढंगेपन से कब नजात मिलेगी ? **(खड़ा हो जाता है)** काश ! यहां पर कोई खिड़की होती ! छोटा सा झरोखा होता ! मैं तारों से आंखमिचौनी खेल सकता ! दो घूंट खुली हवा के पी सकता ! रात के चलते-फिरते साये देख सकता !
(मुंशी के समीप जाता है। उसकी बेल्ट और रस्सी को उठाकर अपनी जगह पर आता है।)
मैं इन वस्त्रों में अपने को खो चुका हूं। निगल चुका हूं। मुझे यह

बेढंगापन एक नजर भी नहीं भाता। ओह, मुझे कुछ हो गया है।

(बेल्ट अपनी कमर पर लगाता है तो वह पूरा नहीं आता है। खड़ा हो जाता है। बेल्ट का नम्बर देखकर)

नम्वर, पुलिस नम्वर एक, छः, सात, आठ, रोल नम्बर, कमरा नम्बर, परीक्षा नम्वर, टिकट नम्वर, सीट नम्बर, गाड़ी नम्बर, ! नम्बर नम्बर······दस नम्बर, चार सौ बीस नम्बर, नम्बर।

(बेल्ट फेंक देता है। अपना सिर पकड़कर बैठता है।)

ओह, मुझे कुछ हो गया है। **(दिल पर)** यहां। कुछ हो गया है। नहीं। **(सिर पर)** यहां कुछ हो गया है। मुझ से सहा नहीं जाता। मुझे दर्द हो रहा है। मेरा बदन कांप रहा है।

मुझे लगता है कि यह कमरा तंग होता जा रहा है। जैसे इसकी हर दीवार आपस में मिलकर मेरी चटनी बना डालेगी। यह स्टूल मेरी टांगों के नीचे से खिसक रहा है। उफ ! यह रस्सी का लठा लगता है कोई इसे जोर से मेरी पीठ पर मार रहा है। ओह, मैं इन वस्त्रों में बिल्कुल नहीं सजता हूं। मेरे सारे बदन का ताप बढ़ रहा है। यह कपड़े मेरी हरारत बढ़ा रहे हैं। उफ ! बेढंगेपन की घुटन ! घुटन ! घुटन ! घुटन ! **(अपने बाल नोचने लगता है।)** नहीं सहा जाता मुझसे। मैं अधूरा हूं ! अधूरा हूं। बिल्कुल अधूरा हूं। मुझे मेरे कपड़े वापस दिला दो। उफ ! घुटन !

(उठकर चारों ओर देखता है, घूमता है।)

सब सो रहे हैं। मजे की नींद सो रहे हैं। मेरी किसी को चिंता नहीं जैसे दुनिया की मैं एक फिजूल चीज हूं। जैसे मैं दुनिया की कोई इकाई नहीं। किसी को मेरी कोई चिंता नहीं, कोई आवश्यकता नहीं। कोई मेरा नहीं। एक निरर्थक वस्तु, तुच्छ वस्तु। उफ ! मैं अकेला हूं। सोये हुए लोगों में अकेला हूं। जागे हुए लोगों में अकेला हूं। एकांत में अकेला हूं। इस घुटन गह्वर में अकेला हूं। अकेला ! अकेला !

उफ ! मैं जल रहा हूं। सिर से पांव तक मेरा ताप बढ़ रहा है। मैं उबल पड़ूंगा तो यहां की हर चीज पिघल जायेगी। मैं लावा उगलूंगा। नहीं सहा जाता मुझसे। **(चिल्लाता है।)** मुझे छोड़ दो। छोड़ दो मुझे ! मैं बीमार हूं, मैं बुखार में जल रहा हूं।

(एकदम खामोश हो जाता है। मुंशी को घूरकर देखता है, जो सो रहा है। रस्सी का लठा खोल देता है। मुंशी को टेबल से बांध देता है। रस्सी को अपनी कमर के साथ बांधकर खींचता है। चिल्लाता है।) चोर ! चोर ! चोर पकड़ लिया। चोर चोर चोर···

मुंशी : **(जाग कर)** कहां है ? कहां है , ओ ओ, अरे रे रे रे···

रति : चोर चोर चोर चोर चोर। पकड़ लिया। चोर चोर चोर···

(सारी चौकी के सिपाही अस्त-व्यस्त, नंगी अधनंगी दशा में अन्दर आते हैं। केवल इन्सपेक्टर नाइटस्यूट पहनकर अपने कमरे से आता है। सभी रतिरमण को घेर लेते हैं।)

प० सि० : कहां है ?

दूसरा ,, : अरे बाबू, तुम ! क्या माजरा है ?

तीसरा ,, : यह क्या तमाशा है, हवलदार को बांध लिया है ?

रति : चोर···चोर···चोर पकड़ लिया चोर···चोर···चोर।

इंस्पेक्टर : **(अन्दर आकर)** पकड़ लो ? कौन है, कैसे घुस आया ? अरे ! अरे आप, ह्वॉट नानसेंस ?

रति : चोर। यह रहा मेरा चोर। मैंने रस्सी से बांध लिया है। वरदी चुरा रहा था। चलो, पुलिस थाने पर चलो !

इंस्पेक्टर : छोड़ दो। खोल दो रस्सी। क्या पागलपन है ?

मुंशी : साहब, मैं केवल सो रहा था। बाबू की चिल्लाहट सुनकर जाग पड़ा तो अपने को इस रस्सी में जकड़ा पाया।

रति : यह चोर है। मेरी मदद करो। मुझे देखो मैं पुलिसमैन हूं।

इंस्पेक्टर : छोड़ दो इसे।

रति : तुम कौन होते हो मुझे रोकने वाले, मैं इस चोर को पकड़वा कर ही रहूंगा।

इंस्पेक्टर : मैं यहां का इंस्पेक्टर हूं और यह सभी मेरे सिपाही हैं।

रति : एकदम गलत। सिपाही मैं हूं तुम कोई इंस्पेक्टर नहीं हो। तुम्हारे पास कोई वरदी नहीं है, ये सब नंगे हैं। तुम नंगे हो। साधारण आदमी हो। फूहड़ हो।

इंस्पेक्टर : बंद करो यह बकवास।

रति : तुम इस मामले में दखल मत दो। यह मेरा चोर है। मैं इसे थाने ले जाऊंगा। तुम सभी चोर की मदद करते हो। जुर्म करते हो।

इंस्पेक्टर : शट-अप, पकड़ लो इसे। और खोल दो हवलदार की रस्सियां।

(रस्सियां खोल दी जाती हैं। रति को कुछ सिपाही पकड़े हुए हैं।)

रति : छोड़ दो मुझे, मैं झगड़ालू आदमी नहीं हूं। छोड़ दो।

(छोड़ देते हैं।)

इंस्पेक्टर : मिस्टर मदन, ऐसी हरकतों से आप अपना केस कमजोर कर रहे हैं। मुझे आपसे यह उम्मीद नहीं थी। यह बच्चों जैसी शरारतें।······ आप अभी तक सोये नहीं ?

रति : मुझे नींद ही नहीं आती। मेरा अपना बिस्तर होता तो मैं उसमें नंगा सोकर लम्बा हो जाता। मेरा यहां पर दम घुटता है। इस कमरे की घुटन मुझे चुभ रही है।......यहां पर एक खिड़की भी नहीं, जिसमें से पवन का एक-एक झोंका आकर मुझे शीतल कर देता। देखिये, मेरा सारा बदन जल रहा है। मेरी आंखों के आगे अजब-अजब रंग के गोल-गोल दायरे उभर रहे हैं। हर रंगीन दायरे में चमकदार बिन्दु है। और......और फिर यह अंधेरा। उफ !......

इंस्पेक्टर : मिस्टर मदन, ठीक यही रहेगा कि आप हम लोगों को परेशान न करें।

रति : नहीं। मैं आप लोगों को परेशान नहीं कर रहा हूं। केवल मेरे दिमाग में आप लोगों के भूत घुस आये हैं। नंगे-अधनंगे भूत। मैं उनकी छाया देख-देखकर डर रहा हूं।

इंस्पेक्टर : शट-अप। आइ वॉर्न यू। अगर आप फिर ऐसी हरकतों पर उतर आये तो मैं आपके हाथ-पैर बांधकर उस कोठरी में बंद कर दूंगा। **(जाने लगता है।)**

रति : कोठरी !

इंस्पेक्टर : दिखाओ इसको कोठरी। हटाओ उसका पर्दा। मिस्टर मदन, खामोशी से बैठ जाइये।

(पर्दा उठता है। कोठरी दिखाई देती है। रति समीप जाता है। रोशनियां कम होती जा रही हैं। रति की छाया सींकचों पर पड़ती है। अन्दर से एक कैदी दिखाई दे रहा है। वह रति को देखता है। थोड़े समयोपरांत रति उसकी ओर पीठ करके सिर को थामकर बैठ जाता है। सभी चले जाते हैं।)

मुंशी : **(पुनः सोने का उपक्रम करते हुए)** भाई साहब, अब जरा सोने दीजियेगा। दिन भर घूमते रहने के बाद रात के ये दो पहर सोने को मिलते हैं।

रति : सो जाओ वत्स, मेरे जिगरी दोस्त, आराम से सो जाओ। मैं केवल तुम्हारे खर्राटे गिनता रहूंगा। **(मुंशी सो जाता है। रति कैदी की ओर नजरें घुमाता है।)**

कैदी : हः हः हः **(हंसता है।)**

रति : शि-इ-इ।

कैदी : लगता है नये आये हो। बिलकुल नये।

(रति खामोशी से खड़ा हो जाता है।)

कैदी : हर नया यहां आकर पहले तूफान मचाता है लेकिन फिर बर्फ की तरह

ठंडा हो जाता है। इस अंधेरे का आदी हो जाता है।

रति : कौन हो तुम ?

कैदी : हूं। यह पूछने से तुम्हें क्या मिलेगा ?

रति : मैं तुम्हें जानने की कोशिश करूंगा। किस इलज़ाम में पकड़े गये हो ?

कैदी : ये चाहते हैं कि मैं उनके बनाये हुए झूठे आरोप का इकरार करूं।

रति : किस बात का आरोप लगाया है तुम पर ?

कैदी : चोरी का।

रति : ओ, क्या चुराया है तुमने ?

कैदी : अफसोस इस बात का है कि मैंने कुछ भी नहीं चुराया है। लेकिन मैं ही चुराया गया हूं। अपनी छोटी-सी दुनिया से चुराकर मुझे यहां फेंक दिया गया।

रति : कितने दिनों से यहां हो ?

कैदी : यहां दिनों का कोई हिसाब नहीं रहता। न कोई खिड़की, न कोई रोशनदान। हर वक्त सन्नाटा छाया रहता है। केवल वह छोटा-सा बिजली का लैम्प जलता रहता है। कब सूरज चढ़ता है, कब ढलता है, इसका मुझे कोई पता नहीं। यहां पर कोई घड़ी नहीं, लगता है यहां पर समय गतिहीन हो गया है और जिंदगी बेजान हो गई।

रति : तुम ठीक कह रहे हो। यहां पर केवल घुटन है।

कैदी : यह प्रारम्भिक अवस्था है। फिर घुटन के आदी होकर घुटन में ही लीन हो जाओगे। अंधकार की निस्तब्धता के पात्र बन जाओगे।

रति : नहीं, मैं ये दीवारें तोड़ दूंगा। मुझे मेरा व्यक्तित्व वापस पाना होगा। मुझे मेरे कपड़े ढूंढ़ने होंगे। अपने सर्टिफिकेट्स प्राप्त करने होंगे। वही मेरी संचित सम्पत्ति है। मेरा व्यक्तित्व है। मैं वह नहीं जो तुम मुझे इस वरदी में देख रहे हो।
यह झूठन है। इस अंधेरे की झूठन है। इस घुटन की झूठन।

कैदी : हः हः हः (**हंसता है।**) नये जी, मैंने भी पहले कुछ ऐसा ही समझा था परन्तु फिर धीरे-धीरे सब ठंडा हो गया। बस अब खामोशी ही साथ देती है।

रति : लेकिन मुझे यह खटकती है। मेरे व्यक्तित्व में खामोशी के लिए स्थान नहीं है। मैं झंकार हूं। कोहराम हूं। हलचल हूं। टंकार हूं। ध्वनि हूं।

कैदी : जब थक जाओगे तो स्वतः खामोश हो जाओगे।

रति : नहीं, मैं अपने तप से यहां की दीवारें पिघला दूंगा। यहां से निकल भागूंगा। मैंने कोई चोरी नहीं की है। मुझ पर कोई इलज़ाम नहीं।

मैंने बगैर टिकट सफर नहीं किया है। मैंने कन्सेशन् फार्म भर कर टिकट प्राप्त की है।

कैदी : तो फिर पकड़े ही क्यों गये ?

रति : क्योंकि मैं टिकट न दिखा सका। गाड़ी में मेरे कपड़े, टिकट, रुपये, बिस्तर, बक्स···सब कुछ की चोरी हो गई।

कैदी : और तुम्हारा व्यक्तित्व ?

रति : इन सब चीजों में ही मेरा व्यक्तित्व निहित है।···व्यक्तित्व एक मुखौटा है जिसके दो रूप होते हैं— धूप और छाया। धूप-रूप इतनी प्रखर किरणों वाला होता है कि हर देखने वाले की आंखें चौंधिया जाती हैं। और छाया-रूप सभी देखते हैं। पर मेरा मुखौटा उतर चुका है। मेरा नंगा मुंह सामने है, देखो तो इस पर मेरे उबलते ताप की रेखायें उभर रही हैं।

कैदी : कैसा ताप है तुम में ?

रति : ओह, तुम नहीं समझोगे, पुराने जी। मैं इन कपड़ों में बेढंगा लगता हूं। मैं ऊब गया हूं। मैं घुट रहा हूं। मेरा आवरण मुझसे चुराया गया है। तुम नहीं जानते हो मुझे यहां अर्धनग्न लाया गया। अधूरा लाया गया।

कैदी : लेकिन क्यों ?

रति : ओह, मुझे हिंडोला याद आ रहा है। तुम कभी हिंडोले में झूले हो ?

कैदी : झुलाया होगा मेरी मां ने बचपन में।

रति : छिः बचपन में। रेलगाड़ी का सफर हिंडोले की हिलन-डुलन के बरा-बर है। है न ? और फिर एक बादाम-सी आंखों वाली लड़की का साथ। लोहे की पटरी पर लोहे के पहियों की खटरपटर। इंजन की छकछकाहट। इसी समय लड़की डिब्बे की रोशनियां बुझाकर तुम्हें बाहुपाश में ले ले तो ?

कैदी : तौबा-तौबा ! सब लोगों के सामने ?

रति : पुराने जी, उस डिब्बे में हम दोनों के सिवा किसी आदमजात की सांस नहीं चल रही थी।

कैदी : भई, यह तो शिष्टाचार के विरुद्ध है।

रति : फिर वही आवरण। अपने अन्दर के उबलते ताप को कुंठित करने के लिए लोग शिष्टाचार का आवरण ओढ़ते हैं। छिः, शिष्टाचार !

कैदी : आप तो क्रांतिकारी लगते हैं ?

रति : हाः हाः हाः ! तुम तो हमें बहुत दूर खींच रहे हो। बहुत दूर। तुमने कभी दिल की धड़कनें गिनी हैं ?

कैदी : नाड़ी देखते समय केवल डॉक्टर लोग गिनते हैं।

रति : गिनते हैं। वे केवल शारीरिक ताप देखते हैं। मानसिक नहीं। यह नित्य हमारे मनों में विराजमान रहता है। हम केवल शिष्टाचार के आवरण से इसको दबाते हैं। उफ! मेरे कपड़े चुराये गये। टिकट चुराई गई। ले गये, ले गये, मेरा व्यक्तित्व ले गये।

कैदी : तुम्हारी बातें एब्स्ट्रेक्ट-सी लगती हैं। आखिर यह सब कैसे हुआ?

रति : ओह! तुम भी यह प्रश्न पूछ रहे हो? सब लोगों की जिज्ञासा एक समान (**तीन प्रश्नसूचक चिह्न हाथ से हवा में बनाता है।**) क्या? क्यों? कैसे? हां! हां! हां! भई, इस जगह का नाम क्या है?

कैदी : थाना।

रति : थाना! और इस, मेरा मतलब है, इस पुलिस चौकी का नाम?

कैदी : थाना! पुलिस थाना।

रति : थाना। था—ना। रेलवे स्टेशन का नाम थाना। शहर का नाम थाना, पुलिस स्टेशन का नाम थाना।

कैदी : क्यों, क्या ढूंढ़ रहे हो इन नामों में?

रति : कुछ नहीं। न जाने इन नामों में भूतकाल की नकारात्मकता क्यों मिल गई है। खैर, छोड़ दो। यह बताओ तुम यहां क्यों कैद हो?

कैदी : झूठे आरोप का इकरार करने के लिए। यहां की यातनायें सहने के लिए। लेकिन मैं कभी इनके बनाये झूठ का इकरार नहीं करूंगा।

रति : कौन-सा आरोप लगाया है तुम पर? चोरी का न?

कैदी : हां, लेकिन मैंने चोरी नहीं की है। वास्तविकता कुछ और है।

रति : नहीं तो क्या मैं कभी बगैर टिकट सफर कर सकता हूं? टिकट खो गया। कपड़े चुराये गए, व्यक्तित्व चुराया गया। मैं एक शिकायत करने आया था। मदद मांगने आया था तो यहां लाया गया। यह मुझे मुर्गा बनाना चाहते हैं लेकिन मैं इनके पिंजरे में फंसने वाला नहीं। मेरे विचार आकाश फांद सकते हैं। मैं अपनी स्मृति के बल पर इनको चकित कर दूंगा। प्रमाण मांगेंगे तो बीस दफ्तरों से रिकार्ड मंगवाऊंगा।

कैदी : परन्तु मेरे केस में यही एक कमी है। गवाह नहीं। प्रमाण नहीं।

रति : पर तुमने चुराया क्या है?

कैदी : कुछ भी नहीं। नये जी, मैं एक चित्रकार हूं। नाम नहीं बताऊंगा। मेरे चित्रों के बारे में समाचार पत्रों में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। और अगर यह लोग मुझे फंसाने में सफल हुए तो बड़ा स्कैण्डल हो जाएगा।

रति : तुम्हारा नाम हरेक की जबान पर होगा। एकदम मजनूं बन जाओगे

यही न ! लोगों से डर लगता है ?

कैदी : मेरा जीवन बेकार चला जाएगा। मैंने एक अमीर और प्रभावशाली आदमी की लड़की से प्रेम किया है।

रति : (हंसता है।) प्रेम किया है ? भाई, प्रेम जैसी भी कोई चीज़ दुनिया में है ? न जाने किस डरपोक कवि ने इस कायर शब्द को रचा है। सत्य जो है, वह है वासना। और शिष्टाचार के बन्दों ने उसकी नग्नता छुपाने के लिए एक आवरण बनाया है, एक वरदी बनाई है—प्रेम। इस शब्द की आड़ लेकर हमारे लिए कहानियां रची हैं।

कैदी : बाप को अपनी संतान के प्रति, माता को अपनी औलाद के प्रति वासना जैसी दुर्भावना नहीं होती है। प्रेम अमर है। निष्कलंक है। शाश्वत है। वासना से उच्च है।

रति : पुराने जी, यह केवल लगाव की कड़ियां हैं। संबंध की कड़ियां हैं। यदि किसी नवजात शिशु को अपनी मां के स्थान पर कोई अन्य नारी पाल-पोसकर बड़ा करे तो क्या उसे अपनी असली मां के प्रति प्रेम होगा ? केवल लगाव की कड़ियां पराई नारी के साथ जुड़ गई होंगी। हम वासना के मारे, आकर्षण के शिकार होकर प्रेम का स्वांग रचते हैं। प्रेमाभिनय करते हैं। असली मुख अन्दर और नकली मुखौटा सामने। क्यों ?

कैदी : आप अपनी राय मुझ पर ठोंसना चाहते हैं ?

रति : नहीं ! कभी नहीं ! केवल मैं अपना व्यक्तित्व वापस पाना चाहता हूं। जिसे मैं खो चुका हूं। जिसके बिना मैं अधूरा हूं। बिल्कुल अधूरा हूं।

कैदी : यहां से निकलने के दो रास्ते हैं। या तुम पूरे होकर निकलोगे या इस अधूरेपन को भी गंवा दोगे।

रति : पर तुम इस पिंजरे में कहां से आ फंसे ?

कैदी : मैं उस लड़की को चित्रकला सिखाया करता था। रोज उसके बंगले पर जाता था। रंगों की पहचान, इस्तेमाल और ड्राइंग सिखाता। बस, यह था मेरा काम। शुरू में वह बहुत डल थी। धीरे-धीरे उसने फूल, पक्षी, वृक्ष तथा अन्य ऑब्जेक्ट्स बनाना सीख लिये।

रति : मेहनत काफी करती थी। क्यों ?

कैदी : हां, लेकिन फिर उसकी चित्रकला मेरे लिए उलझन बन गई। जहां वह फूल बनाती थी, वहां पर उड़ते हुए भंवरे मंडराते थे। जहां शम्अ जलती थी, वहां पर परवाने को भी खींच लाती थी। मेरा मतलब है...।

रति : मतलब मैं समझ गया। तुम आगे कहो क्या हुआ ?

कैदी : ऐसे ही न जाने कितने विषय वह खुद चुन-चुनकर, किस्म-किस्म के रंगों में बनाती थी। उसके उन चित्रों को देखकर मैं शर्मिन्दा हो जाता था। मैं उससे निराश हुआ। मैं चाहता था कि वह कुशल कलाकार बने किन्तु मुझे एहसास हुआ कि वह भावुकता के जगत में अपने को खो रही है। उसमें पहली जैसी जिज्ञासा न रही।

रति : मुझे जिज्ञासाभरी नीची-नीची नजरों और झुकी-झुकी पलकों वाली लड़की का सुडौल चेहरा याद आ रहा है। तुमने किसी लड़की के होंठों की थिरकन देखी है?

कैदी : मैंने केवल मोनालिसा की मुस्कान देखी है। मौन और शांत। तुमने मोनालिसा का चित्र देखा है?

रति : फोटोग्राफ देखे हैं। मुख नहीं, मुखौटा देखा है। जिनमें कोई आकर्षण नहीं। केवल मैं उसके उभरे स्तन देखकर मुस्कराया था। छोड़ दो इस विदेशी चित्र को। यह बताओ तुम्हारी इस स्वदेशी 'लड़की' का क्या नाम है?

कैदी : **(चुप रहता है।)**

रति : मैंने उस लड़की का नाम पूछा है?

कैदी : उसका बाप मेरे केस के साथ उसका असली नाम नहीं लेने देता। अमुक बाप की बेटी लिखवाता है। फिर भी मुझे उसका नाम बहुत भाता है।

रति : क्या है वह?

कैदी : प्रेरणा।

रति : **(हंसता है।)** वाह, वाह! असली कलाकार निकले। तो तुमने अपनी इस नायिका को कल्पित नाम प्रेरणा दिया है। तुमने अपने आसपास की हर चीज का नाम प्रेरणा रखा होगा। बिल्कुल अनाड़ी हो, अनाड़ी। कल्पनालोक में विचरण अच्छा नहीं। यह माया है, माया। प्रेरणा एक नशा है जो स्थायी नहीं, जल्द ही उतर जाता है। एक मृगमरीचिका है। भलाई इसी में है कि इसे दूर से ही प्रणाम करो।

कैदी : आप बिल्कुल मेरे अन्तर को समझ गए। वास्तव में उस लड़की का नाम प्रेरणा नहीं। केवल मैं उसे यही नाम दे सकता हूं! आप दार्शनिक लगते हैं?

रति : न भाई, न! मुझे केवल किसी के दर्शन मात्र ने उन्मादित किया है। उफ! मुझसे इस दशा में रहा नहीं जाता। मुझे दर्द हो रहा है। मेरा सारा बदन जल रहा है। तुमसे यहां अकेले खामोश कैसे बैठा जाता है?

कैदी : यहां आकर मुझे भी दर्द हुआ था। मैं भी तड़प उठा था। फिर स्वतः धीरे-धीरे ठण्डा हो गया हूं—यहां की यातनाएं सहकर।

रति : उफ ! क्या सचमुच तुम्हारे निकलने का कोई उपाय नहीं ?

कैदी : जब तक वह लड़की स्वयं आकर मेरी ओर से गवाही न दे शायद इल्जाम हर सूरत में मेरे ही विरुद्ध रहेगा।

रति : आखिर तुमने चुराया क्या है ?

कैदी : मुझे उस लड़की के प्रभावशाली धनी बाप के कथनानुसार चोर कहा गया है। जब मैं जान गया कि वह लड़की मेरी ओर आकर्षित है तो मैंने उसके घर जाना छोड़ दिया। मैं एक मध्यवर्गीय मामूली आदमी, उसके अयोग्य था। परन्तु वह लड़की मेरे स्टूडियो पर आने लगी। रोज आने लगी।

रति : और तुमको अपने भावुक चित्र दिखाया करती थी।

कैदी : नहीं, चित्र नहीं दिखाती थी। केवल मेरे बनाए चित्रों को गौर से देखा करती थी। मेरे साथ बहुत देर तक बातें किया करती थी।

रति : सम्बन्ध गहरा होता जा रहा था। स्लो प्रोसेस।

कैदी : फिर उसके व्यवहार में फर्क दिखाई दिया। वह सचमुच मितभाषिनी बन गई। मैं चित्र बनाया करता। वह मुझे एकटक देखती। मुझे उसकी वह मुखमुद्रा बहुत भली लगती और तब एक दिन मैंने उसका चित्र बनाया।

रति : (**हंसता है।**) तुम्हारा तापमान बढ़ने लगा। उसकी अनुपस्थिति में फिर उसके चित्र के साथ बातें करने लगे ? प्रेमाभिनय करने लगे ? क्यों ? ब्रेवो कलाकार ! ब्रेवो (**हंसता है।**)।

(सोये हुए मुंशी के कानों में जोर से)

फुर-र-र-र-र-र-र-र

मुंशी : (**घबराया-सा अर्द्धनिद्रा में**) क्या है, अब क्या है ?

रति : कुछ नहीं हवलदार। सो जाइए। केवल मैं देख रहा था कि खर्राटे लेने के साथ-साथ आपके नथुने द्रुत-लय में थरथराते हैं ?

मुंशी : उं ! ऊं ! उं ! ऊं ! (**करवट बदलकर सो जाता है।**)

(कैदी हंसता है।)

रति : कहो कलाकार, फिर क्या हुआ ?

कैदी : वह बहुत खुश हुई। उस दिन से उसने नित्य नये-नये कपड़ों में मेरे पास आना शुरू कर दिया। नये-नये रंग के नये-नये डिजाइनों में वह बहुत सज-धजकर आती थी। उसको देखकर मेरा दिल धड़कता था। वह एक ड्रेस मॉडल बन रही थी।. उधर लोग अब तरह-तरह की

अफवाहें उड़ा रहे थे। परन्तु मुझे अफवाहों की चिन्ता नहीं थी। मैंने उसके बहुत से चित्र बनाए और फिर···

रति : रुक क्यों गए ? फिर क्या हुआ ?

क़ैदी : फिर मैंने न्यूड बनाने शुरू किए।

रति : लो, यह रही। आवरण में कोई आकर्षण नहीं रहा। वास्तविकता न रही। क्लासिकी न रही।···तो फिर···

क़ैदी : वह मेरी मॉडल बन गई। मैंने उसे मॉडल रखकर बहुतेरे चित्र बनाए, बेचे और मैंने एक अच्छी धनराशि प्राप्त की। तब मैंने स्टूडियो के लिए एक नया फैशनेबल् मकान लिया।

रति : **(गाता है।)** फुरुर-फुरुर
तुतक तुतक तुतक तू तुतका तू
कदम-कदम बढ़ेंगे हम मुहाज पर लड़ेंगे हम !
मुख, मुखौटे, आवरण, और वरदियां लिये
कदम-कदम बढ़ेंगे हम मुहाज पर लड़ेंगे हम !

(चुप हो जाता है···खामोश)

क्षमा करना कलाकार बन्धु.यह मेरा थोड़ा-सा मजाक था मन-बहलाव। तो फिर कहो तुम्हारी प्रगति कहां पहुंची ?

(क़ैदी खामोश रहता है।)

रति : कहो न बन्धु ! क्या रूठ गए ? देखो, मेरे मजाक का बुरा मत मानना। आज की रात तुम्हें एक सुनने वाला मिला है। दिल खोलकर अपने हृदय के भार को कम करो। नहीं तो इस अंधकार में एकांत की घुटन से तुम्हारा दम घुटने लगेगा।···कहो न ?

क़ैदी : फिर मेरी चित्रप्रदर्शनी दूसरे शहर में हुई। हम दोनों वहां गए। सात दिन के बाद लौट आये। पांच दिन तक वह मेरे स्टूडियो में नहीं आई। मैंने कई बार फोन किया परन्तु वह न मिली। यही उत्तर मिलता था कि वह घर पर नहीं है। सातवें दिन वह स्वयं आकर मिली, उसने मुझसे कहा, चलो, यह शहर छोड़कर कहीं चलें।

रति : दूर, इस दुनिया से दूर। दुनियावालों से दूर। जहां तुम हो, मैं हूं और हमारी छोटी-सी दुनिया हो। क्यों, यही न ?

क़ैदी : हां ! कुछ ऐसा ही लेकिन मैंने नहीं माना। वह निराश हो गई किन्तु फिर भी मेरे पास आती रही। तब एक दिन अजब बात हुई।

रति : क्यों, प्रेमी पंछियों का जोड़ा बिछुड़ गया ?

क़ैदी : नहीं— एक दिन मैं उसका न्यूड चित्रित कर रहा था तो किसी ने मेरा दरवाजा खटखटाया। उस समय किसी के आने की सम्भावना न थी।

वह एकदम स्क्रीन के पीछे कपड़े पहनने चली गई। मैंने दरवाजा खोला तो देखा···

रति : क्या देखा ?

कैदी : उसका बाप ।

रति : बाप रे···फिर ?

कैदी : उसको देखते ही मेरे पैरों तले से धरती खिसक गई। मेरे सामने यमराज की मूर्ति थी। मुझे ज़िन्दगी में पहली बार अनुभव हुआ कि मैं बहुत डरपोक हूं। कायर हूं। अब वह क्या कहेगा ? अपनी बेटी को मेरे कमरे में नग्न देखकर क्या समझेगा ?

रति : इसमें कुछ भी समझने की बात नहीं ? एक बाप अपनी बेटी को न्यूड में देखे तो कोई अजीब बात नहीं।

कैदी : लेकिन मेरे कमरे में ?

रति : तुम्हारे कमरे में। चित्रकार के स्टूडियो में मॉडल और चित्र में क्या अन्तर? एक प्राणवान दूसरा निष्प्राण। दर्शक के लिए दोनों एक समान।

कैदी : मुझे एहसास हुआ जैसे उसने हम दोनों को नंगे देख लिया। वह उबल पड़ेगा। गोली चलाएगा। या मेरे चित्रों को तहस-नहस कर देगा।

रति : (**चुटकी बजाकर**) हिन्दुस्तानी फिल्मों के खलनायक की भांति फ्री-स्टायल मुक्केबाजी खेलेगा। यों (**अपने साथ मुक्केबाजी खेलता है।**) हुं ! हुं ! हुं ! हुं ! क्यों ? ऐसे ही न !

कैदी : लेकिन उसने कुछ भी नहीं किया। बड़ी अधीरता के साथ कमरे के सभी चित्रों को देखने लगा और फिर मुझसे कहा (**आवाज बदलकर**) इन सब चित्रों की कितनी कीमत मांगते हो ? मैं चुप रहा। कहो, कितनी कीमत चाहते हो ? उसने फिर कहा।

रति : (**नीलामी की तरह**) लाख, पांच लाख, दस लाख, बीस लाख, क्यों तुम फिर भी चुप रहे ?

कैदी : हां। मैं बिल्कुल चुप रहा। खामोशी से केवल उसके बूटों की चपटी नोकों को देखता रहा। भय से मेरा सारा शरीर कांप रहा था। मुझे लगता था कि वह अपने जूते निकालकर मेरी नाक पर दे मारेगा। मेरी नाक से खून का फव्वारा फूटेगा।

रति : और बाप की बेटी अपने प्रियतम पर होते प्रहारों को स्क्रीन की ओट से देखती रहेगी। उसके नथुनों से बहते हुए खून का अपने भावुक चित्रों पर मलकर अपने प्रणय-खेल का अन्त करेगी। यही न !

कैदी : नहीं, ऐसा कुछ नहीं हुआ ! मैंने बड़ी हिम्मत से चित्र बेचने से इनकार

कर दिया ।

रति : ओ, तुमने घर आई लक्ष्मी को स्वीकार करने से इनकार किया ? आखिर क्या था तुम्हारे चित्रों में ? सोना भर रखा था ? हीरे जड़े थे ?

कैदी : नहीं, मैं उन्हें बेचना नहीं चाहता था। मुझे उनके साथ मोह था। उनके साथ आत्मीयता थी ।

रति : हूं, परन्तु वह यह सब चित्र क्यों खरीदना चाहता था ?

कैदी : वह मेरे चित्रों में अपनी बेटी की परछाइयां पा रहा था ।

रति : ऐसा तुम समझते हो या वह समझता था ?

कैदी : शायद हम दोनों समझते थे ?

रति : फिर वह चला गया ?

कैदी : हां, एक भले आदमी की तरह ।

रति : और उसकी लड़की ?

कैदी : वह एकदम घबरा गई थी और अधमुई-सी मेरी बांहों में गिरकर सिसक-सिसककर रोने लगी ।

रति : (**बांहें पसारता है।**) आह, मुझे लगता है कि बादाम जैसी आंखोंवाली लड़की मेरे दायें कंधे पर अपनी सांस छोड़ रही है ।

कैदी : फिर वह संभल गई और अपने घर चली गई। फिर कभी नहीं आई। तब मैं एक दिन उसके प्रभावशाली पिता के षड्यंत्र में फंस गया और आज तक यहां की यातनायें सह रहा हूं। लेकिन मैं कभी इनके बनाये झूठ का इकरार नहीं करूंगा। मैं मरना स्वीकार करूंगा किन्तु झूठे आरोप कभी कबूल नहीं करूंगा ।

रति : (**उत्तेजित होकर**) झूठ, तुम झूठ बोल रहे हो। तुम कोई कलाकार नहीं हो। मैं समझ गया। इस चाल को समझ गया। अच्छी तरह से समझ गया। तुम इस इंस्पेक्टर के ज़रखरीद गुलाम हो। कहानियां गढ़ते हो। तुम पीटे नहीं जाते हो। तुम चाहते हो कि तुम्हारी प्रेम-कहानी से प्रभावित होकर मैं तुम्हें यह बताऊं कि मैं कौन हूं ? आरोपित आरोप को स्वीकार करूं।''''''नहीं बताऊंगा मैं। कहां छुपाया है तुमने टेपरिकार्डर ? बताओ।'''तुम यह सारी बातें टेप कर रहे हो ? बताओ। बोलो। जवाब दो। बताओ। तुम मेरे साथ नाटक खेल रहे हो। कहो।

कैदी : नये जी, यह क्या कह रहे हैं आप ? आप बहक रहे हैं। मैं नाटक नहीं खेल रहा हूं। मैं बन्दी हूं ।

रति : बड़े चतुर मालूम होते हो। तुम मुझे चकमा नहीं दे सकते हो ? कहो, तुम मुझे इन लाठियों से डरा रहे हो ? इनकी उन लकड़ी की बंदूकों

का खौफ दिला रहे हो। मैं इन सबसे नहीं डरता हूं। मैं तुम्हारी तरह कायर नहीं हूं। डरपोक नहीं हूं। मैं इन सब को जला दूंगा। तुम्हें और तुम्हारी कहानी को खत्म कर दूंगा। मैं जल रहा हूं। मैं उबल रहा हूं। मैं तप रहा हूं। देखो ?

(अपनी शर्ट के बटन खोल देता है।)

मैं यहां की सारी सम्पत्ति भस्म कर दूंगा। यह लाठियां........

कैदी : नये जी, नये जी, ओ.........

रति : **(लाठियां उठाकर स्टेज पर फेंक देता है।)** एक......दो......तीन ......चार......

कैदी : नये जी, नये जी ! यह क्या कर रहे हो ? नये जी ! ज़रा सम्भल जाइये। ठहर......

रति : यह रही बन्दूकें, नकली बंदूकें, बनावटी बन्दूकें। **(फेंक देता है।)** एक......दो...तीन......चार......

(सिपाहियों के कमरे में चला जाता है।)

कैदी : नये जी ! यह अच्छा नहीं। सब जाग जायेंगे तो आप पर सख्ती करेंगे आपको बांध लेंगे। छोड़ दीजिये। नये जी, नये जी ! कहां चले गये ! वहां सिपाहियों का कमरा है। वह सो रहे होंगे। नये जी, अंधेरे में ठोकर लगेगी। नये जी !

रति : **(वरदियां लेकर आता है।)** अन्दर सोये पड़ों की वरदियां। कमरबन्द ......बेल्ट......**(फेंकता जाता है।)**......टोपियां......

कैदी : क्या कर रहे हैं आप, नये जी !

रति : **(मुंशी की वरदी उठाकर फेंकता है)** वहाँ सोये पड़े जानवर की वरदी।

कैदी : नये जी, यह क्या कर रहे हैं आप ?

रति : अकर्मण्यता की थकान को जला रहा हूं। **(इन्सपेक्टर के कमरे में जाता है।)**

कैदी : यह ठीक नहीं है। इसका परिणाम ठीक नहीं होगा। यह आप को मुक्त नहीं करेंगे। बांध लेंगे। नये जी, मेरी बातों पर विश्वास करो। मेरा कहा मान जाओ। वापस आओ। वहां पर इंस्पेक्टर का कमरा है। वह जाग जायेगा तो तूफान मचायेगा। नये जी, नये जी !

रति : **(वरदी लेकर)** इंस्पेक्टर की वरदी। टोपी। कमरबन्द......**लो लग** गई आग। लग गई। आग लग गई।

(वरदियां हाथ में उठाता है।)

जल गया...जल गया...जल गया...आग ! आग !

(सोये हुए मुंशी का ओढ़ने का कपड़ा उठा लेता है।)

आग ! आग !

मुंशी : **(जाग कर)** कहां है ? कहां है ?

रति : जल गया ! जल गया ! जल गया ! आग ! आग !

मुंशी : कहां है ? क्या जल गया ?

रति : आग ! आग ! आग !

(सारी पुलिस चौकी जाग पड़ती है। घबराहट के मारे सभी सिपाही अस्त-व्यस्त नंगे-अधनंगे रंगमंच पर आते हैं। इन्सपेक्टर भी आता है।)

इंस्पेक्टर : क्या है ? बुझा दो ? जल्दी बुझा दो। क्या जल रहा है ?

रति : जल गया ! आग ! आग !

इंस्पेक्टर : **(रति को पकड़ कर)** कहां है आग ?

रति : **(दिल पर हाथ मारकर)** यहां ! दिल जल रहा है।

इंस्पेक्टर : दिल जल रहा है। पहली बार चोर जागा था। अब दिल जल रहा है। क्या मिलना है आपको इस मज़ाक से ? मैं इस तरह की अनुचित हरकतों का मतलब नहीं समझा !

रति : ओह इंस्पेक्टर, तुम नहीं समझोगे। मेरे मस्तिष्क में एक चरखा है, पहिया है, एक दायरा है जो घूमता रहता है। जब तेज घूमने लगता है, तब मुझे अपनी हरकतों पर कोई नियन्त्रण नहीं रहता। मुझे अपनी करनी पर वश नहीं रहता। लगता है मैं उस दायरे के केन्द्र-बिन्दु को खो देता हूं।

इंस्पेक्टर : अगर आप इस थाने के बाहर ऐसा हुल्लड़ मचाते तो आप पर नया जुर्म आयद होता। हवलदार ! बांध दीजिये इसके हाथ-पैर। और देखो, खुद यहां पर रह कर निगरानी रखो। मिस्टर मदन, अब आप हमें और परेशान न कीजिये।......उठाओ यह सब चीजें यहां से। बांध लो दोनों हाथ-पैर ?

रति : लेकिन मेरे मस्तिष्क में घूमने वाले दायरे को तुम नहीं रोक सकते, वह चलता रहेगा। घूमता रहेगा।

(उसके हाथ-पांव बांध दिये जाते हैं। इंस्पेक्टर चला जाता है।)

चलता रहेगा। अरे भाई, जरा धीरे से बांधो। रक्त-मांस के हैं, लकड़ी के नहीं।

सिपाही : यह सब चीजें इसने कैसे यहां पर जमा कर दीं ?

मुंशी : घूम-घूम कर। लेकिन अब कहां घूमेगा ? लो बाबू, अब ज़रा सम्भल कर रहना।

रति : घूमता रहेगा, चलता रहेगा।

सिपाही : अब नींद नहीं आने की। लो भई, हम चले।

रति : घूमता रहेगा, चलता रहेगा।

मुंशी : अपनी भी नींद उड़ गई। बाबू, खामोश रहो।

रति : घूमता रहेगा, चलता रहेगा।

(धीरे-धीरे रोशनी कम होती है। सभी अपने पूर्व स्थानों को चले जाते हैं। कैदी पुनः दिखाई देता है।)

कैदी : नये जी, यह आप ने क्या किया ? आप मुझ पर विश्वास कीजिये, मैं इंस्पेक्टर का आदमी नहीं हूं। वह बहुत बुरा आदमी है। पहले उसका रवैया हमदर्दी से भरा रहता है परन्तु फिर वह बदल जाता है। वह आदमी नहीं रहता। मैं उसकी यातनायें सह रहा हूं। आप मुझ पर विश्वास क्यों नहीं करते, मैं उसका बन्दी हूं।

रति : हम अपनी स्वनिर्मित यातना के बन्दी हैं।

कैदी : मुझे अपना ही समझ लीजिये। मैं झूठ नहीं बोल रहा हूं।

रति : मैं समझ गया, तुम झूठ नहीं बोल रहे हो। मैं भी झूठ कहना नहीं चाहता और सच छुपाना नहीं चाहता। उफ ! तुम चुप रहो···चुप रहो ! तुम्हारी कहानी मुझे जला देती है। मैं तप जाता हूं। उबल पड़ता हूं। तुम चुप रहो। अपने लिए चुप रहो। अपनी प्रेयसी के लिए चुप रहो। कृपा करके मेरे लिए चुप रहो। चुप रहो। चुप रहो। चुप रहो······

(रोशनियां कम होती जा रही हैं। रति की सिसकियां सुनाई देती हैं।)

(पूर्ण अंधेरा)

(पार्श्व में घड़ी आठ बजाती है। जब रोशनियां जलती हैं तो एक सिपाही आकर रति के हाथ-पांव खोल देता है। रति एकटक देख रहा है, उसकी गर्दन एक ओर झुकी है। सिपाहियों का आना-जाना। कैदी पर्दे के पीछे है। सवेरा हो आया है। वरदी पहनकर इंस्पेक्टर अन्दर आता है।)

इंस्पेक्टर : खोल दीं रस्सियां !···हां।···कहिये मिस्टर मदन, अब कैसी हालत है ?

(रति खामोश)

इंस्पेक्टर : मिस्टर मदन, मैं आप से कह रहा हूं। कहिये, अब मिजाज कैसा है ?

(रति खामोश)

इंस्पेक्टर : ओह ! समझा, तो अब मौन साधने का विचार है। क्यों ? मौन इकरार का दूसरा नाम है ?

रति : नहीं, मौन मुर्दे साधते हैं। मैं अभी मरा नहीं हूं। मेरा दिल अब भी धड़क रहा है। आप यहां आकर मेरे दिल की धड़कनें गिन सकते हैं।

इंस्पेक्टर : धड़कनें मैं नहीं कोई और गिनेगा !

रति : ऐं !

इंस्पेक्टर : डॉक्टर !······मैं ने डॉक्टर को बुलाया है।

रति : क्यों, तुम्हारे सिपाहियों में से क्या कोई बीमार हो गया है ?

इंस्पेक्टर : नहीं ! मैं तुम्हारा मेडिकल ऍग्ज़ाम कराना चाहता हूं।

रति : हो, हो ! यह ऍग्ज़ाम अभी बाकी था। इस कमी को तुम पूरा कर रहे हो। सरकारी खर्च पर, क्यों ? हः हः हः (**हंसता है।**)

सिपाही : इंस्पेक्टर साहब ! डॉक्टर।

(**डॉक्टर अन्दर आता है।**)

इंस्पेक्टर : गुड मार्निंग, डॉक्टर !

डॉक्टर : गुड मार्निंग, इंस्पेक्टर।

रति : (**डॉक्टर को देखकर**) हूं !

इंस्पेक्टर : मिस्टर रतिरमण मदन कल रात के ग्यारह बजे से यहां हैं। कभी-कभी नरवस फील करते हैं। इसलिए, डॉक्टर, मैं चाहता हूं कि आप इनका ऍग्ज़ाम करें।

रति : नो डॉक्टर, नो ! मुझे नहीं, आप इन सबको ऍग्ज़ाम कीजिये। यह सब बीमार हैं।

(**डॉक्टर हंसता है। इंस्पेक्टर हैरान होता है।**)

आप हंसते क्यों हैं। झूठ नहीं कहता हूं। मैंने आज रात भर इन सबको नींद में चलते-फिरते देखा है। इन सभी ने अपनी-अपनी वर-दियां मेरे पैरों पर फेंक दीं। अपनी टोपियां फेंक दीं। पगड़ियां फेंक दीं। कमरबन्द फेंक दिये। अपने जूते···नहीं···जूते नहीं फेंके डॉक्टर, जब मैंने इन्हें जगाया तो इन्होंने मिलकर रस्सी से मेरे हाथ-पांव बांध दिये। देखो, अब भी मेरी कलाइयों पर रस्सी के निशान हैं।

(**इंस्पेक्टर डॉक्टर को इशारा करता है कि यह सिरफिरा है।**)

नो डॉक्टर, नो ! मेरा दिमाग बिलकुल ठीक है। बिलकुल ठीक है। हां, ज़रा बदन तप रहा है। दर्द हो रहा है। मेरे कपड़ों की चोरी हो गई है। टिकट की चोरी हो गई है। मेरे प्रमाणपत्रों को चुराया गया है।

डॉक्टर, मुझ पर विश्वास करो। मेरा व्यक्तित्व चुराया गया। मैं अधूरा हूं। मुझे इनकी वरदी नहीं चाहिए। मैं बेढंगा लगता हूं। अजीब लगता हूं।

डॉक्टर : (**स्टेथस्कोप लेकर**) ज़रा मुझे देखने दीजिए ?

रति : फफ् !

डॉक्टर : ज़रा सांस खींचिये ?

(**रति खर्राटे भरता है।**)

ज़रा धीरे से, खर्राटे नहीं। सांस खींचिये।

रति : डॉक्टर, यहां सभी को खर्राटे लेने की आदत है।

डॉक्टर : अपनी नाड़ी दिखाइये ?

रति : आह ! डॉक्टर, मैं तप रहा हूं। उबल रहा हूं।

डॉक्टर : बुखार तो बिल्कुल नहीं है।

रति : डॉक्टर, यह आत्मा का बुखार है। मैं तप रहा हूं।

डॉक्टर : इस समय कहां पर दर्द हो रहा है ?

रति : उफ ! डॉक्टर यह देखना तुम्हारा काम है। सच पूछो तो मुझे अपने व्यक्तित्व के छिन जाने का बुखार है। मुझे अपने व्यक्तित्व से लगाव है। आत्मीयता है। अपनापन है। मुझे अपने कपड़े और सर्टिफिकेटों के छिन जाने का दर्द है। मैं अधूरा हूं। नंगा हूं। डॉक्टर, आइ एम एक्सपोज़्ड। मैं अपने व्यक्तित्व के दायरे से अलग हूं। मैं केवल केन्द्र-बिन्दु रह गया हूं।

डॉक्टर : हूं !......(**विचारशील होकर चक्कर काटता है......खामोशी**)

रति : डॉक्टर, आपके पास थरमामीटर होगा ?

डॉक्टर : हां ! क्यों ? तुम्हें तो बुखार नहीं है।

रति : नहीं है, पर मैं तप रहा हूं।

(**डॉक्टर थरमामीटर निकालता है।**)

डॉक्टर : तुम मज़ाक खूब जानते हो !

रति : मैं उस शहर में नहीं रहता जो बे-मज़ाक हो। डॉक्टर ! इस पर यह निशान क्यों लगे हैं ?

डॉक्टर : क्यों, जानते नहीं हो, यह तापमान के चिह्न हैं। हरारत देखने के निशान।

रति : उफ् ! मेरा ताप इन चिह्नों की सीमा का अतिक्रमण करेगा। क्यों ?

डॉक्टर : मैं आपका मतलब नहीं समझा ?

रति : इसका पारा उतर चुका है। है न ?

डॉक्टर : नहीं तो ?

रति : तो शांत होगा, ठंडा होगा, मौन और खामोश होगा। ठीक ?

डॉक्टर : समझ गया। (**थरमामीटर जेब में रखता है।**) मैं समझ गया। इंस्पेक्टर, आप जानें और आपका काम। फिकर करने की कोई

गुंजाइश नहीं। ऐवरी थिंग इज़ नारमल।

(चला जाता है। ···इंस्पेक्टर कुछ सोचता है।)

रति : ओह, डॉक्टर, तुम सचमुच एब्नारमल हो······इंस्पेक्टर, तुम मेरे विचारों का पोस्टमार्टम कराना चाहते थे। क्यों ?

इंस्पेक्टर : आपका मतलब ?

रति : **(मुस्कराकर)** कुछ नहीं।

इंस्पेक्टर : मिस्टर मदन। मैं बहुत कोशिश करता हूं कि आप को समझ पाऊं पर······

रति : उफ् ! मेरे मस्तिष्क का पहिया फिर घूमने लगा। चलने लगा। घूमने लगा। इंस्पेक्टर, चलने लगा। घूमने लगा।

(चेतना प्रवेश करती है। उसके हाथ में हैंगर है जिस पर सूट है और दूसरे हाथ में बूटों का जोड़ा और पर्स है।)

चेतना : ओह ! मिस्टर मदन !

रति : **(चौंक पड़ता है। मुंह से चीख निकल पडती है)** ओ···इ···इ···इ··· **(अपने दोनों हाथों से वह अपने मुंह को छुपाता है।)**

चेतना : इंस्पेक्टर साहब ! नमस्ते, आपका बहुत-बहुत शुक्रिया।···मैंने इन्हें पा लिया।···ओह !···मैं रात भर···जागती रही।···कई बार स्टेशन मास्टर को टेलिफोन किया।···कहीं कुछ पता न मिला और तब अभी-अभी···कोई एक घंटा पूर्व·········

(रति एकदम उसके हाथ से हैंगर छीन लेता है। बूट स्वयं गिर पड़ते हैं। वह उन्हें उठा लेता है। और भाग कर इंस्पेक्टर के कमरे में चला जाता है।)

ओह ! बस यही एक-आध घंटा पूर्व स्टेशन से टेलिफोन पर किसी ने बताया कि हो सकता है कि बगैर टिकट पकड़ा गया आदमी ही मिस्टर मदन हो, आपका बहुत शुक्रिया···**(पर्स खोलकर)** इंस्पेक्टर यह रहा इनका टिकट।

इंस्पेक्टर : **(टिकट लेकर)** आपको मिस्टर मदन का सामान और यह टिकट वगैरा लेने से क्या मतलब था ?

चेतना : इंस्पेक्टर ! आप नहीं समझेंगे। इन्हें सम्भालने की आवश्यकता है। बहुत आवश्यकता है।

इंस्पेक्टर : ठीक है। अब जीवन भर शौक से सम्भालिए परन्तु यह तो बताइये जब आप रेलवे स्टेशन पर उतरीं तो आप इन्हें क्यों नही ले गईं ?

(एक पुलिसमैन स्टेज पार करता है। मुंशी कुछ क्षण ठहरकर इंस्पेक्टर के कमरे में जाता है।)

चेतना : इंस्पेक्टर साहब, जब स्टेशन समीप आ रहा था तो मैंने सब सामान बांध लिया था। लेकिन मिस्टर मदन लैट्रिन में थे। स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो मैंने सामान उतरवाया। प्लेटफार्म से जब इन्हें देखने गई तो यह कहीं नहीं मिले। मैंने इन्हें इधर-उधर ढूंढ़ा पर कहीं नहीं मिले। मैंने स्टेशन मास्टर से कहा कि यदि मिस्टर मदन को वह देखें तो उन्हें मेरे घर भेज दें।

इंस्पेक्टर : आप इसी शहर में रहती हैं?

चेतना : जी हां!

इंस्पेक्टर : आपका नाम?

चेतना : चेतना।

इंस्पेक्टर : आपका मिस्टर मदन से क्या रिश्ता है?

चेतना : **(घबरा कर)** जी, कोई नहीं।

इंस्पेक्टर : ओऽ आई सी। जान-पहचान कितनी पुरानी है?

चेतना : जी, हम दोनों गाड़ी में मिले हैं।

इंस्पेक्टर : यह बात। अब मैं इस पहेली को कुछ-कुछ समझ रहा हूं। **(टिकट देखकर)** चेतना जी, इस टिकट पर तो अभी सफर पूरा नहीं हुआ है। मिस्टर मदन को अभी बहुत दूर जाना है?

चेतना : जी नहीं। अब इस टिकट की कोई ज़रूरत नहीं। अब हमारा नया सफर शुरू होगा। हम दोनों नयी टिकट खरीदेंगे।

इंस्पेक्टर : **(नाटकीय ढंग से)** बधाई, नये सफ़र की बधाई हो!

चेतना : शुक्रिया!

(इंस्पेक्टर कागज़ पर कुछ लिखता है···खामोशी)

इंस्पेक्टर : आप इस रिपोर्ट पर अपने सम्पूर्ण हस्ताक्षर कीजिये।

(चेतना हस्ताक्षर करती है।)

इंस्पेक्टर : **(खड़ा होकर)** मिस चेतना, क्या आप महसूस करती हैं कि आपने मिस्टर मदन के सामान को बिना उन्हें सूचना दिये लेकर उन्हें परेशानी में डाला। उनकी मान-हानि कराई और जैसा कि वह समझते हैं, उनके व्यक्तित्व की चोरी की?

चेतना : यह सब जल्दी में हुआ। बहुत जल्द हुआ। इंस्पेक्टर, स्टेशन पर मुझे रिसीव करने के लिए बहुत से लोग आए थे। मैं उनको मिस्टर मदन का परिचय कैसे करा सकती थी। आपको नहीं मालूम कि वे किस हालत में थे।···आप यकीन नहीं करेंगे। **(इंस्पेक्टर हंसता है।)** उफ्! मैं बहुत परेशान थी। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था। पर मैं और कर ही क्या सकती थी!···मैं वहां बहुत देर ठहरी परन्तु···

इस शरीफजादे का कहीं नाम नहीं था।···ओह, इंस्पेक्टर मैं बहुत परेशान हूं। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था। पर···पर···पर मैं इनको यह कहना भूल गई कि मैं इनको अपने घर ले चलूंगी। इंस्पेक्टर, मैं बहुत परेशान हूं।

इंस्पेक्टर : आई एम सारी।···आपको स्टेशन पर इनके लिए ठहर जाना चाहिए था?

चेतना : मुझे मेरी सहेलियां खींच रही थीं। सारा सामान उन्होंने कुलियों द्वारा पहले ही उठवा लिया था और स्टेशन के बाहर मोटर में रखवा दिया था। इंस्पेक्टर, यह सब बहुत जल्दी में हुआ। मैं आगे-पीछे देखती जाती थी। नज़र घुमाती जाती थी पर वह कहीं नहीं मिले।
आपका बहुत-बहुत शुक्रिया इंस्पेक्टर साहब, अगर वह स्टेशन पर न उतरकर गाड़ी में ही रहते तो उनको पाना बहुत मुश्किल था। मेरे पास उनका कोई पता नहीं था।

इंस्पेक्टर : क्यों, आपके पास मिस्टर मदन की सर्टिफिकेट्स तो थीं?

चेतना : नहीं, हो सकता है वह सब इनके बक्स में हों। मैं वह कैसे खोल सकती थी।

(रति कपड़े बदलकर आता है। वह सम्पूर्णतः बदल गया है।)

रति : गुड मार्निंग, इंस्पेक्टर!

इंस्पेक्टर : **(ऊपर से नीचे तक रति को देखकर)** गुड मार्निंग! अब आप कैसा अनुभव कर रहे हैं?

रति : गुड मार्निंग, मिस······

इंस्पेक्टर : मिस चेतना **(हंसता है।)**

रति : इंस्पेक्टर, क्या मैं अब जा सकता हूं?

इंस्पेक्टर : ज़रूर। लेकिन यकीन मानिये मैं अब भी सचाई नहीं जान सका।

रति : **(दार्शनिक की भांति)** इंस्पेक्टर! सचाई, योग्यता, और असलियत, कपड़ों में नहीं, वरदियों में नहीं, **(जेब से कागज़ निकालकर)** सर्टिफिकेटों में नहीं। नम्बरों में नहीं, टिकटों में नहीं। नहीं है इन सब में···आदमी में है। और अगर आदमी में भी नहीं है तो कहीं नहीं है।

(चेतना की ओर आता है। फिर इंस्पेक्टर से)

हो सकता है कि बन्दी कैदी के कथन में सचाई हो, सत्य हो। यथार्थ हो। इंस्पेक्टर, हो सके तो उसको मुक्त कीजियेगा।

(दर्शकों से)

आप लोगों से कहता हूं कि अब आप यहां से चले जाइये। बाहर आप

की नंगी रात्रि आपकी प्रतीक्षा में खड़ी है। (**मुड़ता है।**) आओ, चेतना, चलो चलें ?

(**बांहों में बांहें डालता है।**)

इंस्पेक्टर: तो मिस्टर मदन, अब आप कहां जा रहे हैं ?

रति : (**वापस मुड़कर**) इंस्पेक्टर, मैं यहां अधूरा लाया गया था। और अब यहां से (**चेतना के मुख को देखकर**) पूरा होकर जा रहा हूं। उधर (**हाथ से दिखाकर**) दरवाजे के बाहर मेरा उगता हुआ दिन मेरी प्रतीक्षा में खड़ा है।···मैं रोजगार की तलाश में जा रहा हूं।

(**दोनों चले जाते हैं।···खामोशी**)

मुंशी : साहब, क्या वह···चले गये।···यह तौलिया यहीं पर भूल गये हैं।

इंस्पेक्टर : भूल नहीं गए हैं। शायद इसको हमारी नग्नता छुपाने के लिए छोड़ गए हैं। इसको सम्भालने की आवश्यकता है।

(**दोनों अन्दर चले जाते हैं। धीरे-धीरे रोशनियां कम होती हैं। सींकचों से पर्दा उठता है। कैदी दो हाथ बाहर उठाये है। रोशनी हाथों पर पड़ती है।···जैसे कह रहे हों··· मुझे झूठ बोलने पर मजबूर न करो। मुझे छोड़ दो।**)

ताकन लागे काग

□ सुतीक्ष्ण कुमार शर्मा 'आनन्दम'

(ढालुआं छत वाली एक झोंपड़ी, जिसकी छत काई और घास की बनी है। दीवारें मिट्टी की बनी है जिन पर सफेद मिट्टी से कुछ चित्र रेखांकित हैं। प्रवेश द्वार वाली तथा अन्य दीवार जिसमें एक खिड़की खुलती है साफ दिखाई दे रही है। प्रवेश द्वार के साथ ही एक बड़ा-सा मटका रखा है।

खुले आंगन में एक-दूसरे से कुछ अंतर पर दो ठूंठ हैं, एक ओर विशाल पत्थर है तथा आवश्यकतानुसार···। पुत्र रोहित गुमसुम-सा उदास खड़ा है। थकी-हारी निढाल अवस्था में हरिश, जिसके बाल बिखरे हैं, का प्रवेश)

रोहित : आप आ गये, पिता जी ?

हरिश : (यत्नपूर्वक मुस्कराता हुआ साश्चर्य) अभी तक तुम यहीं खड़े हो, बेटा ?

रोहित : बहुत भूख लगी है पिता जी ! मां को भी बहुत भूख लगी है।

हरिश : (रोहित के सिर पर हाथ फेरता हुआ) सत्यम् वद, धर्मम् चर। सत्यम् वद, धर्मम् चर। (मायूस तारा भीतर से बाहर आ कर धीरे-धीरे हरिश की ओर बढ़ रही है। हरिश उसकी ओर देखने लगता है) सत्यम् वद, धर्मम् चर।

तारा : (समीप आकर रुक जाती है) शायद, खाली ही लौटे हैं आप ?

हरिश : दान को स्वीकार करना मेरे स्वभाव में नहीं है और मेरे परिश्रम का सही मूल्यांकन किसी को स्वीकार नहीं।

(प्रश्नवाचक-सा रोहित बारी-बारी दोनों की ओर देखता है। निरुत्तर-सा हरिश चुपचाप जा कर विशाल पत्थर पर खोया-खोया-सा बैठ जाता है। इसी प्रकार चुप-चुप जाकर तारा एक ठूंठ के सहारे

खड़ी हो जाती है। याचक-सा रोहित बारी-बारी दोनों की ओर देखता है। फिर कभी एक कदम हरिश की ओर तथा कभी एक कदम तारा की ओर बढ़ता है। कुछ पल इसी उलझन के पश्चात् वह हार कर तनिक तेज कदमों से चलता हुआ प्रवेश द्वार के पास आ रुकता है और वहीं अन्तर्द्वन्द्व झेलने की मुद्रा में भूमि पर बैठ जाता है। सन्नाटा छा जाता है।

कुछ पल पश्चात् धीरे-धीरे चलता हुआ हरिश आंगन के मध्य में आ रुकता है। इसी प्रकार आगे आकर तारा उसके पास खड़ी हो जाती है। दोनों एक-दूसरे की ओर अवाक् देखते हैं। इतनी देर में उठकर चलता हुआ रोहित भी इनके पास आ खड़ा होता है।]

तारा : स्वामी।

हरिश : हूँ ? (तारा अपना आंचल संभालती है।) तुम कुछ कह रही थीं, तारा ?

तारा : आप मुझसे संतुष्ट हैं ?

हरिश : यह कैसा प्रश्न है तुम्हारा ?

तारा : (क्षणिक विराम) निःसंदेह मैं आपकी जीवन-संगिनी हूँ......।

हरिश : हो तो ! (तारा अपने आंचल का एक छोर हाथों में लेकर मरोड़ने-तोड़ने लगती है।) चुप क्यों हो गई, तारा ? कोई संकोच है क्या ?

तारा : संकोच नहीं, जिज्ञासा है !

हरिश : कहो तो। हम भी सुनें तारा की जिज्ञासा कैसी है ?

(रोहित का प्रस्थान)

तारा : और कब तक हमारी दशा दलित होगी ? और कब तक स्वामी ?

हरिश : (तारा की पीठ पर हाथ रख कर) तारा ! हरिश की दशा न कभी दलित हुई है और न कभी हो सकेगी। सत्य उसकी अमित पूंजी है।

तारा : सो तो ठीक है स्वामी, किन्तु......?

हरिश : जब हमारा सत्य हम से छिन जाएगा......तभी हमारी दशा दलित हो सकेगी। (विराम) तुम चुप क्यों हो गईं, तारा ? बोलो !

तारा : न जाने कौन-सा बैर था हमारे साथ, विश्वामित्र को......।

हरिश : (विह्वल-सा एकदम तारा को चुप रहने का संकेत देता हुआ) विश्वामित्र महोदय का नाम इस प्रकार न लिया करो, तारा !

तारा : क्यों ? इस प्रकार क्यों न लूं उसका नाम जिसके कारण हम कहां से कहां पहुंच गये। हम क्या थे और क्या हो गये ? वह विश्वामित्र ...

हरिश : हमारे शुभचिन्तक हैं......शत्रु नहीं।

तारा : हमारी यह दशा उन्हीं के शुभचिन्तन का प्रमाण है। वह दुराचारी हैं......अधर्मी हैं।

हरिश : नहीं तारा, नहीं। वे दुराचारी, अधर्मी नहीं हैं। जो उनके धर्म ने कहा, उन्होंने किया और जो हमारे धर्म ने कहा हमने किया और जो-जो हमारा धर्म कहता है, हम कर रहे हैं।

(रोहित का प्रवेश। दोनों की बातें सुनता है)

तारा : उनका धर्म ? हमारा धर्म ? सत्य क्या है, स्वामी ?

हरिश : सत्य एक आचरण है। सत्य एक परीक्षा है।

तारा : सत्य और धर्म की ये कठोर परीक्षाएं हमारे ही लिए हैं क्या ? एक युग था जब राज-पाट छिन गया। एक युग था घर-बार गया। खेत-खलिहान सब गये। यातनाओं पर यातनाएं मिलीं। यातनाओं के नद पार किये तो यातनाओं के सागर मिले।

हरिश : तुम ठीक ही समझी हो, तारा ! यातनाओं के सागर में हम घुलमिल जाएंगे। बीते युग की भांति फिर कोई सुर-असुर दल आएंगे। सागर मन्थन होगा और, और अपने अज्ञात पाप धो कर हम पुनः आएंगे।

तारा : क्या हमें अभी और घुलना शेष है ? नये सागर-मन्थन की प्रतीक्षा अभी शेष है क्या ?

हरिश : हां ! ऐसा ही निश्चित है।

तारा : तब तो स्वामी······**(रोहित मूर्च्छित अवस्था को प्राप्त होता है। उसे देखते ही संवाद अधूरा रह जाता है।)** हमारा यह लाल ! स्वामी, स्वामी ! अपना पुत्र रोहित ? देखें तो स्वामी ?

हरिश : **(विकल होते-होते अविकल होने की चेष्टा से)** सत्य की गोदी में निद्रा-मग्न है !

तारा : **(विदीर्ण)** देखें ! देखें स्वामी ! **(हरिश को भावशून्य देखकर रोने लगती है।)** आपका सत्य कितना कठोर है, स्वामी ? आपका मन इतना वज्र क्यों है ? आपके हृदय मे वात्सल्य कहां विलीन हो चुका है।

हरिश : धैर्य से काम लो तारा, धैर्य से।

तारा : **(रोती हुई)** धैर्य से ? और नहीं रहा धैर्य। रोहित को देखें स्वामी ! पुत्र को होश में लायें। कोई उपचार करें। **(हरिश के घुटने थाम कर)** स्वामी······। स्वामी······!

हरिश : **(करुण-सा तारा को उठाकर रोहित की ओर देखता हुआ)** सत्य को जो स्वीकार हो······निश्चय ही घट जाता है। और अब तो घट भी चुका।

तारा : घट भी चुका। **(इसी संवाद को बार-बार दोहराती, रोती हुई मूर्च्छित हो जाती है।)**

हरिश : **(अवाक्)** मेरा मन क्यों बैठने लगा ? **(सम्बोधन)** धैर्य ! हे मेरे

धैर्य ! तुम भी क्यों छूटने लगे ? तुम······? (**निर्णय**) नहीं ! मैं ऐसा कदापि न होने दूंगा। धैर्य नहीं छूट सकता। मैं सूर्यवंशी हूं। धैर्य से ही सूर्य की निरन्तर गति है। अन्यथा संसार अंधकारमय होता। सूर्य कभी नहीं मरा। मैं भी नहीं मरूंगा। सूर्य सदैव तपा है। मैं भी जन्म-जन्म से तपा हूं। (**दो-एक आंसू बह निकलते हैं, सोखता है किन्तु थम नहीं पाते**) प्रभो ! हे प्रभो ! मेरे पांव क्यों डगमगाने लगे ? (**तारा तथा रोहित की ओर देखता हुआ**) सत्य का यह विघटन सार्थक है क्या ? मेरे विश्वास का अंत न दिखाओ प्रभो ! सोख लो मेरे ये आंसू। मेरा धैर्य बना रहने दो। वज्र कर दो मेरा मन।

('प्रभो' शब्द के बार-बार उच्चारण के साथ घुटन महसूस करता हुआ मूर्च्छित हो जाता है। प्रकाश मद्धिम हो जाता है। कुछ छायाएं हरिश्चंद्र, तारा तथा रोहित की देहों की ओर बढ़ती, उनके इर्द-गिर्द नृत्य करती हैं। कुछ ही समय पश्चात् दैवीय संगीत उभरता है। मद्धिम प्रकाश को चीरती हुई तीव्र प्रकाश किरण के साथ आ रहे 'सत्यपुरुष' को देखकर छायाएं कहकहे लगाती हैं।)

सत्यपुरुष : (**चारों ओर देखकर मुस्कराता हुआ**) हंसो मत ! मैं इसे······एक बार फिर······नया जन्म दूंगा। (**छायाएं प्रस्थान करती हैं। सत्यपुरुष सौम्य हंसी हंसता है। बाएं हाथ के कमण्डल से जल के छींटे देकर हरिश को होश में लाता है**) जागो हरिश ! जागो ! बहुत सो लिये ! (**हरिश की होश में आने की गति**)

सत्यपुरुष : हां······! बहुत सो लिये हो ! देखो ! तुम्हारे समक्ष हूं मैं······ सत्यपुरुष ! उठो तो !

हरिश : (**बैठता हुआ**) आप ! आप कौन हैं ?

सत्यपुरुष : मैं सत्यपुरुष हूं······ ! तुम्हारा एकमेव शुभचिंतक।

हरिश : (**विस्मय से**) सत्यपुरुष ?

सत्यपुरुष : हां ! तुम्हारी तपस्या, तुम्हारी साधना से देव बहुत प्रसन्न हैं। मुझे स्पर्धा हो रही है। (**हरिश अवाक् देखता है।**) तुम्हारी अवाक् मुद्रा ···तुम्हारी मानसिकता का प्रतिबिम्ब है। तुम केवल इतना जानो कि तुम्हारी गति, तुम्हारी सत्यनिष्ठा और धर्मनिष्ठा शीघ्र ही सफल होगी। यातनाओं का अंत······तुरंत निश्चित है।

हरिश : (**तनिक आश्वस्त**) यातनाओं का अन्त······तुरंत निश्चित है ?

सत्यपुरुष : हां ! संसार तुझे सत्यवादी हरिश्चन्द्र के नाम से जानता आया है। तुम युगों-युगों तक सत्य और धर्म के पर्याय रहोगे। तुम्हारा मन्त्र शाश्वत है।

हरिश : **(सांत्वना अनुभव करता हुआ)** सत्यम् वद्, धर्मम् चर !

सत्यपुरुष : तुम्हारे इस मंत्र में इतनी शक्ति है कि एक बार ही आह्वान करके देखना······तुम्हारी पत्नी तारा और पुत्र रोहित····· साश्चर्य जीवित हो उठेंगे। **(हरिश, तारा तथा रोहित की ओर देखने लगता है)** सत्यमेव जयते ! सत्यमेव जयते। **(प्रस्थान के बाद भी 'सत्यमेव जयते' कुछ पल चारों ओर गूंजता रहता है।)**

हरिश : **(तारा तथा रोहित पर सूक्ष्म दृष्टिपात करता हुआ)** सत्यम् वद्, धर्मम् चर। सत्यम् वद्, धर्मम् चर।

(तारा तथा रोहित आंखें मलते हुए उठ खड़े होते हैं और मुस्कराने लगते हैं। साश्चर्य प्रफुल्लित हरिश बारी-बारी सम्बोधन करता है।)

रानी···!···पुत्र रोहित ! तारा······! रोहित !

(रोहित आगे बढ़कर हरिश की टांगों से चिपककर उसकी मुखमुद्रा निहारने लगता है।)

तारा : आज आप बहुत प्रसन्न हैं, स्वामी ! ऐसा लगता है···समस्त अयोध्या आपके अधीन हो आई है।

हरिश : **(रोहित को परे करके, करुण)** समस्त अयोध्या ! हां ! कभी तो वह मेरे अधीन ही थी। **(सहसा)** नहीं, नहीं तारा। अयोध्या कदापि मेरे अधीन नहीं थी। तुम्हें भ्रांति हुई है।

रोहित : आप अयोध्या नरेश तो थे, पिता जी !

हरिश : **(रोहित को उठाकर सीने से लगाता है।)** नहीं पुत्र ! न मैं नरेश था और न ही अयोध्या मेरे अधीन थी !

तारा : स्वामी······?

हरिश : सत्य यही है, तारा !

तारा : यह कैसा सत्य है आपका, स्वामी ?

हरिश : **(रोहित को गोदी से उतारकर)** अचरज ! भारी अचरज हो रहा है। हरिश की सहधर्मिनी अभी तक इतना भी नहीं जान पायी कि उसका सहधर्मी स्वयं अयोध्या के अधीन था। अयोध्यावासी उसके अधिपति थे।

(मौन)

तारा : स्वामी ?

हरिश : हां, तारा ! हरिश्चन्द्र अयोध्यावासियों के लिए था, अयोध्या के लिए था।

रोहित : जन-समुदाय तो आपही को महाराज कहकर सम्बोधित करता था। आप ही के नाम की जयघोषणाएं हुआ करती थीं।

हरिश : **(विचलित)** महाराज......? जय घोषणाएं ? **(रोहित के गाल थप-थपा कर)** तुम अभी छोटे हो, पुत्र ! तुम क्या जानो......वही महाराज शब्द और जयघोषणाएं अब विश्वामित्र महोदय के लिए हो रही होंगी। धन्य हो, विश्वामित्र !

तारा : निःसंदेह स्वामी ! किन्तु,......

हरिश : किन्तु क्या, तारा ?

तारा : विश्वामित्र के लिए कुछ भी हो रहा होगा किन्तु अयोध्यावासी तो आप ही को सत्यवादी मानते हैं।

हरिश : **(हल्की हंसी के बाद)** तुम क्यों भूल जाती हो, तारा ? विश्वामित्र महोदय का अपना सत्य है और हमारा अपना सत्य है। जो उन्होंने उचित समझा उन्होंने किया। जो हमने सत्य जाना हमने किया। हां ! और हां तारा ! धैर्य रखो। सत्य के मार्ग पर मेरे साथ चलती आओ। चलती आओ। **(मौन)** आओ, हम भगवान को पूर्ववत् धन्यवाद दें। **हरिश और तारा घुटनों के बल बैठ जाते हैं। पास ही हाथ जोड़े पुत्र रोहित खड़ा हो जाता है। तीनों एक साथ)** हे प्रभो ! तुम्हारा कोटि-कोटि धन्यवाद कि हमारा अस्तित्व इस स्थिति में तो है। हमें शक्ति दो कि सत्य के मार्ग पर निर्बाध बढ़ते जाएं। तुम्हारी कृपा की आकांक्षा है। तुम्हारा आशीर्वाद हमें प्राप्त हो। प्रणाम ! प्रभो को हमारा प्रणाम ! **(नतमस्तक)**

सत्यपुरुष : **(प्रवेश)** सत्य ही आपका प्रभु है। सदैव सदैव विजयी होता है। सत्यमेव जयते ! **(सत्यमेव जयते कहते हुए प्रस्थान)**

तारा : यह कौन, स्वामी ?

हरिश : सत्यपुरुष !

तारा : कौन सत्यपुरुष ?

हरिश : आते-जाते ढारस बंधा जाता है। देवप्रिय है **(विषाक्त का प्रवेश। हरिश, तारा तथा रोहित उसकी ओर आश्चर्य से देखते हैं।)**

विषाक्त : आप किसकी बातें कर रहे हैं ? सत्यपुरुष की ?

हरिश : आप का परिचय ?

विषाक्त : मुझे नहीं पहचाना। **(मुखौटा उतारता है।)** पहचानते भी कैसे **(तारा तथा रोहित तनिक पीछे हट जाते हैं।)** मैं आपका शुभचिन्तक हूं। मैं विषाक्त हूं।

हरिश : **(क्षुब्ध)** तुम फिर क्यों आये ?

विषाक्त : **(हंस कर)** यही चेत कराने आया हूं कि जिसे आप सत्यपुरुष कहते हैं, वह एक धोखा है, फरेब है।

तारा : **(मुंह में अंगुली दबाकर)** धोखा है ? सत्यपुरुष एक धोखा है ? फरेब है ?

विषाक्त : हां, उसने आप जैसे कइयों के जीवन के साथ खिलवाड़ किया है।

रोहित : यह क्या कह रहे हैं, पिता जी !

विषाक्त : अभी तू छोटा है, बेटे ! तू नहीं समझ सकता। **(हरिश से)** हां, तो हरिश ! मैं फिर यही कह रहा हूं कि उस छलिये सत्यपुरुष के झांसे में आने से बचें। वह परले दर्जे का ढोंगी है। **(हरिश आवेग में आने लगता है किन्तु सम्भल जाता है।)** आना है तो मेरे साथ आएं। मिल कर काम करें।

तारा : मिल कर काम ?

विषाक्त : हां ! मैं विष का व्यापारी हूं।

तारा : विष के व्यापारी ?

हरिश : तारा ! गत एक जन्म में हमें उसके आगे बिकना पड़ा था······ विश्वामित्र को दक्षिणा दे पाने के उद्देश्य से। आज की विडम्बना यह है कि विश्वामित्र हमें नहीं बता रहे कि हम क्या करें। अज्ञात कारण ही यातना है। और यह लोग हमें खरीदने आ रहे है।

विषाक्त : मैं किसी को खरीदने या बेचने नहीं आया। मैं एक साथी चाहता हूं। आप को मैं उचित पात्र समझता हूं क्योंकि आप अधिकारी हैं जीवन के। मैं विष बेचा करता हूं और अमृत हासिल किया करता हूं। मिलावट के धंधे में लाभ ही लाभ है। सब से आसान धंधा ! **(हंसता है।)**

चौरंगा : **(हंसते हुए प्रवेश। देखते ही हरिश की खीझ बढ़ती है।)** और अगर विषाक्त का धंधा पसंद न आए तो मेरे साथ आएं। मैं किसी को विष नहीं देता। मेरे धंधे में कोई मिलावट नहीं। **(हरिश की मुद्रा संतुलित होने लगती है।)** मेरा धंधा चलने-फिरने का है। करना है तो बस इतना···इधर का माल उधर और उधर का माल इधर। पांच लगाओ, दस कमाओ······दस लगाओ, बीस कमाओ।

हरिश : **(क्रोध में)** चौरंगा······?

चौरंगा : कहिये, हरिश !

हरिश : अपने भ्रष्ट प्रस्तावों से तुम मुझे क्यों बार-बार विह्वल करते हो ? तुम्हें मालूम है कि मैं सहमत नहीं हो सकता।

चौरंगा : सोच लीजिये !

हरिश : असम्भव ! मैं देशद्रोह नहीं कर सकता। कानून का उल्लंघन नहीं कर सकता।

चौरंगा : लगता है सत्यपुरुष ने अपने पंजे अच्छी तरह जमा लिये हैं।

विषाक्त : उसका प्रभाव पक्का हो चुका है।

बाणक : (**खुशी से दोनों हाथ फैला कर प्रवेश**) चौरंगा और विषाक्त पहले से यहां हैं। दोनों को बाणक का नमस्कार !

विषाक्त तथा चौरंगा : नमस्कार !

विषाक्त : हरिश को हम बहुत समझा चुके। इन्हें हमारा एक भी प्रस्ताव स्वीकार नहीं।

चौरंगा : हां ! बिल्कुल नहीं।

बाणक : हूं……! तो यों है। (**हरिश से**) देखिये हरिश ! हम आपके बैरी नहीं, सज्जन हैं। (**हरिश आंखें बन्द किये जैसे सब कुछ अनसुनी कर रहा हो। रोहित प्रस्थान करता है तथा तारा एक ओर बैठकर चिन्तित-सी सब को बारी-बारी देखती है।**)

बाणक : घबराइये नहीं, हरिश ! हमारा कोई न कोई प्रस्ताव आप मान ही लें। इसीलिए हम बार-बार आपके पास आते हैं। उज्ज्वल भविष्य का निर्माण हमारा ध्येय है।

विषाक्त तथा चौरंगा : बाणक आपको ठीक ही सलाह दे रहे हैं, हरिश !

विषाक्त : आपको चाहिए कि हम में से……।

बाणक : मेरा धंधा सीधा और सरल है। मेरे पास अन्न के तथा दूसरी चीज़ों के भण्डार हैं। आप सहमत हो जाइये। मेरे धंधे से सरल कोई धंधा नहीं है।

हरिश : सरल धंधा ! तुम्हें मेरी, मेरी तारा की, मेरे रोहित की ही चिन्ता क्यों हो रही है। देश में अनेक ताराएं और रोहित और भी तो हैं। आप कुछ न करें। केवल अपने यह दूषित धंधे त्यागने की कृपा करें। सब समस्याएं सुलझ जाएंगी। (**स्वगत**) बापू के इस देश में यह सब शोभा नहीं देता। बिल्कुल शोभा नहीं देता।

विषाक्त : आप तो भाषण देने लगे, हरिश !

चौरंगा : हमें आप जैसे भाषणदाता भी चाहिए।

बाणक : किन्तु ऐसे भाषणदाता जो हमारे जगाए प्रश्नों को बलपूर्वक प्रस्तुत कर सकें। चिनगारी यहां लगे और लपटें दूसरी जगह से उठें।

हरिश : (**बौखला कर**) जाओ, चले जाओ। मेरी मति न भ्रष्ट करो। जाओ ! चले जाओ……! (**शांत होता हुआ**) सत्यम् वद, धर्मम् चर ! सत्यम् वद, धर्मम् चर !

जीवांतक : (**अनुकरण की मुद्रा में प्रवेश**) सत्यम् वद, धर्मम् चर ! सचमुच कितना पावन मन्त्र है यह। सत्यम् वद, धर्मम् चर।

हरिश : **(शांत)** हां…! बहुत ही पावन !

जीवांतक : **(अट्टहास)** हां…हां ! बहुत ही पावन मन्त्र है ! बहुत ही… पावन ! **(व्यंग्य)** चिपके रहिये। और चिपके रहिये इसके साथ ! फिर देखिये।…आपके लिए आदर-मान, सत्कार, यश के द्वार ठांव-ठांव पर खुले रहेंगे। आपको गढ़े से उठा कर टीले पर बैठाने की व्यवस्थाएं की जाएंगी। हर स्थान पर आपकी कृपा की अपेक्षा रहेगी। समाज आपकी सौगंध तक नहीं खाएगा। **(हरिश झुंझला रहा है।)** लेकिन आपके भीतर झांकने की कोशिश कभी नहीं करेगा। दो कौर खाने को मिले अथवा नहीं ? आप मर भी जाएं तो भी किसी को कोई फर्क महसूस नहीं होगा।

विश्वास अगर न हो तो हरिश सोचें ! समझें। आप ही की तारा क्यों आपसे पूछने के लिए विवश हो जाती है—'यह कैसा सत्य है स्वामी ?…सत्य क्या है स्वामी ?'

और तो और अपने रोहित की आंखों में झांकते रहा करें। कई बार आपको लगेगा कि वह विवश होकर आपको मन-ही-मन कोस रहा है। आखिर यह विवशता क्यों उभरती है ? इस का क्या कारण है ? सोचें हरिश, सोचें !

हरिश : **(झुंझलाहट में)** बन्द करो अपने यह कुत्सित विचार। चले जाओ यहां से।

जीवांतक : **(शांत)** इतना याद रखें, हरिश ! यह संसार दूसरों को सच के लिए प्रेरित करता है। और जब कोई सच का मार्ग अपना लेता है तो उसे पानी के घूंट तक के लिए भी नहीं पूछा करता। **(झुंझलाकर हरिश दूर हट जाता है। कानों में अंगुलियां ठूंसकर घुटनों के बल बैठ जाता है।)**

जीवांतक : इतना अभिमान ? यह सब शोभा नहीं देता, हरिश ! **(तारा उठकर हरिश को बाहर ले जाना चाहती है।)** बोलें ! बोलें हरिश ! बोलें कि आपने हमारी बात मान ली। आप हमसे सहमत हो गये। **(घोर उलझन में खीझा हुआ हरिश्चन्द्र खड़ा हो जाता है।—इधर से उधर घूमता हुआ कभी हाथ मलता है और कभी हाथों से कानों को ढांप लेता है।)** यह रहे विषाक्त। यह रहे चौरंगा। यह रहे बाणक। और यह रहा मैं: जीवांतक जो कभी किसी को सांस पहचानने तक का अवसर नहीं देता। कहिये…किसका साथ देंगे आप ? यह बिल्कुल न भूलें कि सत्यपुरुष एक ढोंग का नाम है। छल का नाम है। वहम का नाम है। **(हरिश का शरीर थर-थर कांपने लगता है। एक ठूंठ के सहारे खड़ा होकर सिर थाम लेता है। लाचार-सी तारा**

मटके में जल टटोलती है। निराश होकर पास ही से पिलाने के लिए जल भर लाती है जो कतरा-कतरा बह जाता है। करुण-सी उसे निहारती है।)

तारा : (सहसा आगे आकर) आप इन्हें विचलित क्यों कर रहे हैं ? चले जाइये यहां से। आप जाते क्यों नहीं ? चले जाइये यहां से।

विषाक्त : क्षमा कीजिये।

बाणक : क्षमा कीजिये, हमने आपका जी दुखाया है।

हरिश्चन्द्र : (ऊंचे स्वर में) सुना नहीं तारा क्या कह रही है। जाइये, चले जाइये यहां से। (विह्वल) इतनी बार कह चुका हूं, समझा चुका हूं कि मुझे बहकाने के सब यत्न व्यर्थ हैं। (वि० बा० चौ० जी० आपस में फुसफुसाने लगते हैं।) मुझे एकांत चाहिए। मुझे एकांत दे दो।

वि० बा०
चौ० जी० : हम जा रहे हैं।

चौरंगा : (जाते हुए) विवेक से काम लें, हरिश ! (प्रस्थान)

विषाक्त : अवसर मिलने पर हम आपका निर्णय जानने के लिए फिर आएंगे। (प्रस्थान)

जीवांतक : सत्यपुरुष को भूल जाएं, हरिश ! वह ढोंगी है। छल है। वहम है।··· शुभ विदा। (प्रस्थान)

(विह्वलता से शांति की ओर बढ़ता हुआ हरिश चारों ओर निहारता है। फिर ठूंठ के सहारे बैठकर अम्बर में आंखें गाढ़ देता है। पास ही खड़ी तारा ठूंठ के छिलके तोड़-तोड़कर फेंकती है। धीरे-धीरे हरिश को नींद आ जाती है। तारा उठकर खिन्न-सी उसकी ओर देखती है और प्रस्थान करती है। मौन वातावरण में संगीत की लहरें उभरकर फैल जाती हैं। एक आधुनिका प्रवेश कर हरिश के पास खड़ी हो विभिन्न मुद्राओं में हंसती-खिलखिलाती है। बीच-बीच में उसे गुदगुदाने के असफल यत्न करती है। फिर किसी गीत का आलाप करती हुई हरिश के सिर में अंगुलियां फेरती है। जैसे ही हरिश की नींद टूटने लगती है वह आलाप करती हुई नेपथ्य में चली जाती है।)

हरिश : (जाग कर) अहा ! हा ! कितना मधुर, कितना रसीला आलाप ! तारा को आज एक युग के पश्चात् ऐसा आलाप करते सुन रहा हूं। समस्त टूटन जैसे समाप्त हो गई। आज, सहसा कहां से तारा को सूझ गया यह ? (सुनकर) अहा ! हा !···(आवाजें) तारा ! तारा ! (आलाप जारी रहता है। हरिश उठकर पीछे जाता है। तभी हंसी के स्वर

और फिर आलाप। नेपथ्य से आधुनिका का मंच पर प्रवेश। जैसे ही हरिश प्रवेश करता है वह खिलखिला कर हंसती है। वह उसे देख कर स्तब्ध रह जाता है। कुछ पल पश्चात्) तुम कौन हो? **(आधुनिका हंसती है।)** तुम्हारे यहां आने का प्रयोजन? और मुझे इस प्रकार···

आधुनिका : मेरी ज़रूरत नहीं क्या?

हरिश : छी-छी-छी···। कैसी बातें करती हो?

आधुनिका : बातें नहीं, सच कहती हूं।

हरिश : बन्द करो यह सब? कौन हो तुम?

आधुनिका : वही जिसने विश्वामित्र का तप भंग किया था।

हरिश : मेनका?

आधुनिका : हां! मैं हर युग में विश्वामित्र का तप भंग करती आई हूं। जितने जन्म विश्वामित्र के हुए, उतने ही मेरे और आपके। बोलो! है मेरी ज़रूरत।

हरिश : तुम्हें किसने भेजा यहां?

आधुनिका : **(हंसती हुई हरिश के गिर्द चक्कर काटती है। स्पर्श करने लगती है। हरिश पीछे हट जाता है।)** हाय रे दैया! हाथ भी नहीं लगाने देते। हाथ लगाने से क्या होता है?

हरिश : तुम्हें यहां से चले जाना चाहिए।

आधुनिका : न जाऊं तो?

हरिश : मैं तुम्हें निकाल दूंगा।

आधुनिका : **(हंसकर)** आप? हाथ छू जाने से जो घबरा जाएं वह हरिश! वह हरिश मुझे निकाल देंगे। ठीक है। मुझे स्वीकार है। निकालिये। **(हंसती हुई हरिश की ओर बढ़ती है। हरिश पीछें हट जाता है।)** बस! हार गये न···?

हरिश : तुम चाहती क्या हो?

आधुनिका : हाय री दैया! मैं भला क्या चाहूं? **(श्वास)** आप मेरी कलाई पर हाथ फेरें—देखें कितनी कोमल है। एक बार मेरी आंखों में आंखें डाल कर देखें—कितनी गहरी हैं। एक बार मुझे मेरा सिर अपने कंधों पर सहला लेने दें···और बस! अगर हो सके तो मुझे अपना सिर गुद-गुदाने दीजिए। उसके बाद मैं अपने आप चली जाऊंगी।

हरिश : मेनका···?

अधुनिका : **(हंसती है।)**

तारा : **(नेपथ्य में)** रोहित! रोहित!

रोहित : (**नेपथ्य में**) आया, मां !

तारा : (**नेपथ्य में**) जल्दी आओ, पुत्र !

आधुनिका : अच्छा, अब तो मेरा जाने का समय हुआ चाहता है। क्योंकि मैं आप के और तारा जी के मध्य कोई भ्रांति खड़ी नहीं करूंगी।

हरिश : जाओ ! जल्दी जाओ ।

आधुनिका : तारा जी शायद इधर ही आ रही हैं। (**प्रस्थान**)

हरिश : शुक्र है।

(कुछ ही समय पश्चात् जैसे ही हरिश चैन की सांस लेना चाहता है---बहुत दूर कहीं से पास आते हुए वृद्ध पुरुष की व्यंग्यात्मक हंसी के स्वर सुनाई देते हैं। दौड़ता हुआ रोहित आकर हरिश का दामन थाम कर बाएं हाथ से बाहर की ओर संकेत करता हुआ उसके मुंह की ओर मूक किन्तु त्रस्त भाव से देखता है। इसी बीच तारा का घबराई मुद्रा में प्रवेश।)

तारा : यह कौन है स्वामी ? कैसी हंसी है यह ? (**वृद्ध पुरुष की हंसी के स्वर मंच के आस-पास सुनाई देने लगते हैं। हरिश खड़ा हो जाता है। रोहित अपनी मां से जा चिपकता है।)**

तारा : यह हंसी कैसी है स्वामी ?

हरिश : स्वर से तो विश्वामित्र जान पड़ते हैं ?

तारा : विश्वामित्र ?

विश्वामित्र : (**नेपथ्य से**) ठीक पहचाना, हरिश ! मैं जन्म-जन्म से तुम्हारे साथ जुड़ा हुआ विश्वामित्र ही हूं। मुझे तुम पर दया भी आती है। हां ! इस समय मैं केवल इतना भर चेत कराने आया हूं···इस जन्म में विजय तुम्हारी न हो पाएगी। इसकी मुझे प्रसन्नता हो या न हो किन्तु खेद अवश्य है। तुम शायद मेरा आशय नहीं समझ पाए। (**विराम**) यह युग तुम्हारे सत्य का नहीं है।

हरिश : तो फिर ? फिर यह व्यंग्यात्मक हंसी किस लिए ? आप सामने क्यों नहीं आते ?

विश्वामित्र : (**व्यंग्यात्मक हंसी के साथ-साथ प्रस्थान**) तो फिर···? तो फिर यह व्यंग्यात्मक हंसी किस लिए ?

हरिश : (**जिज्ञासात्मक सम्बोधन के साथ प्रस्थान**) विश्वामित्र महोदय ! विश्वामित्र महोदय ! (**पीछे-पीछे रोहित तथा तारा का प्रस्थान।—अंतराल सूचक अंधकार के बाद—पहले से भी अधिक क्षीण दशा में हरिश, तारा तथा रोहित का प्रवेश। हताश-सा हरिश विशाल पत्थर के सहारे गर्दन झुकाए बैठ जाता है। तारा भले ही टूटने की अवस्था**

में है तथापि सामने बैठकर उसका चेहरा देखती हुई उसकी टांगें दबाने लगती है। रोहित एक ओर खड़ा रहता है।)

रोहित : (कण्ठावरुद्ध-सा) बहुत भूख लगी है, पिता जी ! (मां का कंधा पकड़ कर) बहुत भूख लगी है, मां।

तारा : (भारी स्वर) धीरज धरो, पुत्र !

हरिश : हां, पुत्र ! धीरज धरो। तुम्हारी माता ठीक ही कह रही है।

तारा : (निराश) तीन दिन बीत गये कुछ भी खाए ! (रुष्ट-सी) तीन दिन बीत गये धीरज करते-करते। यों कब तक ··

हरिश : रुष्ट न हो, तारा ! तुम रुष्ट हो जाओगी तो अपना क्या होगा ? (एक टांग सीधी लिटाए रखकर दूसरी इकट्ठी कर लेता है।)

रोहित : बहुत भूख लगी है, पिता जी। (हरिश के पास बैठ जाता है। रुआंसी हो उठी तारा प्रस्थान करती है। हरिश रोहित के सिर पर हाथ फेरता और उसके गाल थपथपाकर मुस्काने का यत्न करता है ताकि वह भी मुस्काए। कुछ ही समय पश्चात् तारा आंचल में बटोरकर कुछ लाती है और रोहित के आगे रखती है।)

तारा : (झुकी-झुकी दुख द्रवित-सी) खा ले, खा ले। यह भी दुर्लभ है। (रोहित की पीठ थपथपाती है। वह खाने लगता है। खायी नहीं जा रही है इसलिए यत्न से कौर-कौर कर खा रहा है।

हरिश : अब थपकियों के अतिरिक्त हमारे पास है ही क्या ?

तारा : स्वामी ? जब आप जानते हैं कि हमारी यह दशा क्यों हुई तो उपचार क्यों नहीं करते ?

हरिश : (श्वास) हूं···ऽ···?

तारा : हम आपके सहगामी कितनी बार जीते ? कितनी बार हारे ? कितनी बार मरे ? कितनी बार जिये ? जाने क्या-क्या कितनी-कितनी बार भोग चुके ? जन्म-जन्मान्तर टूटते रहे, जुड़ते रहे, बिकते रहे ! क्या यही नियति है हमारी ?

हरिश : नियति ! हां, नियति !

तारा : इस जन्म भी हमारी यह दशा ? भूख, प्यास, टूटन और चिथड़ापन ! इस प्रकार कब तक चलना होगा स्वामी ? कब तक ?

हरिश : जब तक शिराओं में रक्त-संचार होता है, जब तक श्वास में गति है, जब तक सूर्य में गरिमा है, जब तक शब्दों में स्वर हैं और अर्थ हैं।

तारा : आप यह क्यों भूल रहे हैं स्वामी कि आज शब्दों की धारा मुड़ रही है ? उनके अर्थ बदल रहे हैं ?

हरिश : (धक-सा) यह, यह तुम कैसी बातें कह रही हो ? यह असम्भव है,

असम्भव !

तारा : क्या सम्भव है और क्या असम्भव ? अब तो···अब तो मुझे···मुझे यह चिन्ता भी सताने लगी है कि कहीं आप का संग···बीच में ही न छोड़ दूं।

हरिश : **(एक दम खड़ा हो जाता है)** तारा !···ऐसे वचन न कहो, तारा ! तुम्हीं तो मेरी शक्ति हो। मेरे सत्य का सम्बल तुम्हीं तो हो। **(रोटी खाकर रोहित खपरैल के अन्दर चला जाता है। हरिश उसको जाते देखने के बाद)** तारा !

तारा : हूं !

हरिश : रोहित के लिए रोटी कहां से लायी थीं तुम ?

तारा : कुछ सूखी भूसी बची पड़ी थी। उसी से बनाई है ?

हरिश : **(धक-सा)** और उसने खा डाली ! मेरे पुत्र ने खा ली। **(दीर्घ श्वास)** पेट की आग बुझाने के लिए···जीवन की रक्षा के लिए खानी ही पड़ी।

तारा : स्वामी !

हरिश : हूं···!

तारा : यही तो मेरे दुख की चरम सीमा है।

हरिश : चरम सीमा ! **(तारा की ओर देखता हुआ)** यह तुम्हारे दुख की चरम सीमा है, तारा ! चरम सीमा तो तब होगी जब······

तारा : **(दुख से प्रस्थान करते रुककर)** जब आपकी धारणाएं, आपके विश्वास, आपकी आस्थाएं, आपकी परिभाषाएं हमारा गला घोंट चुकी होंगी। **(खपरैल के भीतर प्रस्थान)**

हरिश : **(पुकारता है।)** तारा! तारा ! तारा! **(स्वयं भी जाने लगता है।)** सुनो तो तारा ! **(रुककर पत्थर पर बैठ जाता है।)** दुख की चरम सीमा तो एक शुभ लक्षण है तारा ! अब तो दुख का पतन आरम्भ होगा और एक दिन तुम सुखी हो जाओगी ! **(कुछ ही पल पश्चात् मेघ छा जाते हैं। गर्जना के साथ-साथ बिजली चमकने लगती है। हरिश चिन्तित हो उठते हैं। खपरैल के भीतर से आकर तारा चिन्तित बातचीत का अभिनय करके इधर-उधर दौड़ती है और भीतर चली जाती है। रोहित खपरैल क बाहर आकर मेघों का दृश्य देखने में लीन है। हरिश आगे बढ़कर छत की घास-फूस ठीक करने लगते हैं। तारा भी बाहर आकर उनका हाथ बंटाने लगती है।)**

तारा : घनघोर घटाएं चोरों की भांति न जाने कहां से आ गईं ?

हरिश : चोरों की भांति आने-छाने वाली घटाएं कम ही बरसा करती हैं, तारा।

तारा : बरस गईं तो बैठने को स्थान नहीं मिलेगा। बाहर जितना जल-थल

होगा उससे कई गुणा भीतर खपरैल में होगा।

हरिश : **(सांत्वना देता हुआ हंसकर)** तुम भी कैसी बातें करती हो, तारा! उस भांति के बादल कई बार आए और कभी बरस कर और कभी बिन बरसे ही चले थे। अब हम इन गर्जनाओं को क्या जानें! **(तेज़ हवा चलना शुरू हो जाती है।)**

तारा : प्रकृति का यह कोप? वायु भी अपना बल दिखाने लगे।

हरिश : यह कृपा ही समझो, तारा। चोर मेघों की असफलता स्पष्ट हो गई। **(पुकारकर)** रोहित!

रोहित : जी, पिताजी!

हरिश : चलकर भीतर बैठो। ज्वर हो जाएगा। **(रोहित हटकर खपरैल के द्वार पर खड़ा हो दृश्य देखने लगता है। कुछ ही पल पश्चात् तारा बड़बड़ाती हुई आती है।)**

तारा : जाने कौन से पाप का फल भोग रहे हैं हम? खपरैल का सुख भी नहीं मिल पाता। **(रोहित को अपने साथ भीतर ले जाती हुई)** हे प्रभो! दया करो हम पर। **(भीतर से सोचती हुई फिर बाहर आ जाती है और एक ठूंठ के पास खड़ी हो जाती है।)**।

(कुछ ही देर में सभी कुछ लगभग ठीक हो जाता है। धीमी हवा चल रही है। हल्की-हल्की चमक के साथ कभी-कभी मेघ की गर्जना सुनाई दे जाती है। ब्रीफ-केस उठाए हुए जीवांतक का प्रवेश।)

जीवांतक : हरिश को जीवांतक का नमस्कार!

हरिश : **(सहसा)** नमस्कार! **(दुविधा में)** आप?

जीवांतक : हां, मैं आपका याचक, जीवांतक! आपके लिए एक नयी व्यवस्था लेकर आया हूं। **(तारा विचलित होने लगती है।)**

हरिश : मैंने कह दिया है कि···

जीवांतक : यह नयी व्यवस्था आपके जीवन में बहार ले आएगी। **(ब्रीफ-केस खोलने लगता है कि रुक जाता है।)** आज्ञा हो तो दिखाऊं?

हरिश : मैं किसी नयी व्यवस्था को वहन नहीं कर सकता। आपकी चेष्टाएं व्यर्थ हैं। भला इसी में है कि आप यहां से चले जाएं।

जीवांतक : आप युग से बहुत ज्यादा पिछड़ चुके हैं, हरिश! **(ब्रीफ-केस खोलकर दिखाता है। जगमगाती वस्तुओं की किरणें इधर-उधर बिखरती हैं।)** ये सब आपका अपना हो सकता है, हरिश! हमारे किसी भी प्रस्ताव को स्वीकार कर लें।

सत्यपुरुष : **(नेपथ्य से)** सत्यमेव जयते! सत्यमेव जयते! सत्यमेव जयते! **(हरिश मुस्काता है। यह स्वर केवल उसने सुना है।)**

जीवांतक : समय आपका दास बन जाएगा, हरिश ! आपका बाकी जीवन सुख की हर सुविधा के साथ बीतेगा। **(ब्रीफ-केस एक ओर रखता है।)**

(आधुनिका का एक पैकट उठाए मुस्कराते हुए प्रवेश)

हरिश : मेनका...?

आधुनिका : हां ! मेरा आना अच्छा नहीं लगा क्या ? **(अवाक् तारा कभी एक को तो कभी दूसरे को देखती है। कुछ कर गुजरना चाहती है किन्तु बेबस-सी है।)**

हरिश : तुम यहां क्यों आईं ?

आधुनिका : **(हंसती हुई)** नाराज़ क्यों होने लगे आप ? **(पैकट आगे बढ़ाती है।)**

हरिश : यह क्या है ?

आधुनिका : आपकी ताराजी और पुत्र रोहित के लिए कुछ भेंट लेकर आई हूं। कहां हैं वे ?

हरिश : स्पष्ट क्यों नहीं कहतीं कि जीवांतक की भांति तुम भी लोभ-लालसा का जाल बिछाने आई हो।

आधुनिका : **(हंसती है)** जाल बिछाने आई हूं ?

हरिश : लेकिन यह मत भूलो कि हरिश इन मायाजालों में उलझने वाला नहीं।

आधुनिका : मुझे तो हमारे मालिक महामहिम सर्वराज ने यहां भेजा है। वे खुद भी आपका निर्णय जानने के लिए यहां आ रहे हैं।

(सुनते ही हरिश एक घुटनभरी खीझ महसूस करने लगता है। आधुनिका पैकट को एक ओर ब्रीफ-केस के पास रख देती है।)

जीवांतक : महामहिम सर्वराज के आने तक आप सोच सकते हैं, हरिश ! आपको सहमत होना ही पड़ेगा। **(हरिश की उपरोक्त गति तीव्र हो जाती है। कुछ पल पश्चात्)** लीजिए। वह आ गए हमारे मालिक महामहिम सर्वराज। इन्हीं के आदेशों से हमारी कार्य-प्रणाली काम करती है। **(सर्वराज का प्रवेश)**

जीवांतक : महामहिम सर्वराज महोदय को जीवांतक का प्रणाम !

सर्वराज : प्रणाम !

आधुनिका : आधुनिका का भी प्रणाम ! **(सर्वराज के पास जा खड़ी होती है। सर्वराज और वह एक-दूसरे को देखकर मुस्कराते हैं।)**

सर्वराज : **(हल्की हंसी के साथ)** यह हम क्या देख रहे हैं, जीवांतक ?

जीवांतक : यह हमारे आगमन की प्रतिक्रिया है, महामहिम ! **(हरिश सम्भलने का यत्न करता है।)**

सर्वराज : **(हरिश से)** क्यों हरिश ! इस जन्म भी राज-हठ आपके साथ है ?

हरिश : (सम्भलकर) आपका परिचय ?

(सर्वराज हंसता है)

जीवांतक : (आगे बढ़कर) यह हैं—जैसा कि हम पहले बता चुके हैं—हम सब के मालिक महामहिम सर्वराज ! इन्हीं के आदेशों से हमारी कार्य-प्रणाली काम करती है।

आधुनिका : यह चाहें तो शांति की लहरें दौड़ा दें। यह चाहें तो उथल-पुथल मचा दें।

जीवांतक : इनके साथ समझौता करके आपका जन्म सफल हो जाएगा। जन्म-जन्म के अभिशाप धुल जाएंगे।

सर्वराज : (साभिमान) बस, बस ! इतनी अधिक प्रशंसा न करो कि एक सत्यवादी को शर्मिन्दा होना पड़े। यह हमारे और हम इनके मित्र हैं। (हरिश से) क्यों हरिश, समझौते के लिए तैयार हैं आप ?

हरिश : कैसा समझौता, सर्वराज ?

जीवांतक : आदर से बात करें, हरिश ! सर्वराज नहीं, महामहिम सर्वराज कहें।

सर्वराज : (टोकता है।) इन्हें कहने दो जीवांतक ! जैसी हमारे मित्र की इच्छा हो, कहने दो। तुमने समझौते के बारे में इन्हें कुछ नहीं बताया क्या ?

जीवांतक : बताया है, महामहिम ! बन्धुवर बाणक, चौरंगा और विषाक्त सभी ने इनसे समझौते के लिए कहा है।

सर्वराज : हूं···! तो फिर क्या सोचा है आपने, हरिश ?

हरिश : मैं अपना निर्णय दे चुका हूं।

सर्वराज : जरा हम भी सुनें ! क्या निर्णय दिया है ?

हरिश : मैं आपके किसी भी प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता।

सर्वराज : मैं यह क्या सुन रहा हूं ?

हरिश : सत्य ! सत्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

सर्वराज : निर्णय पर फिर से विचार करने के लिए कहूं तो ?

हरिश : व्यर्थ होगा।

सर्वराज : यदि मैं बल देकर कहूं कि आपको निर्णय बदलना होगा तो ?

हरिश : असम्भव !

सर्वराज : तो आप नहीं मानेंगे आखिर ? अपना निर्णय नहीं बदलेंगे ?

हरिश : सत्य कभी नहीं बदला करता। सत्य का अस्तित्व सदैव एक रूप रहता है, अटल रहता है।

सर्वराज : (क्रोध से) हरिश ! (रोहित झोंपड़ी से बाहर आकर सहमा-सा तारा के पास खड़ा हो जाता है।)

हरिश : सर्वराज ! सत्य के लिए सर्वस्व का त्याग करने वाला हरिश किसी

अस्थायी प्रलोभन के लिए पथ-भ्रष्ट नहीं हो सकता।

सर्वराज : **(क्रोध से)** प्रलोभन स्थायी हो अथवा अस्थायी···मैं इस झमेले में नहीं पड़ना चाहता। आपका सत्य एक दिन चूर-चूर होकर रहेगा और तब आपके लिए डूबने के सिवा कोई चारा न रहेगा।

हरिश : **(हंसकर)** डूबने के सिवा कोई चारा न रहेगा !···पहले सत्य चूर हो, तब न। **(आवेग में)** सर्वराज ! यह न भूलो कि सत्य एक ऐसा चुम्बक है जिसका खण्डन असम्भव है। खण्डन कर भी दिया जाए तो प्रत्येक खण्ड अपने में सम्पूर्ण चुम्बक रहता है।

सर्वराज : **(सहानुभूति का ढोंग)** बुद्धि से काम लें हरिश ! हठ न करें। यों आपकी दशा और भी क्षीण-क्षाम होकर शून्य में समा जाएगी।

हरिश : क्षीण-क्षाम ! शून्य ! **(व्यंग्यात्मक हंसी के साथ)** ये शब्द कहां से जाने हैं आपने ? **(आवेग में)** सर्वराज ! हरिश की दशा न कभी क्षीण-क्षाम हुई है और न कभी हो सकेगी। 'सत्य' हरिश की स्थायी पूंजी है। सत्य क्षीण-क्षाम होगा तो ही हरिश भी होगा। मेरे पास व्यर्थ गंवाने के लिए समय नहीं है। **(तेज़ कदमों से प्रस्थान करता हुआ)** आओ, बेटा रोहित ! तारा, तुम भी आओ। इन्हें बैठने दो यहां। **(रोहित के पीछे तारा भी जाने लगती है।)**

सर्वराज : **(तारा से)** ज़रा सुनिये तो ! कृपया इतनी-सी बात सुन लें मेरी। फिर चली जाएं। **(तारा अनमनी-सी रुकती, बढ़ती है)**।

सर्वराज : कृपा होगी। सिर्फ एक बात कहना चाहता हूं।

तारा : **(अनमनी-सी रुककर)** मेरे स्वामी बहुत हठी हैं। उनका सत्य महान है। संकल्प दृढ़ है उनका।

सर्वराज : **(संकेत से जीवांतक को बाहर जाने के लिए कहता है। जीवांतक के पीछे आधुनिका भी चली जाती है।)** मैं हैरान हूं।···आपको दुर्लभ मानव जन्म मिला है जो चौरासी लाख जन्मों के बाद मिलता है। मानव ही एक ऐसा प्राणी है जो हर तरह की सूझबूझ का मालिक है। अपना भला-बुरा सोच सकता है। **(तारा जाने लगती है)** कम-से-कम रोहित के लिए रुक जाएं। मेरी बात सुनें। **(तारा रुकती है।)** मुझे खेद है कि जब आपके पास हर तरह की सामर्थ्य है तो आप यों क्यों जीवन बिता रही हैं। आपके अन्दर एक मां का दिल धड़क रहा है। ममता क्या यही कहती है जो आप कर रही हैं ? मां क्या इतनी कठोर हुआ करती हैं ? ममता क्या यही सिखाती है जो आप कर रही हैं—बेटा भूख के मारे बिलखता रहे और कुछ भी न किया जाए ? कौन आपको मां कहेगा ? यह बिलकुल न भूलें—एक तरफ आप हरिश जी की पत्नी

हैं तो दूसरी तरफ एक मां भी हैं। आपको दोहरी भूमिका निभानी है। जागिये! आपको जागना चाहिए! रोहित आपका अनमोल रत्न है। उसी के लिए कुछ करें। देखा नहीं था आपने? वह ठीक से चल नहीं पा रहा था।

तारा : बस, बस! और कुछ न कहें! **(अंतर्द्वन्द्व की मुद्राएं)** किन्तु मैं कर ही क्या सकती हूं? मुझे क्या करना चाहिए?

सर्वराज : **(व्यंग्य)** वही जो आज तक करती आई हैं। अपने पति महोदय का कहा मानें। भूख और प्यास के मारे बिलखते हुए रोहित को देख-देखकर 'सत्य' के गुण गाएं।

तारा : नहीं-नहीं! मुझे कुछ करना चाहिए! आप अवश्य मुझे सुझाएंगे कि मैं क्या करूं! हां! आप मुझे अविलम्ब कोई उपाय सुझाएंगे! **(उत्सुक जिज्ञासु मुद्रा)**।

सर्वराज : **(तारा को पूर्णतया प्रभावित देखकर)** सिर्फ अपने पति महोदय को समझाएं। एक बार परख कर लें···उनका रास्ता गलत है या जो हम कहते हैं···यह गलत है।

तारा : **(अनमनी-सी)** आपका कहना मानकर देखूं?

सर्वराज : हां, एक बार! सिर्फ एक बार। अपने लिए नहीं तो रोहित के लिए ही सही।

तारा : **(चिन्तन)** रोहित के लिए? पर उन्हें समझाऊंगी कैसे? स्वामी को कैसे समझाऊंगी? मेरी कुछ भी समझ में नहीं आ रहा।

सर्वराज : मेरे विचार में आप सब समझ गई हैं। **(अवाक्-सी तारा सर्वराज की ओर देखती हुई पाषाणी-सी लगती है।)**सुना है नारी से बढ़कर चतुर कोई नहीं हो सकता।···अब देखना यह है कि राज-हठ जीतेगा या नारी-हठ। हम तो नारी-हठ की जीत ही सुनते, पढ़ते और देखते आए हैं। **(क्षणिक विराम)** शायद आप मेरा मतलब समझ गई हैं! हूं?

तारा : किन्तु! किन्तु···?

सर्वराज : आपके अन्दर मां का दिल धड़क रहा है। आप ममता का सागर हैं। मेरी शुभकामनाएं आपके साथ हैं। **(क्षणिक विराम)** अच्छा···अब विदा का समय आ गया। विदा! **(प्रस्थान)**।

(अंतर्द्वन्द्व झेलती तारा की विभिन्न भावभंगिमाएं)

तारा : **(सम्बोधन)** सर्वराज! आपका प्रस्ताव अत्यंत कठिन है। मैं किस प्रकार पालन कर सकूंगी उसका? आपने मुझे अग्निपरीक्षा में धकेल दिया है। कौन जाने क्या कुछ बीतने जा रहा है? **(विराम)** स्वामी, कहां हैं आप? सुना नहीं आपने? सर्वराज क्या कह रहा था? नहीं-

नहीं ! सर्वराज कह रहे थे ? नहीं-नहीं ! महामहिम सर्वराज क्या कह रहे थे ! महामहिम सर्वराज !

सत्यपुरुष : **(नेपथ्य से गूंजता हुआ स्वर)** सत्यमेव जयते ! सत्यमेव जयते ! सत्यमेव जयते !

सर्वराज : **(नेपथ्य से गूंजते हुए हवा में)** ममता क्या यही करती है जो आप कर रही हैं—बेटा भूख और प्यास के मारे बिलखता रहे।

तारा : नहीं, स्वामी नहीं ! मेरी ममता यह सब सहन करने में असमर्थ है। पूर्णतया असमर्थ ! मैं विवश हूं ! **(एहसास)** पर, पर सत्य का मार्ग भी तो सर्वोपरि है। मैं घोर पाप करूंगी जो अपने पति को पथ-विमुख होने के लिए बाध्य करूंगी। उनका जन्म-जन्मों से अर्जित चिरन्तन सत्य क्षणभंगुर प्रलोभन के कारण नष्ट कर दूंगी क्या ?···स्वामी स्वाभिमान से कहा करते हैं···।

हरिश : **(नेपथ्य से 'ईको' में)** सत्यम् वद, धर्मम् चर ! सत्यम् वद, धर्मम् चर ! सत्यम् वद, धर्मम् चर !

तारा : **(पूर्ववत्)** तब क्या हमारी दशा वास्तव में क्षीण-क्षाम हो जाएगी ? हां ! जब स्वामी का स्वाभिमान चूर-चूर हो जाएगा तो मेरा दर्प निरर्थक सिद्ध होगा। विश्वासघातिन के नाम से लांछित रहूंगी। **(संकल्प)** नहीं ! मैं ऐसा कभी न होने दूंगी। वर्तमान में ही मेरा पुण्य है, प्रताप है।

सर्वराज : **(नेपथ्य से 'ईको' में)** जागिये ! आपको जागना चाहिए ! रोहित आपका अनमोल रत्न है। उसीके लिए कुछ करें। देखा नहीं था आपने, वह ठीक से चल भी नहीं पा रहा था।

तारा : **(व्याकुलता एवं उलझन में)** रोहित ! मेरा पुत्र रोहित ! हां, हमारा अनमोल रत्न ! हमारा वंशज ! हमारा एक मात्र कुल-सूत्र रोहित ! महामहिम सर्वराज ठीक ही कहते थे। तन ढांपने को वस्त्र नहीं, भोजन का अभाव, भोगने को आतंक, घुटन-ही-घुटन·· अब मृत्यु के अतिरिक्त, भोगने-सहने को रहा ही क्या है ? परम यथार्थ यही सुझाता है···जीना है तो कुछ-न-कुछ करना होगा। मैं स्वामी को बाध्य करूंगी ! उन्हें विवश होना ही पड़ेगा। मैं उनकी अर्धांगिनी हूं। मैंने आज तक उनका कहा माना है। आज उन्हें भी मेरा कहा स्वीकार करना होगा। **(बाहर की ओर आवाजें लगाती है।)** स्वामी ! स्वामी ! स्वामी !

सत्यपुरुष : **(नेपथ्य से)** सत्यमेव जयते ! सावधान ! सावधान तारा ! सावधान !

तारा : तुम ? त···त···तुम ?

सत्यपुरुष : सावधान तारा ! (**प्रवेश**) धीरज से काम लो।

तारा : तुम ? सत्यपुरुष ?

सत्यपुरुष : हां ! मैं ! तुम्हारे स्वामी का परम मित्र !

तारा : अब तुम्हारा उपदेश निरर्थक है, सत्यपुरुष !

सत्यपुरुष : आज तुम दुष्ट सर्वराज के बहकावे में आ चुकी हो। उस दुर्जन ने तुम्हारी भावुकता का लाभ उठाया है। धीरज रखो। विजय तुम्हारे पति हरिश्चन्द्र की ही होगी। सर्वराज देशद्रोही है, राष्ट्रद्रोही है, हिंसक है।

तारा : माना कि तुम सत्य कह रहे हो; किन्तु हम जो हैं हमारे साथ कौन-सा न्याय किया है तुमने ? बोलो !

सत्यपुरुष : उतावली न हो जाओ, तारा ! अपने पति की तपस्या भंग मत करो। सत्य को हाथ से न जाने दो। सत्यमेव जयते !

तारा : सत्यमेव जयते, सत्यमेव जयते ! लौटा लो अपना यह मन्त्र ? लौट जाओ यहां से ! बहुत देख लिया और बहुत सह लिया। जान-बूझकर विष कौन पियेगा ? आंखों देखकर ज्वाला में कौन कूदेगा ?

सत्यपुरुष : (**सौम्य हंसी के साथ**) तारा ! सत्य यदि विष है तो ऐसा···जिसे पी कर व्यक्ति नीलकंठ बन जाता है। सत्य यदि ज्वाला है तो ऐसी··· जिसमें तपकर सोना शुद्ध हो जाता है, खरा बन जाता है। सत्यम् शिवम् सुन्दरम् !

तारा : हमें न तो नीलकण्ठ बनना है कि सत्यम् शिवम् सुन्दरम् कहलाने के भ्रम में गौरीशंकर की चोटी पर आवास ग्रहण करना पड़े और न ही खरा सोना बनने की इच्छा है जिससे सदा प्राणों पर बनी रहे। (**आरोप**) तुम एक छल हो ! तुम एक ढोंग हो ! तुम्हारे वचनों में अब कोई प्रभाव नहीं रहा। (**प्रस्थान करने लगती है।**) मैंने जो संकल्प लिया है उसे चरम लक्ष्य तक पहुंचाकर ही दम लूंगी। (**प्रस्थान**)

(**प्रकाश मद्धिम हो जाता है।**)

सत्यपुरुष : विनाशकाले विपरीत बुद्धि !

विश्वामित्र : (**कहकहे लगाते हुए प्रवेश**) किसे चेता रहे हो, सत्यपुरुष ?

सत्यपुरुष : कौन ?

विश्वामित्र : हां, मैं ! देख रहा हूं आप निराश हुए जा रहे हैं।

सत्यपुरुष : आपको भ्रांति हो रही है, महामुनि !

विश्वामित्र : यह संध्या-सा प्रकाश आपकी मानसिक अवस्था का प्रमाण है।

सत्यपुरुष : प्रकाश की यह गति तो काल-सूचक है। महामुनि विश्वामित्र !

विश्वामित्र : काल-सूचक। (**कहकहे लगाते हुए प्रस्थान···**) काल-सूचक। काल-

सूचक ।

सत्यपुरुष : अंततः विजय मेरी होगी। विजय मेरी ही होगी।(**सौम्य हंसी के साथ प्रस्थान**)

(मंच पर पूर्ण अंधकार फैल जाता है। कुछ क्षण पश्चात् कालांतर-सूचक उज्ज्वल प्रकाश फैलता है। कटु अनुभवों की प्रतीक लम्बी सफेद दाढ़ी बढ़ाए हरिश जिसके तन पर मैली-कुचैली धोती है—घोर दुःखी और द्रवित मुद्रा में प्रवेश करता है। शोक-संतप्त धुन उभरी हुई है। एक ठूंठ के सहारे खड़ा होकर माथा ठोंकता है। दीर्घ-श्वास के साथ चारों ओर देखता है। फिर एक कोयला उठाकर सामने झोंपड़ी की दीवार पर 'तारा' तथा 'रोहित' के नाम लिखकर कुछ पल स्थिर मुद्रा में उनकी ओर देखता रहता है।)

हरिश : (**शोकाकुल मुद्रा में सम्बोधन**) तारा···! रोहित···! तारा! रोहित! तारा-रोहित! (**उसी कोयले से दोनों नामों पर × चिह्न लगाकर काट देता है और गर्दन लटकाए एक ओर बैठ जाता है।**)

सत्यपुरुष : (**कुछ समय बाद नेपथ्य में**) सत्यमेव जयते! सत्यमेव जयते! (**प्रवेश**) सत्यमेव जयते! (**कुछ पल हरिश को निहारकर**) सत्यमेव जयते!

हरिश : (**स्थिर मुद्रा। मौन**)

सत्यपुरुष : (**जल का छींटा मारकर**) सत्यमेव जयते!

हरिश : (**जल के छींटे की प्रतिक्रिया के बाद**) कौन? सत्यपुरुष?

सत्यपुरुष : हां, मैं! सत्यपुरुष!

हरिश : (**खिन्न हंसी के साथ खड़ा हो जाता है।**) सत्यपुरुष!

सत्यपुरुष : आज मुझे अपने आगमन पर तुम्हारी गति से अभूतपूर्व अचरज हुआ, हरिश! कहां खो गये थे?

हरिश : दूर···बहुत···दूर, जहां से कोई भी लौटना न चाहे। आपने बहुत भूल की सत्यपुरुष! (**हरिश फिर से पूर्वोक्त मुद्रा में आता हुआ दीर्घश्वास के साथ**) तारा!

सत्यपुरुष : हां, हरिश! तारा और रोहित नहीं दिखाई दे रहे! कहां हैं वे?

हरिश : तारा? पुत्र रोहित? (**काटे हुए नाम पहले स्वयं देखता है फिर दाएं हाथ से संकेत करता हुआ रो उठता है।**)विदा हो गये। एक साथ छूट गये, सत्यपुरुष! हरिश को, अपने हरिश को छोड़ गये। हां, सत्य-पुरुष! मुझे छोड़कर दोनों चले गये।

सत्यपुरुष : (**दुःख से**) त्-त्-त्···हरे हरे!

हरिश : नहीं! वे मुझे छोड़कर नहीं गए। वे···वे···तो···चिरंतन सत्य से

वंचित होने से बच गये। हां! वंचित होने से बच गये।

सत्यपुरुष : सत्यम् शिवम् सुन्दरम्! (**कुछ पल मौन**)

हरिश : एक बात कहो सत्यपुरुष!

सत्यपुरुष : क्या?

हरिश : तुम सत्यपुरुष हो?

सत्यपुरुष : हां, तो!

हरिश : कैसे सत्यपुरुष हो तुम?

सत्यपुरुष : मैं तुम्हारा तात्पर्य नहीं समझा।

हरिश : तुम्हारा सत्य कैसा है?

सत्यपुरुष : सत्य सर्वव्यापक है। सत्य चिरंतन है, सत्य अनश्वर है। सत्य···

हरिश : (**व्यंग्यात्मक हंसी**)

सत्यपुरुष : इस हंसी का कारण?

हरिश : मेरा प्रश्न यह नहीं था। मेरा प्रश्न था—तुम्हारा सत्य कैसा है? जो भी हो···यह बताओ···सत्य जो सर्वव्यापक है, सत्य जो चिरन्तन है, अनश्वर है···उसे इतना भी ज्ञान नहीं कि उसी के कारण हरिश यहां-वहां भटक रहा है। उसका सर्वस्व छिन चुका है। तारा नहीं रही। रोहित नहीं रहा। कैसा सत्य है तुम्हारा? कैसे सत्यपुरुष हो तुम? तुम्हारी और तुम्हारे सत्य की सर्वव्यापकता का यही प्रमाण है क्या?

सत्यपुरुष : लगता है तुम्हारा धैर्य छूट रहा है। तुम्हारा संबल टूट रहा है।

हरिश : यह धैर्य और संबल का प्रश्न नहीं है, सत्यपुरुष! मैं क्यों इस दशा को प्राप्त हुआ? तुम्हारा मन्त्र इस बार क्यों तारा और रोहित को प्राण देने में असफल रहा?

सत्यपुरुष : प्रत्येक अस्तित्व की एक मर्यादा होती है, एक निश्चित अवधि होती है जिसके चुक जाने पर···

हरिश : (**हंसी के साथ**) नहीं, सत्यपुरुष, नहीं! मेरे प्रश्न का उत्तर यह नहीं है। मेरा प्रश्न, मेरी जिज्ञासा है--मैं क्यों दिन-दिन टूटता रहा, चूर होता रहा। कहो, सत्यपुरुष कहो। जिस सत्यमेव जयते से, जिस सत्यम् वद, धर्मम् चर से मेरे विश्वास जुड़े हुए थे···उसी ने मुझे क्यों आतंकित किया?

सत्यपुरुष : हरिश···?

सर्वराज : (**नेपथ्य से अट्टहास**)

हरिश : तुम? तुम कौन हो? इस अवसर पर अट्टहास का प्रयोजन?

सर्वराज : (**प्रवेश**) प्रयोजन है! सर्वराज निरर्थक गति को कभी स्वीकार नहीं किया करते।

सत्यपुरुष : (क्रोध से) सर्वराज ! यह कैसी मूर्खता है ! मेरी उपस्थिति में तुम्हारे आगमन का उद्देश्य ?

सर्वराज : तुम्हारी विजय और पराजय का दृश्य देखने के लिए।

सत्यपुरुष : तुम पापी हो ! घोर पापी, तस्कर, भ्रष्टाचारी।

सर्वराज : (**हँसता है**) पापी ! हम पापी हैं ? घोर पापी ! तस्कर भी, भ्रष्टाचारी भी !

सत्यपुरुष : तुम देशद्रोही हो, राष्ट्रद्रोही हो।

सर्वराज : यह भी माना। जो कहोगे मानूंगा। किन्तु···तौबा, तौबा ! सत्यपुरुष के परम मित्र, सत्य में अनन्त आस्था रखने वाले हरिश की यह दशा ? एक तपस्वी का उसके तप का यह फल ? आप तो···सचमुच पापी नहीं सत्यपुरुष।···हम पापी हैं। यह हम देख ही रहे हैं। कइयों को भोगते हुए देख रहे हैं। (**वातावरण में धीरे-धीरे कुछ काग बोलना आरम्भ होते हैं।**)

सत्यपुरुष : मर्यादा में रहो, सर्वराज !

सर्वराज : हर एक की अपनी-अपनी मर्यादा है, सत्यपुरुष ! तुम्हारी अपनी मर्यादा है और हमारी अपनी। मगर हरिश के उन प्रश्नों का क्या हुआ ?

सत्यपुरुष : समय उन प्रश्नों के उत्तर स्वयं देगा।

सर्वराज : समय ?

सत्यपुरुष : हां ! समय !

सर्वराज : तुम क्यों नहीं। शायद इसलिए नहीं···क्योंकि तुम्हारे पास उन प्रश्नों के उत्तर हैं ही नहीं।

सत्यपुरुष : सर्वराज ! कहीं ऐसा न हो कि हम तुम्हें शाप दे दें।

सर्वराज : (**अट्टहास**) शाप ! आ गये ओछे हथियारों पर। लेकिन तुम मुझे नहीं डरा सकते। क्योंकि तुम्हारा शाप मुझ जैसे लोगों के लिए नहीं है। तुम्हारा शाप तो उन पर काम करता है जो तन-मन से तुम्हारे अनुयायी होते हैं। देख लो ! अपने इस हरिश को देख लो। जरा इस आंगन से बाहर झांककर देखने का कष्ट करो। अनगिनत हरिश मिलेंगे तुम्हें। (**हंसकर**) किन्तु हैं सभी अभिशप्त।

सत्यपुरुष : अपमान ! घोर अपमान !

सर्वराज : (**हरिश से**) देर न करें, हरिश ! अभी पूछें इस सत्यपुरुष से—आपकी दशा हीन क्यों होती रही ? सत्य का पालन करते रहकर भी आप दिन-ब-दिन टूटते क्यों रहे ? आपकी तारा, आपका रोहित भूख-प्यास के मारे बिलखकर प्राण क्यों दे गये ?

सत्यपुरुष : बस ! बस कर नीच ! तू अज्ञानी है। अंधा है।

सर्वराज : हां, हां। वास्तविकता कहने वाला अज्ञानी है, अंधा है। इससे अधिक तुम कह भी क्या सकते हो? (**हरिश से**) रुकें मत, हरिश ! पूछें ! पूछें कि सत्य के लिए राजपाट त्याग देने पर भी सत्य की परीक्षा क्यों शेष रही? तन के वस्त्र चीथड़े हो गये, शरीर ढलकर पिंजर-सा हो गया···तो भी तुम्हारे सत्य की परीक्षा क्यों बाकी रही। क्यों? (**विराम**) अब आपके पास लुटाने को बचा क्या है? तब भी आपके सत्य की परीक्षा शेष है और आगे भी रहेगी। जन्म-जन्मांतर तक शेष रहेगी। आखिर परीक्षा की भी कोई मर्यादा होती है, नियम होते हैं।

(**क्षणिक विराम**)

मांस गया पिंजर रहा, ताकन लागे काग।
साहिब अजहूं न आइया, मंद हमारे भाग॥

खैर, हरिश ! आज्ञा दें। उचित लगा तो फिर आऊंगा। (**सत्यपुरुष की ओर तीखी मुस्कान से देखते हुए प्रस्थान।**)

सत्यपुरुष : (**तनिक मौन के बाद**) उस दुष्ट नास्तिक की बातें महत्त्वहीन हैं, हरिश ! उनकी ओर ध्यान देना बुद्धिमत्ता नहीं। तुम्हें उसने सदा पथभ्रष्ट करने की बातें कहीं। यह तो तुम जानते ही हो। धूर्त कहीं का !

हरिश : (**आवेग में**) और तुम पर विश्वास करूं? तुम्हारे सत्य का जाल मुझे अब और नहीं कस पाएगा, सत्यपुरुष उसके ताने-वाने ढीले हो चुके हैं।

सत्यपुरुष : शांति ! शांति, हरिश !

हरिश : जीवन भर जो अशांत रहा वह अब क्या शांत होगा. सत्यपुरुष ! तुम मुझे बताओ। तुम्हें बताना होगा। (**लाल, पीली, नीली रोशनियों के मिले-जुले फ्लैश हरिश की आवेगपूर्ण प्रश्नवाचक विभिन्न मुद्राओं पर पड़ते हैं। इसी बीच सत्यपुरुष भी अपनी विभिन्न मुद्राओं का प्रदर्शन करता है। अंत में निराश एवं पराजित होकर लौट जाता है। कुछ समय पश्चात् मंच पर धीरे-धीरे प्रकाश मद्धिम हो जाता है। कुछ छायाएं आकर हरिश के इर्द-गिर्द नृत्य करती हैं, हरिश को इनका तनिक भी पता नहीं चलता। तत्पश्चात् मंच पर सम्पूर्ण अंधकार छा कर पाश्चात्य संगीत के साथ-साथ धीरे-धीरे उज्ज्वल प्रकाश फैल जाता है। ठूंठों पर नयी कोंपलें दिखाई दे रही हैं।**

एक ओर खड़ा सर्वराज मुस्करा रहा है। दूसरी ओर नयी पोशाक पहने गम्भीर मुद्रा में विशाल पत्थर पर बैठा हरिश दूर कोई दृश्य देखने में लीन है। तभी पाश्चात्य वेश-भूषा में प्रवेश कर मुस्कराती हुई

आधुनिका हरिश की ओर हाथ बढ़ाती है। हरिश सर्वराज की ओर देखता है। सर्वराज मुस्कराता और गर्दन हिलाकर सहमति प्रकट करता है। हरिश आधुनिका का हाथ थाम लेता है, चूमता है। सर्वराज आंख दबाकर प्रस्थान करता है। कुछ पल हरिश और आधुनिका एक-दूसरे की ओर देखते रहते हैं। वह हरिश के कंधे पर अपना सिर रखकर सहलाती है। हरिश उसकी कमर में बांह डाल देता है। तदुपरांत नृत्य की मुद्रा में दोनों कुछ कदम आगे बढ़ते हैं।)

विरासत

'व्यथा कहो, मालती !

□ डॉ० ओमप्रकाश गुप्त

प्रेमचंद एक ऐसे कगार पर खड़े थे जिसके एक तरफ नयी सभ्यता की लहरें ठोस धरती को काटे जा रही थीं और दूसरी तरफ प्राचीन परम्पराओं की जड़ें फिसलती-टूटती-घुलती मिट्टी को बचाने की भरसक कोशिश कर रही थीं। रूढ़ियों पर आर्य-समाज ने कठोर पदाघात किये थे लेकिन समूचे अतीत को केंचुल की तरह उतार फेंकना स्वामी दयानन्द के चिन्तन में शामिल नहीं था। गांधी की सारी चिन्तन-धारा भी बहुत हद तक इसी सीमा के भीतर घूम-फिर रही थी। उन्हें सुधार अपेक्षित था; आमूल परिवर्तन के वे हामी नहीं थे। स्वामी दयानन्द जहां वेद की धुरी थामे रहे, वहीं गांधी संस्कृति के नये प्रस्थान को राम और कृष्ण के नामों से जोड़े रखना चाहते थे। प्रेमचंद की विचार-प्रक्रिया के मूल में न तो दयानन्द की तरह सांसारिक कष्टों से छुटकारा प्राप्त करने की चाह थी, न ही उनमें गांधी की तरह मानव-अधिकारों को प्राप्त करने की तमन्ना का वह रूप था जिसने गांधी जी को राजनीति के क्षेत्र में ला पटका था। वे दोनों आर्थिक समस्याओं से उस प्रकार जूझे ही नहीं थे जिस प्रकार का जूझना नवाबराय या प्रेमचंद की अनिवार्य नियति थी। तो भी आदर्शों, परम्पराओं और रूढ़ियों के प्रति प्रेमचंद का रवैया पूरी तरह दयानंदी या गांधीवादी पद्धति का था।

प्रेमचंद शुरू से आखिर तक एक क्राइसिस में जिए, हर धरातल पर अनिश्चय उनके कृतित्व का अभिन्न अंग है। प्रेमचंद की निर्मला तोताराम को उसी तरह पति स्वीकार कर लेती है जिस तरह एक सामान्य कम पढ़ी-लिखी या अनपढ़ हिन्दुस्तानी औरत स्वीकार करती है। बुढ़ऊ पति के नखरे देखकर, उसका अन्याय देखकर भी प्रेमचंद की निर्मला यह कहकर रुक जाती है—''वह बुड्ढे हों या रोगी पर हैं तो उसके स्वामी ही। कुलवती स्त्रियां पति की निंदा नहीं करतीं, यह कुलटाओं का काम है।" **सेवासदन** की सुमन-गजाधर की जोड़ी में वे सारी संभावनाएं हैं जो सुमन को विवाह, प्रेम, पतिव्रत से जुड़ी सभी मान्यताओं

पर प्रश्नचिह्न लगाने के लिए मजबूर कर देती हैं लेकिन प्रेमचंद के अन्तर ने पहले ही एक चौखट तैयार कर लिया है। यही कारण है कि प्रेमचंद सुमन-सदन प्रेम-प्रसंग को विकसित नहीं होने देते। उनके मन में जो नैतिक मापदण्ड हैं, वे सुमन की सदन के प्रति खुले आम अनुरक्ति सहन नहीं कर सकते। **रंगभूमि** की इंदु को उसकी मां पतिव्रत के संस्कार पिलाती रही और सोफ़िया जन्मतः ईसाई होकर भी हिन्दू संस्कारों की लड़की है। क्लार्क की पत्नी के रूप में रखकर भी प्रेमचंद शारीरिक पवित्रता की दृष्टि से उसे उसी तरह बचा लेते हैं जिस तरह सुमन को वेश्या वाजार में रखकर भी उसके सतीत्व की रक्षा कर लेते हैं।

प्रेमचंद के उपन्यासों की नारियां स्वयं में चरित्र हैं ही नहीं। प्रेमचंद इन पात्रों के माध्यम से व्यक्ति नहीं नारी-शिक्षा का समूचा स्कूल प्रस्तुत करते हैं। **गोदान** कई नजरियों से बहुत प्रगतिवादी उपन्यास है। इस उपन्यास को प्रेमचंद के विचारों एवं कला की गवाही के लिए प्रामाणिक दस्तावेज़ माना जाता है। इसीलिए आधुनिक युवती के चरित्र की दृष्टि से **मालती** का विशेष महत्त्व है। मालती एक ऐसी आधुनिका है जिससे हिन्दी-उपन्यास में आधुनिकाओं का एक अबाध दौर शुरू होता है और शुरू होता है विवाह, प्रेम, सेक्स, मुक्तभोग जैसे प्रश्नों पर खुला विचार-विमर्श। मालती हर तरह से, हर तरफ़ से आधुनिका है—एक मॉड गर्ल है। प्रेमचंद उसका परिचय यूं देते हैं—"आप नवयुग की साक्षात प्रतिमा हैं। गात कोमल पर चपलता कूट-कूट कर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं। मेकअप में प्रवीण, वला की हाज़िर-जवाब, पुरुष मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्त्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण।" मालती के आरंभिक परिचय में हमें वे सारे तत्त्व मिल जाते हैं जो आज की युवती को सेक्स-सिम्बल बना देते हैं। जिस आत्मविश्वास के साथ वह मंच पर आती है, उससे पता चलता है कि एक सहज, स्वाभाविक चरित्र उपन्यास में आ पहुंचा है। धनिया और झुनिया जैसे नारी-पात्र भी गोदान में हैं लेकिन शहरी आधुनिका मालती के माध्यम से प्रेमचंद नये युग की पढ़ी-लिखी भारतीय नारी की समस्याएं प्रस्तुत करेंगे, ऐसा विश्वास हमें मालती के चरित्र द्वारा प्राप्त होने लगता है। जल्दी ही हमें यह भी विदित होता है कि प्रेमचंद साथ मालती के चरित्र को एक मोड़ देने का उपक्रम कर चुके हैं। मालती के साथ ही प्रेमचन्द अपने स्पोक्समैन प्रोफ़ेसर मेहता को धनुष यज्ञ में भेज देते हैं। यहीं पठान के उद्दीप्त नयन देखकर मालती के मन में जो भावनाएं उठती हैं, उन्हें सीधे ढंग से यूँ व्यक्त किया जा सकता है—'काश ! यह 'ही-मैन' मुझे किडनैप करके ले जाए'। जल्दी ही भेद खुल जाता है कि यह 'ही-मैन' प्रोफ़ेसर मेहता है जिसके वारे में प्रेमचंद स्वयं कहते हैं कि औरतों की महफ़िल में उसकी घिग्गी बंध जाती है। इस मेहता का शरीर किसी अखाड़ेवाज़ पहलवान से कम मस्क्यूलर नहीं है।

उसका वेश-विन्यास बहुत आर्कषक और सामन्तीय किस्म का है; वह बला का विद्वान और वक्ता है, उसे मोटी तनख्वाह मिलती है, वह प्रोफेसर ही नहीं अच्छा शिकारी भी है। वह चिड़िया का शिकार तो करता ही है, मालती के दिल का भी शिकार कर लेता है। स्पष्ट है कि मेहता को इस उच्च आसन पर पहुंचाए बिना प्रेमचंद उसके मुख से फ़तवे सादिर नहीं करवा सकते थे, मालती को हीन घोषित नहीं करवा सकते थे। मेहता प्रेम नहीं करता, मालती के चरित्र का विश्लेषण करता है; यह बात मालती को काफी कचोटती है। मेहता कदम-कदम पर मालती की परीक्षा लेता है और एक स्थल पर घोषणा करता है—"मिस मालती हसीन हैं, खुशमिज़ाज हैं, रौशन-खयाल हैं···लेकिन मैं अपनी जीवन-संगिनी में जो बात चाहता हूं, वह उनमें नहीं है, और न शायद हो सकती है।" प्रेमचंद की मालती हसीन तो थी ही, मेहता के सामने वह अज़हद कमसिन भी साबित होती है। मालती जो साहस के साथ परिवार का बोझ उठा रही है, कई तरह के लोगों से कई मोर्चों पर जूझ रही है, मेहता के सामने अबला बना दी गई है। अपने सारे आत्मविश्वास और अहं के बावजूद वह महसूस करती है कि नारी की रक्षा के लिए पुरुष का सहारा अशद ज़रूरी है। मेहता रोमांटिक हरक्यूलियन अंदाज़ में कहता है—"ऐसा ही (कठिनाई का) कोई अवसर आए, मुझे बुला लेना।" वह एक ऐसी औरत चाहता है जिसके साथ वह वनसाइडिड डायलाग कर सके। अगर मेहता अपने इस दावे पर ईमानदार होता कि "मेरी पत्नी किसी से प्रेम करे तो मैं उसे गोली मार दूंगा और यही अधिकार मैं पत्नी को भी दूंगा", तो वह गोविन्दी को घर की महिमा बताकर पति-सेवा के लिए वापस कदापि न भेजता। प्रेमचंद और उनके प्रोफ़ेसर मेहता के ज़ेहन में "औरत वफ़ा और त्याग की मूर्ति है जो अपनी बेजुबानी से, अपनी कुर्बानी से, अपने को बिलकुल मिटाकर पति की आत्मा का अंश बन जाती है।" टालस्टाइन मुहावरे में बात करता मेहता ज़ोर देकर कहता है—"मैं वह भोजन चाहता हूं जिससे आत्मा की तृप्ति हो, उत्तेजक और शोषक पदार्थों की मुझे ज़रूरत नहीं।" 'वुमेन लीग' में दिया गया उसका समूचा भाषण नारी को प्राचीन आदर्शों और परम्पराओं से बंधे रहने का, आम तर्कों से बुना, एक लम्बा उपदेश है। यहीं मेहता का एक अन्य युवती से सामना होता है। वह है मालती की छोटी बहन सरोज। सरोज मन की बात बेबाक तरीके से कहती है। उसके कॉलेज में मेहता ने फ़रमाया था—"संसार में स्त्रियों का क्षेत्र पुरुषों से बिलकुल अलग है। स्त्रियों का पुरुषों के क्षेत्र में आना इस युग का कलंक है।" उस कॉलेज में लड़कियों ने मेहता की जो गत बनाई थी उसके कारण उन्हें चुप होकर बैठ जाना पड़ा था। उस भाषण का सरोज पर तो कुछ प्रभाव नहीं था; हां, मालती मेहता के प्रति करुणार्द्र हो उठी—प्रेमचंद उसे पहले ही मेहता की ओर आकृष्ट कर चुके थे। मालती मेहता का भाषण सुनने से पहले

ही सोच लेती है—"अभी यह कौन जानता है कि स्त्रियां जिस रास्ते पर चलना चाहती हैं, वही सत्य है। बहुत संभव है, आगे चलकर हमें अपनी धारणा बदलनी पड़े।" सरोज को अपनी बड़ी बहन के इस नये भाव-बोध पर आश्चर्यमिश्रित कुतूहल होता है। 'वुमेन लीग' में मेहता के भाषण पर टीका-टिप्पणी शुरू हुई तो मालती ने सभापति-पद से मेज़ पर हाथ पटककर कहा—"शांत रहो। जो लोग पक्ष या विपक्ष में कुछ कहना चाहेंगे, उन्हें पूरा अवसर दिया जाएगा।" लेकिन भाषण के अन्त में प्रेमचंद कहते हैं—"विषय विवादग्रस्त था और कई महिलाओं ने जवाब देने की अनुमति मांगी मगर देर बहुत हो गई थी। इसलिए मालती ने मेहता को धन्यवाद देकर सभा भंग कर दी।" मालती, जो नारी-स्वातन्त्र्य, मुक्तभोग जैसे प्रश्नों पर सबल जिरह कर सकती थी; जिसके पास आत्मविश्वास, चातुर्य, भाषण कला के साथ-साथ सौन्दर्य का शस्त्र भी था, उसे प्रेमचंद निरीह और मूक बनाकर रख देते हैं। इसी भाषण के अन्त पर प्रेमचंद की आदर्श नारी गोविन्दी ने मेहता को भाषण की सफलता पर बधाई दी थी और उपदेश की एक डोज़ भी पिलायी थी—"······भूल जाइए कि नारी श्रेष्ठ है और सारी ज़िम्मेदारी उसी पर है। श्रेष्ठ पुरुष है और उसी पर गृहस्थी का सारा भार है···।"

प्रेम और विवाह के बारे में भी मेहता के विचार काफ़ी दुविधापूर्ण हैं। विवाह को वैयक्तिक और सामाजिक उपादेयता की दो अलग कसौटियों पर कसते हुए वह घोषणा करता है—"मैं समाज की दृष्टि से विवाहित जीवन को, व्यक्ति की दृष्टि से अविवाहित जीवन को श्रेष्ठ समझता हूं।" मेहता यह भूल जाता है कि विवाह जैसे मामले में वैयक्तिक और सामाजिक स्तरों को अलगाना बहुत मुश्किल है। एक पुरुष या स्त्री की वैयक्तिक प्रगति सामाजिक प्रगति में बाधक केवल उसी दशा में मानी जाती है जब वह सामाजिक नियम को भंग करके प्राप्त की जाती है। एक स्तर पर (इसी वैयक्तिक उन्नति की फ़िराक में ?) मेहता मालती से विवाह नहीं करना चाहता और जब (सामाजिक उन्नति के लिए !) उसके प्रणय की भीख मांगता है, तो मालती विवाह का प्रस्ताव अस्वीकार कर देती है। इसके बाद दोनों के प्रगाढ़ आलिंगन से प्रेमचंद इस काण्ड की समाप्ति करते हैं।

विवाह को मेहता एक सामाजिक समझौता मानता है और करार पर दस्तखत कर देने के बाद दोनों के हाथ काट लेता है इसलिए पतिव्रत प्रेमचंद के नारी-पात्रों का एक अनिवार्य गुण रहा है। वास्तव में प्रेमचंद ने मालती को एक ऑब्जेक्टिव दृष्टि से देखा ही नहीं। इस तितली की इतराना उन्हें कतई पसन्द नहीं लेकिन इस अहंवादिनी को जिस तरह मेहता के सामने दीन बना दिया गया है, जिस तरह उसके रंगीन पंख काट लिये गये हैं, उसे देखकर मालती के प्रति सहानुभूति हो जाना स्वाभाविक है। सही बात तो यह है कि मालती शुरू से सहा-

नुभूति की पात्र है। वह इतराती इसलिए है कि "उसके कर्तव्य का भार कुछ हलका हो जाता है।" फ़ालिज से बिस्तर पर पड़े बाप की जगह बड़ी लड़की को घर संभालने के एवज़ जो कुछ सहना पड़ता है, वह मालती सहती है। 'मालती सुबह से पहर रात तक दौड़ती रहती थी' कि घर का गुज़ारा चल सके। लेकिन प्रेमचंद मालती के घर की समस्याओं को नज़रंदाज़ करके उसे राय साहिब के बंगले पर ले जाते हैं और अपने विचारों की अभिव्यक्ति का मोहरा बना डालते हैं। मेहता के प्रति मालती का रोमांटिक आकर्षण इतना जादुई और तिलस्मी है कि मालती का सारा तर्क, उसकी वाचालता, उसका अहं धराशायी हो जाता है। आखिर में वह जब विवाह को सामाजिक दायित्व के वहन के लिए बाधा समझकर नकार देती है तब भी मेहता के पीछे-पीछे चलने का व्रत लेती है। अपने मां-बाप और परिवार की जिम्मेदारियां मालती पर थीं ही, मेहता के बजट का भार भी मालती संभाल चुकी है। "दोनों एक ही घर में रहते हैं, एक साथ खाते हैं, हंसते हैं, बोलते हैं," लेकिन प्रेम को श्रद्धा में बदलकर प्रेमचंद उन्हें शारीरिक सम्बन्ध से दूर रखते हैं। अब मालती को किस बन्धन से वह मुक्त रखना चाहते हैं, समझ में नहीं आता। प्रेमचंद सरोज और रुद्रपाल के प्रेम-प्रसंग का परिचय अनायास, अत्यंत नाटकीय ढंग से, सिर्फ़ तब देते हैं जब वे विवाह भी कर चुके हैं। इस प्रेमकथा के आरंभ और विकास की जितनी मनोरम स्थितियां हो सकती थीं, वे प्रेमचंद प्रस्तुत नहीं करते। स्पष्ट है कि मालती का चरित्र समझाने के लिए सरोज का चरित्र समझाना ज़रूरी है और यहीं प्रेमचंद कन्नी काट जाते हैं। इस प्रकार गोदान में आधुनिक युवती के रूप में मालती का चरित्र अधूरा है। इसके अतिरिक्त और इसके आगे की कौन-सी भूमियां हो सकती हैं, यह देखने के लिए हमें हिन्दी उपन्यास की सड़क पर आगे चलना पड़ता है। देखना यह भी है कि मालती का अन्तर-बाह्य यदि प्रेमचंद निष्पक्ष होकर चित्रित नहीं कर पाए तो उनके बाद के साहित्यकार कहां चूके, कहां सफल हुए।

जैनेन्द्र को आंतरिक वृत्तियों का चित्रण करने वाला साहित्यकार कहा जाता है इसलिए आशा थी कि जैनेन्द्र ऐसे नारी-पात्रों का निर्माण करेंगे जो मालती की कथा को आगे बढ़ायेंगे। सेक्स सम्बन्धी वर्जनाओं को तोड़ने वाले जैनेन्द्र से इस प्रकार की अपेक्षा और भी स्वाभाविक थी। किन्तु जैनेन्द्र ने नारी को जिन कोणों से देखना शुरू किया वहां बैठने से पहले उन्होंने नारी-मन की परवाह नहीं की। 'प्रेम-हीन सेक्स भी हो सकता है', इस तरह की (दार्शनिक !) सूक्तियों के सहारे नारी-जीवन का यथार्थ और निष्पक्ष चित्रण उनमें मिलना संभव भी नहीं था। रामविलास शर्मा के अनुसार '**सुनीता** हिन्दी कथा साहित्य में एक नयी धारा का सूत्रपात करता है।' सुनीता विवाहित है, उसे अपने पति श्रीकान्त से कोई शिकायत भी नहीं है। लेकिन हरिप्रसन्न के आने पर वह सुनती है—'भाभी मेरे

लिए सब तुम हो !' इस देवर-भाभी वाद का क्लाइमेक्स सुनसान जंगल में आधी रात के वक्त होता है जब सुनीता मानो हरिप्रसन्न के सारे सवालों का जवाब देती हुई कहती है—"तुम्हें काहे की झिझक है, बोलो। मैंने कभी मना किया ? ···मुझे चाहते हो तो मुझे ले लो।" उपर्युक्त संवाद में बिन्दुओं की तह में दबाए गए सारे शब्द फिजूल और लचर बहानेबाज़ी के परिचायक हैं। शरीर पर से साड़ी उतारकर सुनीता ब्लाउज भी अलग रख देती है। अब ब्रा उतारने का धीरज उसमें नहीं है। वह शरीर से चिपकी बाडिस को फाड़कर उतार फेंकती है। यदि इस नाटकीयता को नारी के चरित्र-चित्रण का माध्यम माना जाए अथवा उसमें किसी प्रकार की आधुनिकता के चिह्न ढूंढ़े जाएं या फिर स्थिति की सेक्सीयता का विश्लेषण किया जाए तो कहना होगा कि यह नारी के साथ अन्याय, आधुनिकता के साथ एक भद्दा मज़ाक और सेक्स के साथ एक डेलिक्वेंट मन की खिलवाड़ है। ऐसा ही मन सेक्स की इन स्थितियों में उत्तेजित न होने का बहाना करता है। जिन शारीरिक सम्बन्धों को प्रेमचंद 'टेबू' मानते हैं, जैनेन्द्र उस 'टेबू' को तोड़ने में जी-जान से जुट जाते हैं। यहां माउथपीस स्वयं सुनीता है। वह घोषणा करती है: "कह सकते हो विवाह समाज की सृष्टि है। मनुष्य के भीतर प्रकृत रूप से वह नहीं है। लेंकिन एक से दो होने की आवश्यकता, जान पड़ता है, मनुष्य के भीतर तक व्याप्त है। न कहो विवाह, कहो प्रेम, लेकिन आदमी अपने को पूरा नहीं पाता। दूसरों की अपेक्षा उसे है ही।" सुनीता को दूसरे ही नहीं तीसरे की भी आवश्यकता है; सत्या की भी आवश्यकता है जो इतना षड्यंत्र बुन सके जिससे श्रीकांत उस रात अपने घर न आने पावे और सुनीता को घर से नदारद न देख ले। पत्नी के साथ व्यवहार की कुछ सीमाएं बन जाती हैं; उसमें परकीया-सुलभ रोमांस की कमी रहती है, इसीलिए श्रीकांत अपनी पत्नी के लिए हरिप्रसन्न को बुलाता है और हरिप्रसन्न "इसलिए विवाह नहीं करता कि मैं पत्नी नहीं चाहता। मैं सब कुछ चाहता हूं सब कुछ।" **कल्याणी** और **त्यागपत्र** की नारियां पतिपरायणा हैं लेकिन पति अत्यंत स्वेच्छाचारी है। फलस्वरूप कल्याणी और मृणाल आत्महत्या कर लेती हैं। कल्याणी में कामकाजी नारी की व्यथा भी है। वह पति के बहाने मानो सभी को सुना कर कहती है: "अगर तुमको डॉक्टरी की आमदनी भी चाहिए···तो पतिव्रत की मांग उतनी कसी नहीं रखी जा सकेगी, थोड़ा उसे उदार करना होगा।" **गोदा** की **मालती** ने भी कुछ ऐसा ही कहा था: "मेरा काम ही कुछ ऐसा है कि मुझे सभी का स्वागत-सत्कार करना पड़ता है। अगर कोई इसका कुछ और अर्थ निकालता है तो वह···" इसके बाद उसकी आवाज़ आंसुओं में डूब गयी थी। ईमानदारी का तकाज़ा है कि उस आवाज को सुना जाए। जैनेन्द्र के त्यागपत्र की मृणाल स्त्रीधर्म को पतिव्रत अलग नहीं मानती और मृणाल के विलकुल विपरीत नारी है सुखदा जो पतिव्रत से बंधी रहना नहीं चाहती।

स्वतंत्रता का पूरा लाभ उठाती हुई सुखदा भी अन्त में प्रायश्चित्त करती है :'उससे जीवन पनपा नहीं; उजड़ता ही गया; नेह सरसा नहीं, वह विकारों की आंच में सूखता ही गया।" प्रेम किसी से, विवाह किसी से, जिससे विवाह उससे असंतुष्टि और संतुष्टि उस तीसरे में भी नहीं···जैनेन्द्र की नारी इसी भूलभुलैया में भटकती रही है। देवेश ठाकुर ने इस प्रकार के सेक्सचित्रण को 'बुद्धिजीवी सेक्स चर्वण' का नाम दिया था। यही सेक्स चर्वण चित्रलेखा और रेखा (भगवतीचरण वर्मा), दादा कामरेड; मनुष्य के रूप (यशपाल), नदी के द्वीप (अज्ञेय), डूबते मस्तूल (नरेश मेहता), यह भी नहीं(महीप सिंह), अचला—एक मनःस्थिति(मुद्राराक्षस), चित्तकोबरा (मृदुला गर्ग), कुरु-कुरु स्वाहा (मनोहर श्याम जोशी) में भी दिखाई देता है।

रोमांटिक प्रवृत्ति की युवतियों में **नदी के द्वीप** की रेखा का चरित्र अनेक अन्तर्विरोधों के बावजूद बहुत आकर्षक है। वैसे प्रेम-सम्बन्धी प्रश्नों को अज्ञेय **शेखर** में भी उठा चुके थे लेकिन जो व्यक्तित्व अज्ञेय रेखा को दे पाए किसी अन्य पात्र को नहीं। रेखा अपने हर कार्य को दार्शनिक टच देती है। वह एक परित्यक्ता है और स्वाभाविक है कि प्रेम की तलाश में है। वह भुवन की ओर आकृष्ट होती है और तुलियन झील पर भुवन के पुरुषत्व को भोग कर अपने को 'फ़ुलफ़िल्ड' समझती है। वह भुवन-सरीखे सुन्दर और मेधावी पुत्र की मां बनने के सपने पालती है। अन्त में गर्भपात करवा लेती है और यात्रा के आखिरी पड़ाव पर पहले पति से तलाक लेकर उसी डॉक्टर रमेश से विवाह कर लेती है जिसने गर्भपात में उसकी सहायता की थी। शादी के बाद भी वह अपने श्रीमतीत्व को मिथ्या घोषित करती है और अपने को 'भुवन की थी, है और रहेगी' मानती है। इस बात से बहुत जल्दी सहमत हुआ जा सकता है कि रेखा एक बृहत समाज की नारी नहीं; **नदी के द्वीप** के एक विलक्षण समाज की सदस्या है। शेखर और भुवन, शशि और रेखा जैसे पात्रों के माध्यम से जो कुछ हमारे सामने आता है उससे आम पढ़ी-लिखी औरत की समस्याओं को चीन्हना गलत, असंगत और असभव है। अज्ञेय की नारियां बेहद आकर्षक और प्रभावशाली व्यक्तित्वों की स्वामिनियां होने के बावजूद पुरुष का महत्त्व स्वीकारने वाली हैं, इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता। **नदी के द्वीप** की गौरा सोचती है—'किसी तरह कुछ भी करके, अपने को उत्सर्ग करके भी भुवन के घाव भर सकती।'

जैनेन्द्र के साथ-साथ "मनोवैज्ञानिक ढंग से" नारी-चित्रण का श्रेय **इलाचन्द्र जोशी** को भी दिया जाता है। जोशी के उपन्यासों की स्त्री भी पुरुष के अहं की शिकार है। **संन्यासी** की नायिका जयंती अपने पति से कहती है: "आपका अहं हद दर्जे तक बढ़ा हुआ है···आप चाहते हैं कि जिस स्त्री से आपका सम्बन्ध हो, वह पूर्ण रूप से आपकी होकर रहे, उसका कुछ भी स्वतंत्र रूप से अपना कहने को न

रहे···।" संदर्भ को ज़रा बदल कर देखें तो मेहता के इन शब्दों से यही भाव झांकते दृष्टिगोचर होते हैं : "संसार में जो कुछ सुंदर है, उसकी प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूं; मैं उससे यह आशा रखता हूं कि मैं उसे मार ही डालूं तो भी प्रतिहिंसा का भाव उसमें न आये, अगर मैं उसकी आंखों के सामने किसी स्त्री से प्यार करूं तो भी उसकी ईर्ष्या न जागे··· ।" कलावादी और उपयोगितावादी दृष्टियों का यह अच्छा समन्वय है ! मेहता ऐसी स्त्री नहीं चाहता जो दार्शनिक सिद्धान्तों पर उससे बहस कर सके। स्पष्ट है कि वह स्त्री को अपने पैरों पर खड़ा करने का पक्षपाती नहीं है। (झुनिया से घास बिकवा कर उसे मानसिक और शारीरिक दृष्टि से जो स्वस्थ बनाया गया है, वह संदर्भ दूसरा है।) जोशी ने इस चिन्तन को आगे बढ़ाया है और स्पष्ट किया है कि इस प्रेम की प्रक्रिया में स्त्री का शोषण तभी तक हो सकता है जब तक वह मानसिक और आर्थिक रूप से अपने को पुरुष की आश्रिता समझती है। जैसे ही वह आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र हो जाती है, पुरुष की अधिकारलिप्सा के पंजे से वह मुक्त हो जाती है। **संन्यासी** की शांति ऐसी ही नारी है। जोशी की नारियों ने शोषण के विरुद्ध ज़ोरदार आवाज़ बुलन्द की है। **प्रेत की छाया** की मंजरी चेतावनी देती है : 'याद रखो, विश्वव्यापी क्रांति के इस युग में आततायी और कामाचारी पुरुष-जाति की सत्ता अब निश्चित रूप से मूलतः ढहने को है।' लेकिन मूल्यों का द्वन्द्व जोशी में बना ही रहता है। इसी उपन्यास में पारसनाथ की मां अपने पति के प्रति संस्कारगत शब्दावली दुहराती है : "मुझसे इस जन्म में अगर सचमुच अपराध हुआ हो तो क्षमा कर दीजिए। यह आशीर्वाद दीजिए कि अगले जन्म में आपको ही पति-रूप में पाऊं।"

नारी की गुलामी के लिए मुख्य रूप से यही संस्कार ज़िम्मेदार है। पति के विरुद्ध कदम उठाने से, उसके अपराध की गवाही देने से पत्नी घोर पाप करती है, यह धारणा नारी-मन में बद्धमूल हो चुकी है। नारी का जन्म पिछले जन्म के कुकर्मों के कारण मिला है और पतिद्रोह जैसा कोई पाप नहीं, इस विश्वास से आम औरत आज भी मुक्त नहीं हो पायी। पुरुष का महत्त्व इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था का अनिवार्य सत्य है। समाज में नारी की स्थिति और उसके लिए उत्तरदायी तत्त्वों का बेलौस विश्लेषण करने वाला साहित्यकार है—**यशपाल**। रामविलास शर्मा मानते हैं : "जैनेन्द्र जी ने सुनीता में जो भाभीवाद शुरू किया था, यशपाल जी ने मानो वही सूत्र 'दादा कामरेड' में पकड़ लिया था। वही आतंकवादी, वही साड़ी-जम्पर उतार परिस्थिति।" इसमें सन्देह नहीं कि यशपाल के उपन्यास में सेक्स और यौन प्रदर्शन को काफ़ी महत्त्व दिया गया है। सुनीता हरिप्रसन्न के समक्ष निरवस्त्र होती है तो शैल हरीश के समक्ष लेकिन यशपाल एक नुक्ते पर आकर बाकी उपन्यासकारों से अलग हो जाते हैं। यशपाल नारी को एक स्वतंत्र व्यक्तित्व देना चाहते हैं, उसे पुरुष की गुलामी से निजात दिलाना चाहते हैं। वह

समस्या पर गम्भीरता से विचार करते हैं और वर्जनाओं को बड़ी बेरहमी से तोड़ते हैं। सेक्सीय स्थितियों के विषय में यशपाल एक सीधा प्रश्न करते हैं—जब आप को इन स्थितियों से आनन्द प्राप्त होता है तो आप इनके चित्रण पर आपेक्ष क्यों करते हैं? **दादा कामरेड** की भूमिका में वह लिखते हैं: ''आवरण के कुछ प्रेमियों को शैल के व्यवहार में नग्नता दिखाई देगी। इस प्रकार का चरित्र पेश करना वे आदर्श की दृष्टि से घृणित समझेंगे। हो सकता है शैल उनकी सहानुभूति न पा सके। परन्तु शैल है कौन? दादा कामरेड की शैल स्वयं कुछ न होकर घृणा से नाक-भौं सिकोड़ने वालों की अतृप्त परन्तु जागरूक सक्रिय प्रवृत्ति है।'' इसी उपन्यास में यशपाल विवाह-संस्था पर प्रहार करते हैं—''विवाह का दमनकारी बंधन दूर कर देने पर स्त्री-पुरुष अपनी स्वाभाविक अवस्था में रहेंगे।'' स्पष्ट है कि यह स्टेटमेंट हरीश को काफ़ी लाभदायक लगता है। समाज में विवाह-बन्धन के कारण नारी काफ़ी परतन्त्र है, इसमें दो मत नहीं हो सकते। हर समझौता किसी न किसी हद तक स्वतन्त्रता का हनन अवश्य करता है। पति और पत्नी—दोनों को किसी न किसी मात्रा में अपनी इच्छाओं, ज़रूरतों और आदतों को ज़रूर बदलना पड़ता है। समस्या वहां बनती है जहां एक अपनी इच्छाओं को दूसरे पर हावी करना चाहता है, दूसरे की बिलकुल परवाह नहीं करता। सभी उदाहरणों में ऐसा नहीं होता इसीलिए उपर्युक्त सिद्धान्त शाश्वत नहीं माना जा सकता। मालती की तरह यशपाल की लगभग सभी औरतें काफ़ी मॉडर्न हैं; यह बात अलग है कि यशपाल की मॉडर्निटी की सीमा है—कम्यूनिज़्म। यशपाल के युवा विवाह में विश्वास नहीं करते और जो, भूले-भटके, इस फंदे में फंस जाते हैं उनकी एक अनिवार्य नियति है तलाक—विशेषकर ऐसे केसिज़ में जहां पति-पत्नी में से एक कम्यूनिस्ट न हो।

यशपाल सेक्सीय स्थितियों में काफी दिलचस्पी लेते हैं। 'क्यों फंसे' में हेना की यह तस्वीर देखिए: ''बाथरूम का दरवाज़ा खोल हेना निकली। भास्कर को रोमांच। आंखें उत्सुक कौतूहल से फैल गयीं। तहाए हुए साड़ी, पेटीकोट ब्लाउज़ हेना की बांह पर थे···शरीर पर केवल अंगिया, तिकोना जांघिया।'' साड़ी इत्यादि के उतर जाने पर शरीर पर शेष कौन-सा वस्त्र रह जाता है यह बताना यशपाल की नारी मुक्ति सम्बन्धी प्रगतिशील धारणा की विशेषता है। यशपाल कहीं अविवाहित सत्या और नरेन्द्र को (**मेरी तेरी उसकी बात**) प्रणयरत दिखाकर अमर के सामने सत्या को पेश करते हैं—'जो चाहो कर लो', कहीं जयारानी की बेटी मीरा के उठते-बैठते स्कर्ट के नीचे सफ़ेद जांघिया झांकने लगते हैं (मेरी तेरी उसकी बात)। शैल, गीता, सोमा···एक सौन्दर्य प्रदर्शनी है यशपाल के पास। सेक्स जब व्यापक जीवन का अंग बनकर आता है, वह ओछा और व्यर्थ नहीं लगता लेकिन जीवन के आयामों से जहां वह अलग छिटक जाता है, वहां भद्दा

और अश्लील बन जाता है। **झूठा सच** में भी सेक्स है पर वहां अधिकांश स्थितियां स्वाभाविक और यथार्थ से जुड़ी रही हैं।

जहां तक प्रेम का प्रश्न है, उसकी रोमांटिकता को यशपाल पूरी तरह नकार देते हैं। **झूठा सच** की कनक पुरी से प्रेम करके धोखे में रहती है और **मेरी तेरी उसकी बात** की चित्रा अपने असफल दांपत्य जीवन पर उषा से कहती है—उषी, प्रेम-वरेम कुछ नहीं। इस तरह के फ़ारमूलाबद्ध वक्तव्यों में यशपाल अपनी बात साफ और सशक्त ढंग से कहते हैं और अक्सर हमें उनकी बात से सहमत होना पड़ता है। अपने दोस्त रजा का हवाला देता हुआ अमर कहता है : "मज़हबी लोग औरत को लैट्रिन समझते हैं। सेहत और आराम के लिए मकान में जरूरी, उसे एहतियात से साफ़ रखना ज़रूरी लेकिन चीज़ गन्दी है।" शास्त्र एक तरफ नारी को देवी मानता है, दूसरी तरफ उसे नरक की खान घोषित करता है। इतिहास हमें बताता है कि कोई विशिष्ट नारी कभी देवी बनी होगी, आम औरत की हालत सदा शोचनीय और ख़स्ता रही। प्रेमचन्द ने नारी को देवी घोषित किया लेकिन **गोदान** में सभी विवाहित नारियों की दशा शोचनीय है। मेहता और मालती जिन ज़िम्मेदारियों से बचने के लिए विवाह से दूर भागते हैं, वे 'मेरी तेरी उसकी बात' में नरेन्द्र के अनुसार यूं शब्दबद्ध की जा सकती हैं : "विवाह जीवन की पूर्णता के लिए आजीवन प्रेम का सम्बन्ध नहीं, मजबूरी है···हमारी बिरादरी, समाज में पत्नी-प्रेम नहीं, विवशता में स्वामी-भक्ति निबाहती है।" यशपाल नारी को व्यक्ति बनाना चाहते हैं। पार्टी कामरेड की गीता ने कम्यूनिज़म के सम्पर्क में आ कर यही चेतना प्राप्त की थी और व्यक्तित्व की इसी पहचान के लिए यशपाल के उपन्यासों की नारियां पतियों से तलाक की फ़िराक में रहती हैं। उनकी शकुन्तला ने भी मान लिया था, पतिव्रता नारी व्यक्ति अथवा मानव नहीं, मात्र पतिव्रता होती है। उसकी यह दलील अप्सरा मेनका को भी पसन्द नहीं आई थी। वैसे, विवाह-संस्था की अनिवार्यता कहीं यशपाल के अन्तर में विद्यमान अवश्य थी। **झूठा सच** के अन्त तक आते-आते वह अपनी प्रिय पात्रा तारा का विवाह डॉ० नाथ से करवा देते हैं। इसी उपन्यास के अन्त में उन्होंने जनतंत्र के प्रति भी अपनी आस्था प्रकट कर दी थी। क्यों? इस प्रश्न का उत्तर उन्होंने एक बार यूं दिया था—जनतंत्र से अच्छी व्यवस्था मनुष्य अभी तलाश नहीं सका। इसी तरह तारा को मिसेज़ नाथ बनाकर मानो यशपाल कहते हैं कि नर-नारी सम्बन्धों के विविध प्रश्नों के सन्दर्भ में जहां नारी स्वतंत्रता ज़रूरी है, वहां मुक्त-प्रेम अपने में कोई समाधान नहीं है। नारी की आर्थिक आत्मनिर्भरता और बौद्धिक जागरूकता महत्त्वपूर्ण है। यदि विवाह के बाद समझौता संभव नहीं तो तलाक का हक मिलना ही चाहिए।

एक अन्य उपन्यासकार जिसने नयी पीढ़ी की युवतियों की समस्याओं को

गहराई से देखा और प्रस्तुत किया है, वह है **अमृतलाल नागर**। उनके मिथकीय उपन्यास 'सुहाग के नूपुर' की माधवी द्वारा कहे गये ये शब्द बहुत मार्मिक हैं : "पुरुष जाति के स्वार्थ और दम्भ-भरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है···नारी के रूप में न्याय रो रहा है महाकवि···पुरुष न तो नारी को सती रूप में देखना चाहता है और न वेश्या रूप में" किन्तु, उपन्यास की राह में मालती की यात्रा के सन्दर्भ में **बूंद और समुद्र** तथा **अमृत और विष** महत्त्वपूर्ण हैं। **बूंद और समुद्र** की वनकन्या को जो व्यक्तित्व प्राप्त है, वह न मालती को प्राप्त है, न यशपाल के किसी नारी पात्र को। वनकन्या अतीव सुन्दरी होने के साथ विदुषी है और अपने विचार सटीक ढंग से व्यक्त करती है। यह आश्चर्यजनक और सुखद साम्य दिखाई देता है कि वनकन्या कम्यूनिस्ट है और लगता है उसके चरित्र का विकास संभवतः, नागर गीता या मनोरमा की तरह करना चाहेंगे। किन्तु वनकन्या जल्दी ही सारी कम्यूनिस्टबाज़ी छोड़कर एक कुलवधू बनने की तैयारी करने लगती है। नारी आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र हो, नागर इसे नारी-स्वातन्त्र्य के लिए आवश्यक मानते हैं। अपने पिता द्वारा भतीजे की विधवा से अनैतिक सम्बन्ध एव विधवा की मृत्यु के परिप्रेक्ष्य में वनकन्या का कहना है—'भाभी का अपराध यह है कि वे औरत हैं और एकनामिकली फ्री नहीं हैं।' यह साहसी लड़की अपने पिता को दण्डित करवाने की ठान लेती है और अपनी निष्ठा, बुद्धिमत्ता, संयम और नारी-सुलभ माने जाने वाले गुणों से संयुक्त रहकर पाठक का मन जीत लेती है, सज्जन का तो जीतती ही है। इसी उपन्यास की तारा प्रेमविवाह करके औरों की नज़रों में हीरोइन है, अपनी नज़र में भी हीरोइन है। इस उपन्यास के कुछ पात्र तो जैसे यशपाल ही के डायलाग दुहराते हैं। मनिया सुनार की 'बड़ी बहू' मोहिनी साफ़ शब्दों में कहती है : मैं उनको बहुत लौ करती हूं···वो भी मुझसे बहुत लौ करते हैं पर···वो···वो मेरे मन के पति नहीं बन पाते···।" अपेक्षाकृत कम विकसित विचारों वाली यह नारी अपना दर्द निजी अनुभव के आधार पर व्यक्त करती है और चाहती है कि शादी का अधिकार मां-बाप के हाथ से छीन लिया जाए। वह तो शादी की रस्म ही के खिलाफ है। उसकी व्यथा एक मध्यवर्गीय नारी की व्यथा है जो पति की प्रकृति से समझौता नहीं कर पाती। बहुत बेबाकी से वह कहती है : "धंधा पीटें, बच्चे जनें, मार खायें, सबके बोल-कुबोल सहें और फिर भी हमारी निगोड़ी कोई कदर नहीं।" शीला और महीपाल भी विवाह-संस्था के विरोधी हैं। मिस शीला स्विंग डॉक्टर है, और विवाहित महीपाल से सम्बन्ध बनाए हुए है। महीपाल को शिकायत है कि उसकी पत्नी कल्याणी फूहड़ है। कहानी को छोड़ विचारों का पल्ला पकड़े रखें तो पता चलता है कि शीला स्विंग शादी को नारी-स्वतंत्रता के लिए बहुत बाधक नहीं मानती। वह माता-पिता द्वारा निश्चित एवं प्रेम-विवाह को समान धरातल पर रख देती है क्योंकि

असफलता तो दोनों ही में हो सकती है। वह नारी के लिए आर्थिक स्वतंत्रता ज़रूरी मानती है। बात साफ़ है कि कल्याणी आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होती तो अपनी पतिव्रत धर्म से बंधी मानसिकता के बावजूद इतना अन्याय न सहती। प्रेम-विवाह ही समस्या का हल नहीं है, यह तथ्य इसी उपन्यास में बड़ी बहू और कवि विरहेश के विवाह से सिद्ध हो जाता है। **अमृत और विष** में भवानी और उषा के प्रेम-विवाह की असफलता भी यही साबित करती है लेकिन रमेश और रानी का विवाह करवाकर अमृतलाल नागर स्पष्ट करते हैं कि प्रबुद्ध युवक-युवती को चाहिए कि सोच-समझकर जीवन-साथी चुनें। विवाह से पहले अपने पैरों पर खड़े होना बहुत ज़रूरी है, एक-दूसरे की प्रवृत्तियों की पहचान बहुत ज़रूरी है, फैसला करने से पहले अनेक पहलुओं पर गहराई से विचार करना बहुत ज़रूरी है और विवाह के बाद बहुत से मोर्चों पर समझौता भी बहुत ज़रूरी है। माता-पिता को न तो विवाह से पहले दखल देना चाहिए न बाद में। आज नारी जिस स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील है, उस पर सज्जन की यह टिप्पणी द्रष्टव्य है: "कहां की बराबरी? यह बराबरी भी एक झूठा 'ढोंग' है। इस बराबरी में स्त्री अब स्त्री न रहकर गुड़िया रह गई है। पुराने आचार-विचारों ने उसे दासी और वेश्या बनाया था, अब वह महज़ वेश्या है।" नागर के पास चित्रा राज़दान जैसा पात्र भी है। यह औरत पति के बर्थडे पर उसे अपने तमाम हसबैंड्स के नामों और पतों का एल्बम भेंट करना चाहती है। तीन-चार सौ पतियों का एक हरम बसाना उसकी तमन्ना है। चित्रा पुरुष द्वारा नारी के शोषण की प्रतिक्रिया है। **अमृत और विष** में मिसेज़ माथुर है जो नये फैशन में सजी-बजी, रंगी-चुनी कचालू-मटर की चाट जैसी लगती थी और जिसे अपने नाम के साथ 'माथुर' जोड़ना गवारा नहीं था। वह हर पुरुष को भोगना चाहती थी। लच्छू से उसने कहा था: "उमा—तुम उमा कहा करो। मुझे उस इंपोर्टेंट मुर्गे का नाम भी अपने साथ जोड़ना अच्छा नहीं लगता।" इस तरह की एक और नारी **महीप सिंह** के उपन्यास **'यह भी नहीं'** की शांता है जो 'मॉड' बनने की कोशिश में अधिकाधिक बेचैन होती जाती है। वह कमसिन सोहन को भगाकर बम्बई ले जाती है और वहां अनेक पुरुष बदलती है। लेकिन यह रास्ता न नागर को पसन्द है न महीप को। नागर की शीला स्विंग वनकन्या के सुहाग के सामने अपने को बहुत हीन महसूस करती है, चित्रा राज़दान के लिए सज्जन के द्वार बन्द हो जाते हैं। महीप का पंकज अपनी पत्नी तोषी के साथ संतुष्ट और प्रसन्न रहता है।

विवाह के बिना गृहस्थी बसाने वाली एक नारी **राजेन्द्र यादव** के उपन्यास **'उखड़े हुए लोग'** की जया है। वह सहयोगिनी और पत्नी है—विवाह की भांवरें लिये बिना। शरद की यह फब्ती मानो उन्हीं उपन्यासकारों के लिए है जो नारी-मुक्ति का अर्थ सेक्स-मुक्ति या गृहस्थ-मुक्ति मानते हैं, साथ ही सतीत्व के 'टेबू'

को तोड़ना उनके लिए संभव नहीं है : ''कहने को आप बड़ी आसानी से कह देते हैं कि हर स्त्री को घूमने-फिरने, बोलने-चालने की स्वतन्त्रता है, बस सेक्स की दृष्टि से वह एकनिष्ठ रहे, लेकिन सच पूछो तो मानसिक रूप से हम खड़े हैं वहीं जहां आज से बीसियों साल पहले डी० एच० लारेंस खड़ा था और जैसे हम बैठकर बातें कर रहे हैं वैसे ही 'लेडी चैटरलीज लवर' में बातें होती थीं।'' यौन-आवश्यकताओं, यथार्थ सेक्स चित्रण के नाम पर जो स्थितियां हमारे यहां मिलती हैं, वे सचमुच चैटर्लीज लवर की जूठन दिखाई देती हैं। जैनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय में ये स्थितियां हैं ही, उनके बाद भी इनकी काफ़ी बहुतायत रही है। **डूबते मस्तूल** की रंजना और **अचला : एक मनःस्थिति** की अचला सेक्सीय स्थितियों का एल्बम बनाने के लिए गढ़े गये पात्र हैं। रंजना पांच बार विवाह करती है और उसके जीवन की परिस्थितियों की विडम्बना के बावजूद उसके ये शब्द उपन्यास के मूल प्रेरक प्रतीत होते हैं : जिस उच्चवर्ग से मैं आती हूं, वहां नारी के लिए पुरुष मात्र पुरुष होता है और ···नारी मात्र विलास का साधन।'' अनेक पति बदलने वाली रंजना जानती है, मेरे पास मन नहीं है। नारी का मन होता कहां है? यह आदिम लोक-मानसीय मान्यता अव्वल तो नारी के पास मन जैसी चीज़ मानती नहीं है और जहां नारी को मन-युक्त करने का बहाना करती है, वहां भी उसे पुरुष के शारीरिक या मानसिक विलास में सहायक उपकरण बना देती है। नारी का अपना मन नहीं होता वह तो दूसरों की इच्छा के अनुसार पोज़ बदलती है। यह इच्छा चाहे लेखक की हो या पति/प्रेमी संज्ञा प्राप्त किसी पुरुष की। **चित्तकोबरा** में मनु महेश की पत्नी है लेकिन रिचर्ड की प्रेमिका है। महेश के लिए वह मात्र शरीर बन जाती है। चित्तकोबरा में जो सेक्सीय स्थितियां हैं उन पर काफ़ी गर्मागर्म चर्चा 'सारिका' में छपी द्रोणवीर कोहली की रिपोर्ट और सूर्यबाला की चुटीली टिप्पणी से छिड़ चुकी हो चुकी है। मनु की अदम्य आकांक्षा है—'मैं बस एक विशाल उरोज होती।' ऐसी ही स्थितियों को उछालने-उभारने वाली कृतियों के लिए देवेश ठाकुर लिखते हैं : ''वास्तविक जीवन के स्पन्द से रहित कृतियां 'शो केसों' में सजे हुए 'माडल' तो हो सकती हैं लेकिन व्यावहारिक स्तर पर उनका कोई भी उपयोग नहीं हो सकता।'' प्रयोग के नाम पर इन कृतियों को साहित्य के गले नहीं उतारा जा सकता। उपन्यास को गप्प और बम्बइया बायस्कोप का पर्यायवाची मानने वाला उपन्यासकार किस्सागोई कर सकता है, अपनी रचना को जीवन की ज़िंदा तस्वीर नहीं बना सकता। मनोहरश्याम जोशी **कुरु कुरु स्वाहा** में अपनी 'पहुंचेली' में चित्रलेखा की वाक्पटुता और दार्शनिकता देकर भी किस्सागोई से ऊपर नहीं उठ पाए। वह वारांगना वक्ष से पल्लू हटाकर पुरुष की हथेली 'बिग क्लोज अप' पर रख देती है, वह बारह साल की उमर में 'कोंचा कोंची के सारे स्विच' दबाकर देख चुकी है और जोशी जी 'टॉप ऐंगल वाले शाट' में उघरी टांगों, थोड़ी दूर

पड़े सैण्डलों, खुले ब्लाउज़, गले पर घूमती ब्रा में बलात्कार और हत्या का मिला-जुला आभास लेते रहते हैं—उत्तेजनाहीन सेक्स का नया दृष्टान्त (?)···

हिन्दी उपन्यास के व्यापक फलक पर एक तरफ **मालती** है, दूसरी तरफ **मनु** है। बीच में कहीं लाल के **काले फूल का पौदा** की **गीता** है जो पढ़ी-लिखी होकर भी पुराने संस्कारों की युवती है। बहुत कोशिश करने पर भी वह पराये पुरुष के स्पर्श को 'टेक इट ईजी' के पति-वाक्य के अनुसार स्वीकार नहीं कर पाती।

नारी मात्र योनि या उरोज नहीं है और फिर सन्तान-प्राप्ति के बाद उसके व्यक्तित्व के मूल्य पूरी तरह बदल जाते हैं। नारी की प्रजनन-सम्बन्धी भूमिका उसे पत्नी बनाती है तो मां भी। रेखा ने भुवन के पुत्र को कोख में पाकर अपने को सम्पूर्ण समझा था, मनु भी उसी तरह गर्भ-धारण की कल्पना करती है, शांता अपने पुत्र का मोह छोड़ नहीं पाती। संतानोत्पत्ति के संदर्भ में जो नारी की भूमिका है, वह नारी की मोनोपली है। वह नारी का सौभाग्य भी है, दुर्भाग्य भी।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में कामुक सेक्सीय स्थितियां नहीं हैं तो यह कोई आक्षेप-योग्य तथ्य नहीं है। प्रश्न यह है कि मालती और मेहता का भावी सम्बन्ध क्या होगा? मालती-मेहता एक घर में रहते हैं लेकिन प्रेमचन्द ने ईडन के जिस बाग़ में अपने आदिम और हव्वा को रख दिया है, उस बाग का वर्जित फल चखने का हक उन्हें आलिंगन के बाद भी देने को तैयार क्यों नहीं हैं? यदि तैयार हो भी जाएं तो सात भांवरों से ही क्या फ़र्क पड़ जाता है?

मालती से नारी की जो यात्रा शुरू हुई है, उसमें अब तक एक पीढ़ी का—कम से कम एक पीढ़ी का—अन्तराल आ चुका है। यथार्थ काफ़ी आगे बढ़ा है। **मालती** अब भी एक क्लासिक दृष्टांत के रूप में हमारे सामने खड़ी है, यह प्रेमचंद की उपलब्धि है। **मालती** के चरित्र द्वारा जो प्रश्न हमारे सामने उठाए गये थे उनके उत्तर तलाशते हम कुछ इस तरह की इबारत पर पहुंच जाते हैं:

(१) प्रेम नारी के लिए वर्जित नहीं, (२) विवाह सम्बन्धी निर्णय का हक पढ़े-लिखे युवक-युवती को दिया जाना चाहिए, उनके मां-बाप को नहीं, (३) नारी-स्वतंत्रता के लिए उसकी आर्थिक स्वतंत्रता ज़रूरी है, (४) सतीत्व और शुचिता सम्बन्धी मान्यताओं और वर्जनाओं में काफ़ी ढील देने की ज़रूरत है, (५) पति-पत्नी की आपस में न बने तो कैद में छटपटाते रहने की अपेक्षा तलाक लेना बेहतर है, (६) मुक्त भोग समस्या का कोई समाधान नहीं है।

यहीं पहुंच कर मेरा शोधार्थी मेरा साथ छोड़ने लगता है और कवि-मन मुखर होने लगता है। देवेन्द्र सत्यार्थी के उपन्यास **'कथा कहो उर्वशी'** में एक लतीफ़ा-स्टाइल डायलाग है: ''नेपोलियन ने कण्डोरसेट से कहा—'मैं नहीं चाहता कि नारी राजनीति में हस्तक्षेप करे।' और उसके उत्तर में मैडम ने कहा—''आपका यह कहना तो ठीक है, सेनापति महोदय! पर जिस देश में स्त्रियों के सिर काटने की

प्रथा हो, उस देश में यह बात स्वाभाविक है कि स्त्रियां भी यह जानना चाहें कि हमारे सिर क्यों काटे जा रहे हैं।" प्रेमचंद के **कायाकल्प** की मनोरमा कुछ ऐसी ही बात सीता-वनवास के संदर्भ में कह चुकी थी : 'जब राजा से साधारण प्रजा न्याय का दावा कर सकती है तो क्या उसकी स्त्री नहीं कर सकती ?' लेकिन इस वाक्य के पहले मनोरमा ने जो कुछ कहा था, वह प्रेमचंद की मनोवृत्ति समझने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। मनोरमा राम के न्याय पर प्रश्न जड़ने से पहले मान लेती है कि 'स्त्री को पुरुष की आज्ञा माननी चाहिए।' यह आदर्श-वाक्य देने वाला पुरुष गोदान में भी मौजूद है। मुझे लगता है, मालती की कथा, जैसी गोदान में कही गयी है, अधूरी है। इसी तरह सुनीता, रेखा, शैल, वनकन्या, रंजना, शांता, मनु—सभी पढ़ी-लिखी, विचारशील, अनिंद्य सुन्दरियों के माध्यम से कही गयी नारी-कथा भी अधूरी है। आज की नारी पुरुष की भूख का शिकार नहीं बनना चाहती; वह यह भी नहीं चाहती कि उसके किस्से गढ़ कर कोई अपनी विलास-वृत्ति की तृप्ति करे, वह पुरुषों द्वारा बनाये गए सिद्धान्तों और कानूनों को आंखें मूंदकर मानने के लिए तैयार नहीं है। नारी की पीड़ा, उसका मूक प्रतिवेदन, उसका स्पष्ट विद्रोह राजनीतिक बहस की ही चीज़ नहीं, साहित्यिक दायित्वों को भी खुली चुनौती है। **कथा कहो उर्वशी** की नकल पर **कथा कहो मालती** शब्द मेरे मन में गूंजते हैं लेकिन कवि-मन तुकबन्दी कर देता है—**कथा कहो मालती, व्यथा कहो मालती।**

कुहरिल आकाश पर बिखरा अतीत और तलाक

□ डॉ० अनिल गोयल

नर-नारी जीवन-रथ के दो पहिए हैं। दोनों के परस्पर सहयोग से उनका निजी, परिवार तथा समाज का कल्याण एवं विकास होता है। शास्त्रवेत्ताओं ने दोनों के इस गठबंधन के लिए विवाह संस्था की रचना की परन्तु, 'पाश्चात्य नारी जागरण आन्दोलन' तथा आधुनिक युगीन मूल्य-संक्रमण की स्थिति ने विवाह-सस्था के सामने प्रश्नचिह्न लगाकर तलाक प्रथा को जन्म दिया है; जिसके अनुसार पति और पत्नी कानूनन वैवाहिक संबंधों का विच्छेद ले सकते हैं। तलाक-स्थिति को समझाते हुए कमलेश्वर कहते हैं—"पति और पत्नी के संबंधों में आमूल परिवर्तन हुआ है। नारी अब कानूनी तरीके से भी स्वतन्त्र सत्ता प्राप्त करने जा रही है। इन दोनों कारणों ने पति-पत्नी संबंधों को बहुत ज्यादा बदला है जिससे विवाह की परम्परागत संस्था के सामने प्रश्नचिह्न खड़ा हो जाता है।"

स्वातन्त्र्य-युग के कहानीकारों ने तलाक का चित्रण—तलाक स्थिति के उभरने, तलाक होने तथा तलाक हो जाने के बाद के परिप्रेक्ष्य में किया है—"आज की नयी कथा-चेतना नारी-पुरुष के आपसी संबंधों के संक्रमण और संकट को ही चित्रित नहीं करती, या उन्हें अलग-अलग स्थितियों में ही नहीं पकड़ती—उन्हें एक-दूसरे से अलग होने और रहने की स्थिति में जांच लेना चाहती है और पाती है कि मूल्यों का यह चतुर्दिक् रुंधाव वहां कितना सांघातिक और निर्णायक है।"

तलाक का मूल कारण है आपसी मतभेद की स्थिति। समझौतावादी जीवन-पद्धति पर जीने वाले पति-पत्नी जहां पारिवारिक सुखों की बढ़ोतरी में सहायक होते हैं वहीं समझौता कर सकने में असमर्थ पति-पत्नी प्राप्य सुखों को भी तबाह कर डालते हैं। गैरसमझौतावादी नियति के परिणामस्वरूप तलाक की स्थिति का चित्रांकन करने का सफल प्रयास किया है राजेन्द्र यादव ने अपनी कहानी **भविष्य के आसपास मंडराता अतीत** में। परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में संलग्न पत्नी पति की तरफ से सहयोग न पाकर अपनी असमर्थता प्रकट करते

हुए कहती है—"मैं क्या इतना भी नहीं समझती थी कि विवाहित जीवन का दूसरा नाम एडजस्टमेंट है। लेकिन पांच साल मैंने, सिर्फ मैंने ही तो एडजस्टमेंट किया है—खाना, रहना, आदतें…तुम्हारे लिए क्या नहीं बदला है? लेकिन तुम…तुम? कब तक कोई एडजस्टमेंट ही करता चला जायेगा अकेला?" परन्तु पति की दृष्टि में वह समझौता नहीं करती, कुछ शर्तों के आधार पर संबंध निभाती है—"नहीं तुम एडजस्टमेंट नहीं करती, सिर्फ अपनी शर्तें रखती हो…वही करती रही हो।" इस पर भन्नाती हुई वह पति से अपना ही संबंध नहीं तोड़ती अपनी बच्ची का भी तोड़ डालती है—"तब ठीक है, तुम अपनी उस हूर की परी के साथ रहो, मुझसे और मेरी बेटी से तुम्हें कोई मतलब नहीं है। मैं इसे खुद पढ़ा-लिखा लूंगी और तुमसे अच्छा पाल लूंगी।…बिना बाप के हज़ारों बच्चे पलते हैं…।"

निःसन्देह यह समझौता पति एवं पत्नी—दोनों की तरफ से जरूरी है अन्यथा एक की बौद्धिकता दूसरे की भावुकता को चुनौती दे देती हैं क्योंकि विरोध की स्थितियां पैदा होती हैं घरेलू मोर्चे पर—जहां स्त्री-पुरुष की अर्द्ध इकाइयों के परिपूर्ण इकाइयों में संतरित होने क रास्ते में हमारे संस्कार आड़े आते हैं।" अपनी सांस्कारिक परवशता तथा भावुकता के कारण **खामोशी को पीते हुए** (निरुपमा सेवती) की नायिका पति की बौद्धिक आवश्यकता को परखने में असफल ही नहीं होती बल्कि तलाक के फलस्वरूप पत्नीत्व और मातृत्व दोनों से बचित हो जाती है।

पति-पत्नी के संबंधों में अजनबीपन एवं संदेह भी तलाक का कारण माना गया है। अजनबीपन के कारण दोनों एक-दूसरे को समझ नहीं पाते, न ही समझौता कर पाते हैं। फलतः अलग होने का निर्णय कर लेते हैं। मोहन राकेश की प्रतीकात्मक कहानी **गुंझल** में नायिका न तो कुछ सोच पाती है, न सोचना चाहती है क्योंकि निरन्तर सोचने से हर बात उलझ जाती है और उसकी अनिर्णयात्मक स्थिति को हठ मानकर पति यह कहता हुआ अलग होने का निर्णय कर लेता है—"इसका मतलब है कि हम लोगों का संबंध आज से और इसी समय से समाप्त हो जाता है?" ऐसे स्वेच्छापूर्वक तलाक लेने वाले पति-पत्नी तलाक को कोई बड़ी बात नहीं मानते अतः सामाजिक प्रतिरोध का उत्तर बड़े स्वाभाविक ढंग से देते हैं—"दुनिया में बहुत से पति-पत्नियों की आपस में नही पटती; क्योंकि वे एक-दूसरे के लिए नहीं बने होते।"

विवाहपूर्व तथा विवाहोत्तर प्रेम भी पति-पत्नी के मध्य तनाव की स्थिति पैदा कर देता है और यदि उसके साथ औरत का अहं जुड़ जाये तो वह और भी सांघातिक हो उठता है। राजेन्द्र यादव की **टूटना** कहानी नारी के इसी अहं एवं विवाहोत्तर प्रेम की अभिव्यक्ति है। किशोर की पुरुषोचित भावनाओं के साथ जब लीना समझौता नहीं कर पाती तो अलग हो जाती है—"देखो किशोर आज से—

बल्कि इसी क्षण से हम लोग साथ नहीं रहेंगे। मैं भी सोच ही रही थी कि अब तुमसे बात कर ही ली जाये। न तुम अन्धे हो, न बहरे। तुम सिर्फ इन्फीरियॉरिटी काम्पलेक्स के मारे हुए हो इसलिए तुम्हें मेरी हर बात वह नहीं लगती जो होती है। उसके पीछे तुम्हें और-और बातें दिखती हैं।" इसी संदर्भ में अंकित है **एक और ज़िन्दगी** (मोहन राकेश) जहां नायिका वीना स्वाभिमान से भरी थी जिसके कारण वह प्रकाश से निभा नहीं पायी और शादी के कुछ माह बाद ही अलग रहने लगी। अन्ततः तलाक लेकर बच्चे—पलाश—के साथ अलग रह कर ज़िन्दगी की विभीषिकाओं से जूझने लगी।

मात्र सेक्स अथवा काम-संबंधों के आधार पर पति-पत्नी संबंधों की सार्थकता स्वीकारने वाले गृहस्थ-जीवन में तलाक की सिम्तें अपेक्षाकृत जल्दी ही उभरती हैं क्योंकि प्रेम एक भावुक अनुभव है जिसके अतिरेक में व्यक्ति अनावश्यक संबंध जोड़ता है परन्तु जीवन की अर्थजन्य परिस्थितियां इस संबंध की न्यूनताएं उजागर करती हैं और सेक्स का रोमांच शिथिल पड़ने लगता है; परिणामतः पति-पत्नी के पास संबंध विच्छेद के अतिरिक्त कोई रास्ता शेष नहीं रह जाता। काम-संबंधों के कारण जिन कहानियों में तलाक की स्थिति उभरी है उनमें वल्लभ सिद्धार्थ की **खुला हुआ दरवाजा,** दीप्ति खंडेलवाल की **संधिपत्र** और पृथ्वीराज मोंगा की **सुरंग से होते हुए** कहानियों की चर्चा की जा सकती है। **खुला हुआ दरवाजा** में निनी और समीर के अलगाव का कारण है सेक्स संबंधों को विवाह संबंधों का 'पास' मानना अतः छटपटाती हुई निनी कहती है—"असम्भव। आई कान्ट टालरेट हिम। वह मुझे पत्नी नहीं सिर्फ औरत का शरीर समझता है। वन मोस्ट असेंशल कमोडिटी। अगर उसे मुझसे कोई लगाव हो सकता है तो सिर्फ इसलिए कि मैं उसके लिए एक जरूरत हूं। ही इज़ ए ब्रूट।" इसी तरह 'सुरंग से होते हुए' की नीरा हरबंश जैसे पति से तलाक ले लेती है क्योंकि वह कामुक व्यक्ति है जिसकी हर पिपासा की पूर्ति का अन्त बेडरूम में होता है और नीरा अपने अस्तित्व को बिस्तर की सिलवट से कुछ ऊपर की चीज़ मानती है। लेकिन 'संधिपत्र' का रोहित सोमा के जिस अंग प्रदर्शन पर रीझ कर प्रेम-विवाह करता है बाद में सोमा के उसी अंग-प्रदर्शन पर प्रतिबंध लगाने शुरू करता है। परिणामस्वरूप सोमा असहिष्णु होकर अलग रहने का निर्णय कर लेती है।

आज इस भौतिकवादी युग में सर्वगुण-सम्पन्न अर्थात् आदर्श पति की सेवा में रत रहने की मान्यता बदल चुकी है। किन्हीं परिस्थितियों में यह देखा गया है कि नारी पति को कुव्यसनी देखकर स्वयं भी कुमार्ग अपना लेती है फलस्वरूप तलाक की नौबत आ जाती है। भीष्म साहनी की कहानी **'रास्ता'** में इसी विषय को उकेरा गया है। गोविन्दा से मालकिन कहती है—"मैं क्यों यहां पड़ी-पड़ी गलती रहूं? वह कर सकता है तो मैं भी कर सकती हूं। उसे मेरी परवाह नहीं तो मैं ही

क्यों उसकी परवाह करूं?" लेकिन '**कई कुहरे**' (सुरेश सिन्हा) की नायिका कुव्यसनी पति से होड़ तो नहीं लेती किन्तु तलाकपत्र को स्वीकार कर लेती है। महीपसिंह की कहानी '**लोग**' में भी नायिका कुव्यसनी पति से अलग हो जाती है और नौकरी करके जीवनयापन करती है।

यह अहंवादी तथा शंकालु वृत्ति की स्त्रियां घर में रहकर बेघर होने की अनुभूति सह नहीं पातीं, पति के साथ रहकर भी अकेलेपन से मुक्त नहीं हो पातीं तो अलग होने का विकल्प चुन लेती हैं, परन्तु अलग होना भी अपने में उन्हें कोई सुख नहीं दे पाता है। इसी परिप्रेक्ष्य में अवलोकनीय है उषा प्रियम्वदा की कहानी '**नींद**'। कहानी की नायिका स्वेच्छा से पति से विलग होकर अकेली रहने लगती है परन्तु अंधेरी रातों में अकेले होने पर अपना अकेलापन उसे खलने लगता है और वह एक उपयुक्त साथी की तलाश में जुट जाती है—"मैं पूर्णतया स्वस्थ हूं। मैं केवल साथ ढूंढती हूं, कम्पेनियनशिप···।" और इस कम्पेनियनशिप के अभाव में कभी-कभार वह आत्महत्या तक को आतुर हो उठती है। प्रदीप पंत कृत '**जोड़ा**' इसी कोटि की कहानी है जहां मिसेज माथुर अकेलेपन के कारण आत्महत्या करना चाहती हैं।

कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि अलग होते समय विकल्प के रूप में उनके सामने कोई अन्य व्यक्ति रहता है। अतः दोनों शान्त स्वभाव से अलग होने का निर्णय कर लेते हैं। राजेन्द्र यादव विरचित '**छोटे-छोटे ताजमहल**' में तनाव उभर आने पर राका और देव स्वेच्छा से अलग होने का निर्णय ले लेते हैं ताकि एक-दूसरे के लिए बाधा बनने के बजाय वे अपने संबंधों में कभी मित्र रूप में मिल सकने की गुंजाइश बनाए रख सकें। अतः अंतिम संध्या ताजमहल में व्यतीत करते हुए देव कहता है—"मैंने और राका ने निश्चय किया है कि अब हम लोगों को अलग ही हो जाना चाहिए···दोनों तरफ से शायद सहने की हद हो गई है··· नसों का यह तनाव मुझे या उसे पागल बना दे, या कोई ऐसी-वैसी बेहूदगी करने पर मजबूर करे इससे अच्छा है कि दोनों अलग ही रहें। चाहे तो वह किसी के साथ सैटिल हो जाये। वह मुनमुन को रखना चाहती है, रखे। वैसे जब भी वह उसे बाधक लगे निःसंकोच मेरे पास भेज दे।"

'**सुरंग से होते हुए**' में नीरा हरबंश से तलाक लेकर सुधीर से शादी कर लेती है। उसे लगता है····"सुधीर ने उसे बहुत जगह थामा है। वह उसकी बहुत आभारी है। पिछले दो सालों से उसका कितना ख्याल रखा है। बस अब, कुछ ही दिनों की बात है। निःसंदेह सुधीर-सा ही कोई उसके ख्यालों में, उसके सपनों में बसा हुआ था।" इसी प्रकार **सुनहरे देवदार**(निरुपमा सेवती) में रश्मि अर्थ-तनाव के कारण पति से अलग हो जाती है—"तुम फिर मुझे गलत समझ रहे हो, ठीक है हम अलग हुए। मैं अभाव में नहीं जी सकती।" और इस अर्थ-अभाव की पूर्ति वह

पुनः शादी के बंधन में बंध कर करती है।

एक अन्य व्यक्ति एवं सुखद गृहस्थी की चाह में मन्नू भंडारी की **'बन्द दराजों का साथ'** की नायिका मंजरी एकमात्र सन्देह के कारण विपिन से तलाक ले लेती है क्योंकि उसका मत है····"इस युग में आशा करना ही मूर्खता है, क्योंकि आज ज़िन्दगी का हर पहलू, हर स्थिति और हर संबंध एक संभावनाहीन समस्या हो कर ही आता है जिसे सुलझाया नहीं जा सकता है, जिनसे आदमी निरन्तर बिखरता और टूटता चलता है। अब एक ही आशा उसके हृदय में शेष थी··· "जिस सहज ढंग से वह सारी स्थिति उभरी है उसी तरह नयी ज़िन्दगी का रास्ता भी खोज लेगी।" अतः मंजरी दिलीप के साथ पुनः विवाह करके गृहस्थ-जीवन जीने लगती है।

निःसंदेह पति-पत्नी अलग होकर नयी घर-गृहस्थी बसा लेते हैं किन्तु शीघ्र ही वह महसूस करते हैं कि घर में कुछ कमी है क्योंकि जो चैन वह चाहते हैं वह यहां नहीं दिखाई देता, लेकिन इसका कारण घर या उस नये व्यक्ति का दोष नहीं प्रत्युत उनके अपने ही संस्कार होते हैं। पहली बार वह जिस उत्साह से घर बसाते हैं—चाहकर भी उसे भुला नहीं पाते, न चाहने पर भी अतीत एक छाया की भांति उनके जीवन पर मंडराता रहता है। महीप सिंह की कहानी **'घिराव'** में सुम्मी अमर से अलग होकर ओमी के साथ घर बसाकर रह रही है लेकिन अमर की उपस्थिति का आभास उसे बेचैन कर देता है—"मैं अमर से डरती नहीं···शायद डरती भी होऊं। डर इस बात का नहीं है कि वह मुझे नुकसान पहुंचाएगा। मैं जानती हूं वह बुज़दिल किस्म का आदमी है। पर पता नहीं क्या बात है, अपने आस-पास उसकी उपस्थिति का आभास मुझे बेचैन कर देता है···?"

तलाकोत्तर गृहस्थ जीवन की इसी दुष्परिणति को निरूपित किया है मन्नू भंडारी ने **'बन्द दराजों का साथ'** कहानी में। मंजरी दिलीप के साथ स्वेच्छा से विवाह करती है लेकिन उस दिन वह दिलीप से भी ऊबने लगती है जिस दिन दिलीप असित की फीस देते समय कुढ़कर बोलता है—"यह स्कूल काफी महंगा है। इस महीने यों भी काफी खर्च हो गया है।" अतः मंजरी सोचती है—"असित दिलीप का बच्चा होता तब भी वह यह बात कह सकता था। पर असित दिलीप का बच्चा नहीं था और क्योंकि संदर्भ दूसरा था इसलिए बात का अर्थ भी दूसरा हो गया।" अब प्रथम बार मंजरी को अपनी नौकरी छोड़ने का अफसोस हुआ और परिणामस्वरूप मंजरी और दिलीप के मध्य भी विभाजन की रेखा खिंच गयी— "बाहर से कहीं कुछ नहीं था···न बातचीत में, न व्यवहार में, पर अनजाने और अनचाहे ही भीतर से जैसे मन बंट गये थे। ज़िन्दगी बंट गयी थी। इस बार हालांकि प्रसंग और स्थितियां दूसरी थीं, पर बंटने की पीड़ा वही थी।

इसी तरह **'सुरंग से होते हुए'** की नीरा सुधीर से ऊबने लगती है और

सुनहरे देवदार की रश्मि भी नये पति से ऊब जाती है और पति की अनुपस्थिति में पुराने पति से कुछ दिन ठहरने के लिए अनुनय करती है— "पर तुम ज्यादा दिन यहां रहते तो अच्छा था। क्योंकि वह तो काम की वजह से पन्द्रह-बीस दिन बाद ही आयेंगे। काफी समय था।"

हिन्दी कहानी के केवल नारी-पात्र ही नहीं पुरुष-पात्र भी इस तलाकोत्तर यन्त्रणा के कारण संतप्त रहते हैं। **एक और जिन्दगी** में प्रकाश निर्मला से शादी करके भी वीना के साहचर्य को भुला नहीं पाता और रामदरश मिश्र की **एक भटकती हुई मुलाकात**' में सुधांशु तथा अंजना सदेह के कारण अलग हो जाते हैं, सुधांशु पुनः सीमा के साथ विवाह के बंधन में बंध जाता है लेकिन सुखपूर्वक जी नहीं पाता। अंजना बच्चे, मुनमुन, को लेकर दुःखी रहती है। उधर सुधांशु सीमा के विफर जाने के डर से अंजना से बात भी नहीं कर पाता।

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि तलाक संबंधों का जिक्र कहानीकारों ने महा-नगरीय एवं नगरीय परिवेश में रहकर ही किया है और इसका मूल कारण पति-पत्नी की पारस्परिक ऊब, तनाव, बौद्धिक स्वच्छन्दता, अत्यधिक कामुकता तथा विवाहपूर्व एवं विवाहोत्तर प्रेम-संबंध है।

नदी, नाव, मांझी और कश्मीरी लोक-जीवन

□ शशि शेखर तोषखानी

नदी और नाव का पूर्वैतिहासिक उषाओं से ही कश्मीरी लोक-जीवन से एक अभिन्न-अछिन्न सम्बन्ध रहा है। घाटी के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रवाहित होने वाली वितस्ता कश्मीरियों के लिए केवल एक भौगोलिक दृश्य-सत्ता, एक चक्षु-गोचर जल प्रवाह मात्र नहीं, कश्मीर के जीवन की गति और प्रकृति का, लोक-संस्कृति और लोकधर्म का चैतन्य प्रतीक है। अपने बहाव के अधिकांश मार्ग पर वह एक धीर-शांत-सौम्य धारा है, उद्दाम-उन्मत्त-उच्छृंखल-क्रुद्ध प्रवाह नहीं। कम से कम अपने उद्‌गमस्थल वेरीनाग से लेकर बारहमुला से कुछ आगे तक—कश्मीर में प्रचलित उक्ति के अनुसार 'खन्नाबल से खन्दनयार तक'—उसका यही सवत्सा-धेनु-सा स्वरूप है जिसके सामने कश्मीरी मन आदिम युगों से नत होता आया है। उसके साथ भय या आतंक का भाव नहीं, शांत-सहज मन से अपनी दिशाएं, अपनी नियति स्वीकारने का भाव जुड़ा है। इसी नदी में बहुत कुछ ऐसा है जो एक कश्मीरी के रक्त में, स्वभाव में उतर आया है—मानो यह केवल बाहर ही नहीं भीतर उसकी चेतना की गहराइयों में भी कहीं प्रवाहित होती है। अन्याय को, अनाचार को मौन सह लेने की हद तक भी वह प्रायः अनुत्तेजित और धैर्यवान रहा है। उत्तेजित वह यदा-कदा हुआ भी हो पर अधिकतर उस सीमा तक नहीं कि उत्तेजना उग्र क्रिया का, प्रतिकार का रूप धारण कर ले। यही कारण है कि मंगोल और हूण, मुग़ल और यवन शताब्दियों उसकी पीठ पर सवार रहे हैं। लेकिन प्लवन समय की क्रुद्ध वितस्ता की ही भांति जब भी अन्याय, आतंक, क्रूरताओं की अति से विक्षुब्ध हो उसके मन में धैर्य के सभी तटबन्धों को तोड़ता हुआ विद्रोह का ज्वार जागा है, इतिहास को अपनी दिशा बदलनी पड़ी है।

नदी के साथ-साथ पहाड़ ने भी एक कश्मीरी के स्वभाव को, व्यवहार को निर्मित निर्धारित किया है; उसके विश्वास-विचार, कला-दर्शन, धर्म-संस्कृति सबको बहुत कुछ प्रभावित-प्रेरित-परिभाषित किया है। पहाड़ ने उसके चरित्र को एक

विशेष गरिमा से मंडित किया है, उसकी विचार-दृष्टि को एक बौद्धिक-ऊर्ध्वोन्मुख भंगिमा प्रदान की है। लेकिन साथ ही बाह्य सम्पर्क और प्रभावों के प्रति उसे कुछ सशंक भी बनाया है। यही कारण है कि बाहरी आदमी को कश्मीर नें प्रायः संदेह की दृष्टि से देखा जाता रहा है। वह सैलानी के रूप में यहां आये, यहां की वर्णनातीत प्राकृतिक छवियों को छककर आंखों-आंखों में पी ले—स्वागत है—लेकिन उससे अधिक वह यहां की जिन्दगी में खलल न ही डाले तो अच्छा—'और न बिलमो, जाओ !" इसके बावजूद पर्वतों के पार से यहां प्रभाव आये हैं, यहां के जीवन, संस्कृति, विश्वासों को रौंदते हुए और अनेक स्तरों पर मूल को उन्मूलित कर उसके स्थान पर दृढ़ता से प्रत्यारोपित भी हुए हैं। लेकिन इन्हीं पहाड़ों से प्रवाहित रक्तवाहिनी नाड़ियों-सी फैली हुई शत-शत जलधाराओं ने इन प्रभावों को भी यहां की हवा, यहां की मिट्टी के अनुकूल नया रूप दिया है।

कश्मीर के अधिकांश जल-मार्ग नौकायन के लिए काफी अनुकूल और सुगम रहे हैं। अतः सभ्यता के प्रथम प्रभात से ही उनकी चपल जल-लहरियों पर नौकाएं दोलायमान रही हैं। यहां के प्राचीन लोक-धर्म और लोकजीवन के प्रथम आलेख, नीलमत पुराण में आयी एक कथा के अनुसार वैवस्वत मनु के काल में जब जल-प्रलय हुई तो स्वयं पार्वती ने एक नौका का रूप धारण किया और इन्द्र ने मत्स्य का। मत्स्य-चालित यह विचित्र नौका भावी जीवन और संस्कृति के बीजों को वहन करती हुई कश्मीर के एक पर्वत-शिखर से जा लगी जिसका नाम ही नौबन्धन पड़ा। प्रलय-जल के अवसान के बाद भी कश्मीर शताब्दियों तक सतीसर नाम की एक विशाल झील बना रहा जिसमें सती नौका-विहार किया करती थीं। कश्यप ऋषि के प्रयत्नों से बारहमुला (कश्म० वरेमुल सं० वराह+मूल) के पास पर्वतीय चट्टानों के काटे जाने पर पानी बह निकला और भूमि उभर आयी जिस पर मनुष्यों ने वास करना शुरू किया। जल के उदर से भूमि के उद्धार की यह मिथक-कथा एक वास्तविक भौतिक तथ्य की स्मृति को सुरक्षित रखे हुए है। ऊंचे पठारों पर, जिन्हें 'करेवा' कहा जाता है, जल के सिंघाड़ों के अवशेष तथा शंकराचार्य आदि पहाड़ियों पर मिलने वाली सीपियों ने भू-वैज्ञानिकों को इसी निष्कर्ष पर पहुंचाया है कि घाटी का जन्म जल के बीच से हुआ है। आज भी कश्मीर का काफी क्षेत्र झीलों, जलाशयों और नदियों के जाल से ढंका हुआ है जिनके तटों पर यहां अधिकांश लोग बसे हुए हैं।

नीलमत तथा राजतरंगिणी के पृष्ठों में प्रतिबिम्बित प्राचीन कश्मीरी लोकमानस ने कश्मीर की हर भौगोलिक सत्ता को पार्वती से जोड़ा है। वह ही नौका, नदी और नाविक के रूप में पूर्वैतिहासिक धुंधलके में यहां अवतरित हुई है। कथा है कि ऋषि कश्यप की प्रार्थना पर पार्वती ने ही ताप-पापहरा नदी वितस्ता का रूप धारण किया जो शिव के शूलाघात से उत्पन्न एक 'वितस्ति' भर

चौड़े गर्त्त से प्रकट हुई जिसे आज वेरीनाग के नाम से जाना जाता है। प्राचीन और मध्यकालीन कश्मीर में वितस्ता नदी, जिसे कश्मीरी 'व्यथ' कहकर पुकारते हैं, का जन्म-दिन एक उत्सव—'व्यथ-त्रुवाह (वितस्ता-त्रयोदशी)—के रूप में मनाया जाता था। उस दिन वितस्ता की धारा फूलों से अर्चित होती थी, विसर्जित किये गये दीपों की अगनित पांतों से झलमला उठती थी। इस्लाम के आगमन के बाद भी बहुत देर तक उत्सव यहां मनाया जाता रहा है। इतिहासकार क्षीवर के अनुसार सुलतान जैनुलाबदीन (१४२०-१४२७ ई०) इस उत्सव में विशेष रुचि और उत्साह से भाग लेता था। नदी पूजन की यह प्रथा अब मृतप्राय है—भले ही पौराणिक संस्कारों से युक्त कोई भट्टिनी (क० बटन्य, अर्थात् कश्मीरी पंडित स्त्री) या भट्ट (क० वट्, अर्थात् कश्मीरी ब्राह्मण) उसे फूल चढ़ाये तो चढ़ाये, उसमें देवता का निर्माल्य बहाये तो बहाये या फिर विवाह और यज्ञोपवीत के अवसरों पर, या मृत्यु के बाद की रीतियों आदि के अवसर पर प्रथापालन के लिए वितस्ता-तीर पर पूजन या पितर-तर्पण किया जाए। अन्यथा विसर्जन के नाम पर तो उसमें अब नगर भर का कूड़ा ही विसर्जित होता है।

प्रथाएं और कथाएं भले ही भुला दी गयी हों, पर आज भी वितस्ता (और अन्य नदियों) से हर कश्मीरी का गहरा लगाव है—एक ऐसा अनुराग भाव जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। शताब्दियों से यहां की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग जल के वक्ष पर नौकाओं में ही रहता आया है। इन मल्लाह या मांझी लोगों के पास अचल सम्पत्ति नहीं के बराबर है। वे पूर्णतया नदी के होकर रह गये हैं। कश्मीरी भाषा में इन्हें 'हान्ज़' कहा जाता है। हिन्दी 'मांझी' शब्द से इसका कोई सम्बन्ध है या नहीं यह स्पष्ट नहीं और न यह कि यह शब्द आया कहां से। हो सकता है ध्वनि-विपर्यय के कारण 'मंझ' का 'हंज' हो गया हो या फिर यह मूलतया ऑस्ट्रिक या निषाद भाषा का शब्द हो। नदी के पार ले जाने वाले मंझियों को 'करनोव' कहा जाता है अर्थात् 'कर' या शुल्क लेकर नाव में बिठाकर नदी के पार ले जाने वाला। कश्मीरी भाषा में पार ले जाने के लिए शब्द है 'तारून' जो संस्कृत 'तारणं' से विकसित है। 'होंज़' एक जातिवाचक नाम है और इसके अंतर्गत नाव के द्वारा अपनी आजीविका कमाने वाला वह सारा वर्ग आ जाता है जिसमें कुंजड़े, सिंघाड़ा बीनने वाले, मछियारे, व्यापारिक माल तथा अन्य प्रकार का बोझा लादने वाले सभी लोग शामिल हैं। राजतरंगिणी में इनके लिए 'निषाद' नाम का प्रयोग हुआ है। कश्मीर के बुर्जहोम (सं० भूर्जाश्रम) नामक स्थान पर किये गये उत्खनन से जो अवशेष प्राप्त हुए हैं, वे भी इस बात कीं ओर संकेत करते हुए प्रतीत होते हैं कि कभी निषाद या ऑस्ट्रिक जाति की कोई शाखा-प्रशाखा यहां की धरती की प्रथम स्वामिनी थी। जिस उच्छ्वसित कण्ठ से नीलमत पुराण में वितस्ता आदि नदियों की महिमा का गायन और स्तवन

किया गया है, वह भी किसी नदी-पूजक जाति के लोगों के आदिवासी होने की बात का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। बाद में यह जाति नाग, आर्य तथा कश्मीर में रहने वाली अन्य जातियों के साथ घुल-मिल गयी होगी। सांस्कृतिक-सामाजिक-धार्मिक-राजनैतिक स्तरों पर अपने अनेक विश्वास-विचार, आचार-प्रथाएं उस नव-समन्वित समाज को दे गयी होगी जिसे आज हम 'कश्मीरी' पहचानते हैं।

प्राचीन निषाद जाति के संस्कार अब भी कश्मीरी मांझियों से पूरी तरह से धुले-पुंछे नहीं, जो सबके सब कश्मीर में इस्लाम के आगमन के समय से ही मुसलमान बन गये थे। कभी कश्मीर की नदियों-झीलों पर चप्पू और डांड की छप्-छप् की लय पर निषाद-कण्ठ से फूटी नदी-स्तुतियों और नौका-गीतों की स्वर-लहरी तिरती होगी। आज वह स्वर इतिहास की अजानी गहराइयों में खो गया है। कभी पर्वतराज कन्या पार्वती उनकी अधिष्ठात्री देवी रही होंगी, आज कश्मीरी मांझियों से कोई पूछे तो वे यहीं कहेंगे कि उनके पूर्व-पुरुष हज़रत नूह हैं। अपना अतीत विस्मृत होने के बावजूद, कश्मीरी मांझियों का मन वही, वैसा ही है—उनका परिश्रमी किन्तु मस्त-मौजी मन और अक्खड़ स्वभाव, उनकी वह आनंदी प्रकृति जिसके कारण उन्हें आज का खाना उपलब्ध हो तो कल की चिन्ता नहीं रहती—यह सब, लगता है, उन्होंने अपने पूर्वजों से ही ग्रहण किया है। कुछ पुराने विश्वास, अब भी उनके मन में बैठे हुए हैं, चाहे कितने ही धुंधले रूप में क्यों न हों। जैसे, वुलर झील के मांझियों का 'वोलर राज़'—'वुलरराज' से सम्बन्धित विश्वास जो झील में तूफान उत्पन्न करता है, जिसमें फंसी नौकाओं के लिए बचना बहुत कठिन हो जाता है। भले ही आज के मांझी अपने इस्लामीकरण के कारण 'वुलरराज' को अदृश्य-जिन्न या 'देव' के रूप में कल्पित करें, उसके कोप और कृपा की अनेक कथाएं उनमें प्रचलित हैं जो नीलमत पुराण में वर्णित राजा अश्वगाश्व और उसके द्वारा शासित एक सम्पूर्ण नगर की कश्यप-पुत्र नीलनाग के शाप के कारण जल में समा जाने की कथा के सूत्र को कल्पना के हज़ार-हज़ार रंगीन तंतुओं से आगे बढ़ाने के प्रयत्न हैं। कश्मीरी मांझी आज भी अद्भुत कल्पना-शक्ति से सम्पन्न लोग माने जाते हैं। मनोरंजक कथाएं बुनने में, खुशनुमा झूठ गढ़ने में उनका कोई सानी नहीं—तरह-तरह के किस्से सैलानियों को सुनाकर वे उनका मनोरंजन तो करते ही हैं अपने आर्थिक लाभ की संभावनाओं की भी वृद्धि करते हैं। वस्तुतः जनसम्पर्क कला के ये लोग कुछ इस कदर माहिर होते हैं कि सैलानी अक्सर इनकी बातों पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहते और इनके द्वारा तैयार की गयी रपटीली भूमि पर फिसल ही पड़ते हैं।

इन मांझियों की, आज़ादी से पूर्व से, अंग्रेज़ सैलानियों से अपने इन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण खूब पटती थी। अंग्रेज़ों या अन्य विदेशियों से बात करने के लिए उन्होंने अंग्रेज़ी की एक अद्भुत व्याकरण-वर्जित शैली का विकास किया है जिसे

कश्मीरी में 'हांज़ अंग्रीज्य' (अर्थात्—माझियों की अंग्रेज़ी) कहते हैं। "साहब, सलाम, शिकारा वांटेड ?" से लेकर सैलानियों की आवश्यकताओं और कमज़ोरियों, उन्हें खुश रखने के सभी गुरों से सम्बद्ध सम्पूर्ण शब्दावली उस बोली में शामिल है। बातों के, सचमुच, गजब के सौदागर होते हैं ये लोग। कश्मीरी भाषा को इन्होंने एक बड़ा सटीक मुहावरा दिया है—नावि चालुन—नाव में उतारना, अर्थात् किसी को अपनी बातों में लाना।

जाड़ों में, जब काम अधिक नहीं रहता, कश्मीरी मांझियों की कल्पना-शक्ति और भी प्रखर हो उठती है। जाने कितनी कश्मीरी लोक-कथाएं कांगड़ी की मन्द सुखद आंच तापते हुए और हुक्का गुड़गुड़ाते हुए मांझियों की कल्पना की उपज हैं। ऐसे ही आरामदेह वातावरण में मांझी के मन का रोमांस-भाव भी जाग उठता है और तब उसे अपनी मांझिन का लावण्य-युक्त चेहरा कुछ ऐसा नज़र आता है मानो बादलों के बीच अपनी किरणें बिखेरता हुआ चांद। उसके कण्ठ से गीत फूटता है—

ओ मेरी माँझिन,
अंधेरे में चमक रहे रुपहले चांद-सी है तू···
तू मछलियां बेचने को निकली है—
नदी-तट पर अपना यह मुखड़ा
सभी को दिखाती हुई।
री, तू अकेली-अकेली नदी के बीच से मत जा !
ईश्वर से मांग कि वह तुझे पार लगाए,
ओ मेरी मांझिन !

लेकिन शृंगार के मधुर-रस की आलम्बन यह मांझिन अक्सर रौद्र-रूप भी धारण कर बैठती है। कश्मीरी मांझी स्वभाव से ही कुछ बड़बोला होता है और छोटी-छोटी बातों को लेकर तुनक उठता है—उसकी मांझिन इस मामले में उससे भी अधिक तेज, मिर्च जैसी ! बात की बात में रार—भयंकर रार—मच जाती है जो घण्टों क्या दिनों अविराम चल सकती है। प्रहार-पटु और संग्राम-कुशल मांझिन उसे जल्दी ही ठण्डा पड़ने नहीं देती। ऐसे अवसरों पर उसके मुख से बिना किसी विराम, अर्द्ध-विराम के चतुर्वर्णी (Four lettered) निषिद्ध सरस्वती सभी कूल-कगार तोड़ते हुए फूट निकलती है और ऐसी भयंकर, अनियंत्रित गति से वह चलती है कि थमने को नहीं आती। यदि रात पड़ने तक झगड़ा अपने 'तार्किक-परिणाम' तक नहीं पहुंचा तो एक टोकरा उलटकर रात भर उसे उसके नीचे रखा जाता है। सुबह उठते ही टोकरे को फिर सीधा कर दिया जाता है और युद्ध फिर शुरू। इसी से कश्मीरी में एक उक्ति प्रचलित हुई है—'पज्य तल थवुन'—झगड़े को टोकरे के नीचे रखना।

इस और ऐसे ही कुछ कारणों से मांझियों को कश्मीर में सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता गो, हर घर की दैनन्दिन आवश्यकताओं की पूर्ति में उसका बड़ा हाथ है। एक किंवदन्ती के अनुसार कश्मीर में सर्वप्रथम नौकाएं लाने का श्रेय सिंहलद्वीप के राजा पर्वतसेन को है जो निम्न वैश्य-जाति के थे। ज़ाहिर है कि यह राजा और उसका सिंहलद्वीप कल्पना-लोक की सत्ताएं हैं, पर इतना अवश्य है कि आज भी कश्मीरी समाज में मांझी को निम्न दर्जा दिया जाता है।

नाव मांझी के लिए घर होने के साथ परिवहन और जीविकोपार्जन का साधन भी है। शताब्दियों से कश्मीर के जल-मार्गों पर नौकाओं का यातायात और माल ढोने के कार्य के लिए प्रयोग होता रहा है। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूएनत्सांग ने, जो ६३१ ई० में कश्मीर आया था, अपने यात्रा-वृत्तांत में अनेक स्थलों पर 'कि-शि-मि-लो' (कश्मीर) राज्य में वितस्ता और उसकी नदियों पर नौ-परिवहन का उल्लेख किया है। अलबरूनी ने भी कश्मीर के जल-मार्गों पर तिरती सवारी और व्यापारिक माल लादने वाली नौकाओं का जिक्र किया है। आज भी लकड़ी और इमारती पत्थर, रेत, ईंट, धान आदि लिये नौकाएं यहां चलती हैं, पर बस आदि स्वचालित परिवहन साधनों के आने के बाद उनका व्यवहार काफी कम हो गया है। बोझा या व्यापारिक वस्तुएं ढोने वाली नौकाएं हैं 'वहच,' 'खोच' और 'वोर'। 'बहच' एक काफी बड़ी नौका है जिसकी छत प्रायः फूस की बनी होती है। एक बड़ा भाग मिट्टी-पत्थर-लकड़ी-रेत-धान आदि ढोने के लिए खुला रखा जाता है। मांझी और उसके परिवार के रहने का स्थान अलग होता है। आजकल भी श्रीनगर शहर में राशन का धान-चावल वितस्ता नदी के विभिन्न घाटों पर इन्हीं 'बहच' नाम की नावों में रखा जाता है और वहीं से लोगों को उपलब्ध होता है। 'बहच' संस्कृत में 'वहित' से विकसित शब्द है। हिन्दी में भी व्यापारी नाव के लिए 'वोहित' शब्द है। संस्कृत 'त' का 'च' में परिवर्तन आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की एक ध्वन्यात्मक विशेषता है। कश्मीरी में संस्कृत तत्सम या तद्भव शब्दों में आर्य 'त' 'का उच्चारण 'च' के रूप में होता है। एक बहच में सामान्यतया ४०,००० किलोग्राम से भी अधिक अनाज ढोने की क्षमता है। 'खोच' बोझा ढोने के लिए प्रयुक्त एक अन्य नौका है जिसमें प्रायः छत नहीं हुआ करती। उसमें पत्थर-ईंट जैसा सामान ढोया जाता है जिसकी बारिश-बर्फ से खराब होने की संभावना न हो।

'बहच' ने कश्मीरी भाषा को एक मज़ेदार कहावत दी है—'वासकाकन्य गास नाव, दकदी-दी पकनाव !' अर्थात्, वासुदेव काका की यह घास से लदी नाव, इसे ठेल-ठेलकर चलाओ। कोई कार्य अत्यन्त शिथिल गति से सम्पन्न हो या कोई भारी वस्तु उठाने में दिक्कत हो और उसे कठिनाई से अपनी जगह पहुंचाया जा सके तो उसे 'वासकाकन्य गास नाव' कहते हैं। जाने कौन थे ये बेचारे वासुदेव

काका और उन्हें इतनी ढेर-सारी घास की क्या आवश्यकता आ पड़ी थी कि उनकी नौका को ज्यों-त्यों करके ठेल-पेलकर गन्तव्य तक पहुंचाया जा सका था। बहरहाल, कहावत ने उन्हें अमर कर दिया है।

'डूंग', अर्थात् डोंगा; एक और प्रकार की बड़ी नौका है जिसमें मांझी और उसका परिवार तो रहता ही है, साथ ही उसका व्यवहार अपेक्षाकृत लम्बी यात्राओं में होता है, या कहें कि होता था। बसों आदि स्वचालित वाहनों के प्रचलन से पूर्व ये नावें परिवहन का एक प्रमुख साधन थीं। मेले-ठेले के अवसर पर, लोकोत्सवों में या छुट्टी-अवकाश के दिनों घर से दूर समय बिताने के इच्छुक लोग इन्हीं में जल-विहार किया करते थे। शताब्दियों के उत्पीड़न के बावजूद कश्मीरी जन-मानस का यह आनंदवादी-रंग कभी फीका नहीं पड़ा। अपनी आनंद-तृषा और सौन्दर्य-भूख की परितृप्ति के लिए कश्मीरियों ने उसका समन्वय धर्म के साथ किया था। धर्म और सौंदर्यानुराग के इस समन्वित रूप ने कश्मीरी लोकजीवन में अनेक स्तरों पर अभिव्यक्ति पायी है। प्राकृतिक सौंदर्य के सान्निध्य और साहचर्य में कुछ क्षण आनंद मधु कण पान करना—कश्मीरियों की यह रसिक तबियत आज भी ज्यों की त्यों बनी है। कश्मीर की डल, वुलर, मानसबल आदि झीलें किसी-न-किसी नहर द्वारा नदियों से मिली हैं, और उनमें आनन्द-विहार के लिए अनेक उपयुक्त स्थल हैं। आज के जीवन की आपाधापी में यही बहुत है कि कभी-कभार वहां आदमी सैर के लिए जाए। किसे अवकाश है कि वह पुराने ज़माने की तरह नौका-विहार करता-करता श्रीनगर से सोपुर या बारहमुला नगरों को जाने में कई दिन बिताये, जब कि बस के द्वारा यह सारा सफर सवा-डेढ़ घण्टे में तय किया जा सकता है। लेकिन उत्सवों और मेलों आदि की बात ही और है। चाहे धार्मिक उद्देश्य से हो या यों ही दिल-बहलाने की नीयत से—डोंगे में धीरे-धीरे भरपूर आनंद उठाते हुए क्षीर-भवानी या हज़रत बल में लगने वाले मेलों में डोंगे द्वारा जाने का अपना ही रस है जिसके लिए आज भी उत्सवार्थी हज़ारों की संख्या में तैयार हो जाते हैं। क्षीरभवानी के वार्षिक मेले में जाने वाले लोग तीन-तीन, चार-चार दिन, या कभी पूरे का पूरा सप्ताह डोंगे में बिताया करते थे। हिन्दू होते हुए भी ये लोग डोंगे में ही अपने रहने-सोने तथा खाने-पकाने तक का प्रबन्ध कर लेते थे। प्राचीन संस्कारों से युक्त काशी-कांची पूजित ब्राह्मण-कुल-शिरोमणि कश्मीरी पंडित या उसकी पंडिताइन के लिए चौके-रसोई से अधिक शुद्ध-पवित्र कोई स्थल नहीं। उनकी रसोई के बाहर अनेकानेक भयंकर वर्जनाओं की अदृश्य तख्ती सदा लटकी रहती है। लेकिन मेले-ठेले की बात और है—यहां आपद्-धर्म चलता है और पंडिताइन आपद्-धर्म खूब समझती है। मुसलमान मांझी द्वारा दिये गये डोंगे के प्रकोष्ठ में उसी से उधार लिए चूल्हे पर वह बड़ी खुशी से व्रत-उपवास तक का 'पवित्र' भोजन पकायेगी।

आखिर मिट्टी तो सब कुछ शुद्ध कर सकती है। ज़रा-सी मिट्टी से स्थान लीप दिया तो सब शुद्ध। रसोई के विधि-निषेधों में तनिक-सी चूक पर भी दशमी और एकादशी का उपवास रखने वाली पंडिताइन को कोई आपत्ति नहीं। मांझी मुसलमान हुआ तो क्या हुआ, चौका तो मिट्टी और गोबर से लिपा हुआ है।

यों डोंगी अधिक गहरा जल मांगने वाली नाव नहीं, पर कभी-कभी जब नदी में पानी कुछ सूख जाता है—जैसा शरद या शिशिर में प्राय: हुआ करता है—तो 'हमतुल' अर्थात् डांड से काम नहीं चलता और न लग्गी से। रस्सी बांधकर नौका को खींचना पड़ता है। ऐसे अवसरों पर मांझी किनारे-किनारे या तट के पास के उथले जल में उतरकर रस्सी हाथ में लिये नौका खींचता हुआ धीरे-धीरे आगे ले जाता है। नदी में जल का प्रवाह अत्यन्त तीव्र हो और धारा भी प्रतिकूल हो तो ऐसे में नौका खेना कठिन हो जाता है। कई परिस्थितियों में यह मांझी की शक्ति और साहस की परीक्षा का भी क्षण बन जाता है। ऐसे समय साहस-प्राप्ति तथा श्रम-परिहार के लिए धीर से धीर मांझी भी अतिमानवीय शक्तियों या पीरों-फकीरों का सहारा लेना चाहता है—

या पीर-दस्तगीर !
या पीर-दस्तगीर !
मीशा पादशाह
यह जल का धक्का आया
आंधी ने बल दिखलाया
पांव टिकाओ
डांड चलाओ
जोर लगाओ
कहते जाओ—
या पीर-दस्तगीर
मीशा पादशाह !

पीर दस्तगीर साहब ईरान के गुलाम जीलानी नाम के मुसलमान पीर थे जिनका कश्मीर में इस्लाम फैलाने में काफी हाथ रहा है। मीशा साहब कश्मीर के एक लोकप्रिय संत हुए हैं जिनके प्रति यहां के हिन्दुओं में भी श्रद्धाभाव है। श्रीनगर में रैणावारी नामक स्थान पर उनका मज़ार है जहां हर वर्ष उनका उर्स मनाया जाता है।

प्रतिकूल जलधार में नाव को खे रहे मांझियों का कोई दृश्य संभवत: अपने घर पाम्पुर के निकट शुराहयार घाट पर स्नान करने या जल भरने को आयी महान कश्मीरी कवयित्री लल्लेश्वरी को उनकी इन प्रसिद्ध पंक्तियों की प्रेरणा दे गया होगा :—

—कच्चे धागे से सागर में अपनी नौका खींच रही हूं
वह मेरा देवता मेरी सुन लेता
और मुझे पार उतार देता !
कच्ची मिट्टी के सकोरों में बचते पानी-सी
मैं भी तो छीज रही हूं
भरम रहा है हृदय···
आह, मैं भी अपने घर जाती !

अछोर-अमाप भवसागर और एक स्त्री अपनी (जीवन) नाव खे रही है—अकेली; नाव उत्ताल तरंगों पर उठती-गिरती-तिरती हुई, सहायता के लिए अपने 'देवता' का आह्वान, मिट्टी के सकोरों में छीजता पानी होने की अनुभूति; घर जाने की आकुलता—ये बिम्ब मन पर सीधा, गहरा प्रभाव छोड़ जाते हैं जो लल्लेश्वरी की कविता की एक बड़ी विशेषता है।

डोंगे का ही परिवर्तित-आधुनिकीकृत रूप है हाउस-बोट—नावघर ! आप उसमें रह सकते हैं और सैर भी कर सकते हैं। खाने-पीने-रहने की आधुनिकतम सुविधाओं से युक्त इस डोंगे में रहने का सुख सचमुच एक एय्याशी है। हाउस-बोट का निर्माण सन् १८६० में एक अंग्रेज़ मिस्टर कर्नार्ड ने किया था—पर एक कश्मीरी पंडित, नारायणदास, का भी इसके बनाने में बड़ा हाथ रहा है, लेकिन उसे उचित श्रेय मिलने के बदले, मिला 'नाव-नाराण' (नाव-नारायण) नाम। उपनाम या चिढ़ रखने में कश्मीरी कुछ विशेष तेज़ हैं। किसी भी व्यक्ति का किसी भी मामूली से मामूली आधार पर उपनाम (निकनेम) रख लेते हैं और फिर यह उपनाम उसके साथ ऐसे चिपक जायेगा कि वह लाख सिर पटके उसे हटा नहीं सकता। अंत में हारकर, झख मारकर उसे इस उपनाम को स्वीकार करना पड़ता है और आहिस्ता-आहिस्ता उसका असली कुलनाम लुप्त हो जाता है। अधिकांश कश्मीरी कुलनाम वास्तव में उपनाम (निकनेम्स) ही हैं और उनमें कई तो अत्यन्त विचित्र और अप्रिय हैं। बहरहाल बात हाउसबोट की हो रही थी। सैलानियों के लिए डल झील के कमलक्षेत्रों के पास या वितस्ता या सिन्ध नदी के रजताभ पत्तों वाले वेद वृक्षों, लम्बे पॉपुलरों और चिनारों से आच्छादित तटों से लगे जल पर डोलते ये हाउसबोट एक विशेष आकर्षण हैं। हाउसबोट की छत या लाउंज पर सुस्ताते हुए कश्मीरी वसंत की सुनहरी धूप के रेशमी स्पर्श का सुख एक ऐसा अनुभव है जिसे भूला नहीं जा सकता। इन चल-नावघरों के साथ प्रायः भोजन आदि की व्यवस्था करने के लिए एक डोंगा लगा रहता है जिसमें मांझी अपने परिवार के साथ रहता है और तरह-तरह के किस्सों और बढ़िया से बढ़िया कश्मीरी व्यंजनों द्वारा अपने आसामियों का दिल खुश रखता है। पाक-कला में उसकी कुछ ऐसी गति है कि बड़े-बड़े होटलों के खानसामे भी लोहा मानः

लें। यह ज़ियाफतें ज्यादातर गोश्त की हुआ करती हैं, इसलिए यदि केवल निरामिष भोजन करने वाले सैलानियों से उसका पाला पड़े तो हाउसबोट वाला बेहद चिढ़ेगा। उन्हें वह अपनी पाक-विद्या का कौन-सा हुनर दिखाये। कश्मीर अपने सामिष ईरानी व्यंजनों के लिए प्रसिद्ध है 'घास' पकाने के लिए नहीं। चिढ़ कर कश्मीरी मांझियों ने निरामिष भोजन करने वाले सैलानी के लिए एक नाम भी रख दिया है—'छोल विज़िटर' अर्थात् छोले खाने वाला सैलानी !

जल पर आनंद-विहार करने के लिए सबसे आरामदेह, द्रुत और सुन्दर सवारी है 'शिकारा'—ठीक इतालवी गंडोला जैसी। स्प्रिंगदार गद्दियों, तकियों तथा सुन्दर पर्दों से सजी यह एक हल्की-सी नाव है जिसे प्रायः दो या अधिक मांझी चप्पुओं से खेते हैं। कश्मीरी मांझियों के चप्पुओं का सिरा दिल के आकार का होता है। शिकारे पर डल या नगीन झीलों अथवा वितस्ता पर बने श्रीनगर के नौ पुलों की सैर के बिना श्रीनगर का सौंदर्यदर्शन अधूरा रहता है। यहां के लोकजीवन की अपूर्व झांकी नौ पुलों के नीचे वितस्ता पर जल-विहार करते हुए आपको मिलेगी। डल झील के पिछवाड़े या तटों के पास महकते प्रफुल्ल कमल-वन, पानी में घुलते हुए से सूर्योदय या सूर्यास्त के अनेक-अनेक रंग, वेद की रजताभ पंक्तियों की झलमलाहट, सघन चिनारों से बहते हुए जल को तरंगायित करते हुए, हवा के गुदगुदाते झकोरे, जल में बिम्बित आकाश की गहन नीलिमा, तथा पर्वतों के नीलाभ शिखर, पास के वृक्षों या जलघासों पर बैठें हुए बहुरंगी बोलियों की विभोर कर देने वाली गीत-लहरी, जलीय वनस्पतियों की विचित्र-सी गन्ध—शिकारा में बैठें-बैठें एक साथ इतने नशीले सुखों का आप अनुभव कर सकते हैं।

शिकारा के ही समान, पर उससे कुछ लम्बी नाव है 'परिन्दा' जिसे तीस-चालीस या उससें भी अधिक मांझी चप्पुओं सें खेते हैं। यह नाव इतने द्रुत वेग से चलती है कि सचमुच लगता है जल पर पक्षी की भांति 'उड़' रही है। परिन्दा वास्तव में एक शाही सवारी है जिसमें पुराने समय में बादशाह या सामन्त सैर किया करते थे। आजकल भी 'अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों' की शोभायात्रा और सैर के लिए इसे सजाया जाता है। इसके बीच में एक चन्दोवा-सा बना होता है। सिखों के शासन-काल में कश्मीर का गवर्नर दीवान कृपाराम 'परिन्दा' में जल-विहार करने का बड़ा शौकीन था। उसकी जेबें हमेशा मांझियों और उनके बच्चों को 'बख्शीश' देने के लिए सिक्कों सें खनखनाती रहती थीं जिसके कारण उसका नाम ही 'कपश्रोन्य' पड़ गया था। 'श्रोन्य' कश्मीरी में खनखनाहट को कहते हैं। पचास से अधिक चप्पुओं की जल में छपाछप ध्वनि के साथ जब उसका 'परिन्दा' निकलता था तो लोग उसें 'कृपरामन्य छप्पर' (कृपाराम की छपाछप करने वाली नाव) कहते थे।

अन्य प्रकार की हल्की और द्रुत गति से चलने वाली नावें थीं 'लरिनाव' और 'चकवार', जिनका व्यवहार प्रायः आजकल नहीं होता।

लेकिन कश्मीरी मांझी को कश्मीरी लोकजीवन में जो स्थान प्राप्त है वह केवल जल-विहार या बोझा ढोने के लिए नाव खेने के कारण नहीं। वह अनेक प्रकार से और काफी निकटता से एक सामान्य कश्मीरी के जीवन का स्पर्श करता है। जैसे, वह जल में से सिंघाड़े बीनता है जो कश्मीरियों का एक लोकप्रिय सस्ता फल है। वसन्त में जब बादाम के वृक्षों में हल्के गुलाबी बौर ठौर-ठौर महक उठते हैं और भीड़ के भीड़ लोग हर छुट्टी, या अवकाश के दिन श्रीनगर की बादाम वाटिका, 'बादामवोर' में वसन्तोत्सव मनाने को आते हैं तो भुने सिंघाड़ों का स्वाद लेना नहीं भूलते! सिंघाड़ा जल का फल है और वुलर झील में उगता है। उसके फूल यद्यपि जल की सतह से ऊपर खिलते हैं, पर फल सतह के नीचे ही बनते और पकते हैं। मांझी लोग उन्हें एक लम्बे डाण्ड से तोड़कर जाल द्वारा बटोरते हैं। इस फल का गूदा भूनकर, तलकर या आटा बनाकर खाया जाता है। व्रतों-उपवासों के अवसर पर कश्मीरी पण्डित सिंघाड़े के आटे का हलुआ, पूड़ी, पकौड़े आदि व्यंजन बनाते हैं। यह फल कश्मीर में जितना पहले लोकप्रिय था—अब नहीं है, अब आहिस्ता-आहिस्ता एक सामान्य कश्मीरी के जीवन से वह सब कुछ गायब होता जा रहा है जिस पर कश्मीरियत की छाप थी—इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि यह बच्चों के एक (अब पुराने) खेल का विषय है जिसे दो या अधिक बच्चे ये पंक्तियां बोलते हुए खेला करते थे—

बुड्ढे, ओ बुड्ढे !
कहां जाएगा रे ?
सिंघाड़े खाने।
सिंघाड़े खाने ?
पैसे कहां हैं ?
तेरी जेब में हैं।
मेरी जेब में नहीं,
तेरी जेब में हैं।
ना-ना तेरी जेब में हैं।

और बुड्ढा बना बच्चा अन्य बच्चों के पीछे क्रोध दिखाता हुआ दौड़ पड़ता था।

मांझियों का एक वर्ग कुंजड़ों का भी कार्य करता है—मार (संस्कृत महासरित) नाला के किनारे या डल झील में 'तैरते बागों' में इस वर्ग के मांझी सब्जी उगाते और बेचते हैं। ये तैरते हुए बाग पानी में उगने वाली घासों और वनस्पतियों को जल में गाड़े गये चार डण्डों के बीच ढेर करके तथा सबसे ऊपर

वाली परत पर झील या नाले के तल से निकाली गयी मिट्टी बिछा कर बनाये गये छोटे-छोटे 'द्वीप' हैं। मांझी लोग कभी-कभी एक-दूसरे के 'तैरते-बागों' का कुछ हिस्सा 'चुराकर' अपने बाग में मिला लेते हैं और इस बात को लेकर तुमुल युद्ध छिड़ जाता है। 'तैरते-बागों' में भांति-भांति की सब्जी-तरकारी उगाई जाती है—लौकी, बैंगन; करेला, फलियां, टमाटर आदि। कुंजड़े का कार्य करने वाले इन मांझियों को 'डेम्ब होंज़' कहते हैं और जिस नाव में लादकर वे सब्जी बेचते हैं उसे 'डेम्ब साव'। कश्मीरी के प्रसिद्ध जन-कवि दीनानाथ नादिम ने सब्जी बेचने वाली डल की मांझिन को सर्वहारा वर्ग का प्रतीक बनाकर एक युद्ध-विरोधी गीत लिखा है जिसमें 'जंगबाज़ों' और 'साम्राज्यवादियों' को चुनौती दी गयी है कि वह कश्मीर के इस सरल लोक-जीवन के छोटे-छोटे सुखों को युद्ध द्वारा कभी उजाड़ नहीं पायेंगे। जीवन की हमेशा मृत्यु बोने वाली शक्तियों पर विजय होगी।

झीलों और पोखरों में एक और चीज़ उगायी जाती है, 'नदुर'—जो कश्मीरियों की एक प्रिय सब्जी-विशेष है। शताब्दियों से यहां के लोग उसके अनेक व्यंजन खाते आये हैं। 'नदुर' शब्द संभवतः संस्कृत 'नदोरुह' से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है 'नद में उत्पन्न होने वाला'। 'नदुर' जाड़ों के आस-पास दीप्त होने वाले कमल-नाल का जड़ के समीप वाला मोटा तथा सफेद भाग है। 'नदुर' का प्रयोग एक अन्य लाक्षणिक अर्थ में भी किया जाता है—कोरे झूठ या निराधार बात को 'नदुर' कहा जाता है। रस-मधुर गीतियों के सृष्टा प्रसिद्ध कश्मीरी भक्त कवि श्रीकृष्ण राज़दान के एक प्रसिद्ध गीत की पंक्ति है—'सर कोर यि संसार, नदरुय द्राव' अर्थात् इस संसार (सरोवर) को हमने देख लिया, और 'नदुर' (निराधार) ही पाया।

अन्य स्थानों की भांति कश्मीर में भी मांझियों में मछियारों का एक वर्ग है। मत्स्यगन्धा कश्मीरी मछियारिन की देह-छवि पर अनेक कश्मीरी कवियों ने रूमानी गीत लिखे हैं। कुछ वर्ष पूर्व कश्मीरी जलाशयों में मिररकार्प नाम की मछली का बीज डाला गया जिसकी संख्या अब स्थानीय मछलियों की संख्या से बहुत अधिक हो गयी है। जिन्होंने असली कश्मीरी मछली खायी है, उन्हें मिरर-कार्प खाने में बिल्कुल अच्छी नहीं लगती। अभी कल तक सूखी हुई मछली 'होगाड' 'कश्मीर में 'न्यू' की एक महत्त्वपूर्ण मद थी। अब उसका प्रयोग बहुत ही कम हो चला है। कश्मीर में मछली भूनकर भी खायी जाती है, लेकिन अब बहुत कम लोग इसे खाते हैं और 'होगाड' की तरह कश्मीरी व्यंजन सूची से इसका भी नाम हटता जा रहा है। भुनी हुई मछलियों को कश्मीरी में 'घरि' कहते हैं। इस शब्द का प्रयोग भी लाक्षणिक रूप में झूठ या कोरी गप्प के अर्थ में होता है।

एक और चीज़ जो मांझी कभी श्रीनगर के घर-घर में पहुंचाते थे 'हक'

अर्थात् नदी में प्रवाहित काष्ठ 'ड्रिफ्टवुड' थी, जो जाड़ों में चूल्हे जलाने के काम आती थी। उसके अंगारे कांगड़ी में काफी देर तक सुलगे रहते थे और जाड़ों में देर तक गर्मी देने वाली कांगड़ो से अधिक सुखद और क्या चीज हो सकती है?

कश्मीर में कारीगरों के लिए बड़ा ही प्रिय सम्बोधन है– 'वोस्त' अर्थात् 'उस्ताद' जो मल्लाहों के लिए भी प्रयुक्त होता है—यानी कोई भी मांझी हो, है वह अपनी कला का एकदम उस्ताद! इसमें कम से कम एक कश्मीरी को कोई संदेह नहीं। मांझी तो मांझी उसके बच्चे के बारे में भी कश्मीरी में यह उक्ति है—"मांझी का बच्चा नदी में गिरे तो कोई परवाह नहीं, मुट्ठी में मछली लिये हुए ऊपर आयेगा।"

डोगरी लोक-कथाओं में भाग्य की देवी—बिद्दमाता

□ ओम गोस्वामी

डोगरी लोक-कथाओं में भाग्यवाद उस अतार्किक दर्शन का ऐहिक स्वरूप है जिसमें क्रिया, घटना, कार्य आदि का 'कारण' किसी तर्कसंगतता की कसौटी पर नहीं बल्कि 'पूर्व-निर्धारिति' पर अवस्थित माना जाता है। जीवन के उतार-चढ़ावों की संचालक शक्ति का संज्ञारूप 'भाग्य' है। पूर्व-जन्म के कर्मों का फल हम इस जन्म में भुगतते हैं—यह पौर्वात्य जन-मानस का विश्वास है। अतएव मायास्वरूप जगत में व्यक्ति के सारे क्रिया-कलाप पूर्व-निर्धारित हैं। इस निर्धारिति को 'फेटलिस्टों' ने नियति भी कहा है। संस्कृत शास्त्रज्ञों ने इसे 'दैव' की संज्ञा दी है। भारतीय आत्म-संधान की अपूर्व कृति 'योग वाशिष्ठ' में पौरुष और दैव के समुच्चय से सफलता (विजय) का होना संभव माना गया है अर्थात् निर्धारिति के साथ-साथ व्यक्ति के सही प्रयत्न (कर्म) भी उसे कामना की सिद्धि तक ले जाते हैं। लोक-मानस अपनी अनेक पेचीदगियों के बावजूद कार्य-कारण का न्याय न मानकर तर्कहीन सहज विश्वास में आस्था रखता है। अपने अथवा किसी दूसरे के जीवन में किसी 'नितांत असंभव' अथवा 'सहज संभव' घटना का घटित होना उसे भाग्य का विधान प्रतीत होता है। पहाड़ से लेकर ज़र्रे तक, मानव से लेकर चींटी तक ये सब 'विधि' की रचना माने जाते हैं। यही कारण है कि लोक में– वाङ्मय और मानवीय अभि-व्यक्ति के अन्य माध्यमों में भी—भाग्यवादी स्वर प्रखरता से मुखरित हैं। परन्तु योग वाशिष्ठ के अनुसार 'दैव के कारण परिणाम एक निराधार कल्पना है—अतएव भाग्य, दैव या विधि की कोई भौतिक सत्ता नहीं।' इस वेदान्तिक विचारधारा के विपरीत मनुष्य का अवचेतन सदैव एक विधात्री शक्ति को स्वीकार करता आया है। यह चेतना ज्ञान के आत्मशून्य तल का स्पर्श करती हुई अन्धश्रद्धामयी रेखाओं पर पनपी है। मनुष्य के सहज विश्वासी मन ने कल्पना के द्वार से हर घटना (कार्य) की व्याख्या के लिए कोई सीधी-सादी कल्पना की है। ये कल्पना समूह की आधिकारिक और अनुभवी इकाई से आने के कारण बिना

हीलो-हुज्जत के अपने वर्ग में स्वीकृत होती चली गई। अवधि बीतने के साथ-साथ इसमें अनेक लोक-अभिप्राय और चामत्कारिक प्रसंग स्वतः जुड़ते चले गए। परिणामतः आज जो लोक-कथाएं अथवा गीति-कथाएं उपलब्ध हैं···वे चाहे तर्कशास्त्रीय संगति पर पूरी न उतरें—परन्तु उनकी मानवशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक महत्ता अक्षुण्ण ही है। जब भी यह जानने की आवश्यकता महसूस होगी कि मानव का चिन्तन इतना प्रौढ़ कब और कैसे हुआ—उस समय उपर्युक्त सामग्री ही संदर्भ तथा तुलना के लिए काम में लानी पड़ेगी।

भाग्य : एक आदिम स्वर—मानव-जाति के कार्य-व्यापार को परिचालित करने वाले कुछ मूल स्वर होते हैं। इन सब में प्रधान स्वर है—भाग्य का, जिसकी प्रभु-शक्ति के समक्ष मनुष्य नगण्य है। सृष्टि का सारा विधान कठपुतली के खेल-सा है। इस खेल का नियंता तमाम सूत्र थामे अदृश्य में विराजमान है। इसी अदृश्य समर्थ को 'भाग्य' और इसके प्रत्यक्ष या व्यावहारिक स्वरूप को 'प्रारब्ध' कहकर लोक-मानस ने सम्बोधित किया। अनेक स्थलों पर लोक-मानस ने भाग्य को 'रचना' और विधि को 'रचनाकार' माना है। गोस्वामी तुलसीदास के कृतित्व में समूची सृष्टि को जिस प्रारूप के अनुरूप चलते दिखाया गया है उसे **'विधि ने रच राखा है !'**

विधि का दण्डनायिका अवतार—विधि को डोगरी लोक-कथाकार ने बिद्‌माता कहा है। यही भाग्य की अधिष्ठात्री है। लोक-कथाओं में इसके और भी बहुत से नाम हैं। **होनी** (होनहार), **तकदीर** (भाग्य, भाग), **विधि**, **विधात्री**, **विधाता** इत्यादि। होनी के इत्तिफाक, संयोग आदि दूसरे पर्यायवाची भी हैं। होनी तीन बरस, साढ़े सात बरस (साढ़सती) या बारह बरस तक व्यक्ति के भाग्य को ग्रसती है। भाग्य को ग्रहण लगा रहता है। यह समय व्यक्ति पर बुरे दिनों का होता है। 'होनी' बिद्‌माता का दण्डदात्री स्वरूप है। इसके बारे में लोक-कथाकार का कथन है—"**महाराज ये किसी पर न बीते। सही आदमी को बावला, और राजा को भिक्षाजीवी बना देती है। कहते हैं पाण्डवों पर जो बीती तो उन्होंने जूआ खेला। अपना सारा राजपाट हार गए। बारह बरस का बनवास भोगना पड़ा।**" होनी के साथ यह लोक विश्वास सदैव जुड़ा रहता है कि वह एक निश्चित अवधि तक व्यक्ति पर कहर ढाती है। अतएव होनी बिद्‌माता का दण्डनायिका अवतार है। बिद्‌माता के दो रूप 'होनी' और 'विधाता' सांसारिक स्त्रियों का रूप धारण किये रास्ते में बैठे हैं—इस बात की आजमाइश करने कि उनमें से व्यक्ति के भाग्य का नियंता कौन है ? वहां बैठे-बैठे उन्हें एक लड़का दिखाई देता है। होनी विधाता को उसके बारे में सुनाती है—"बहन, देखी मेरी करामात ! मैं इस लड़के पर आई थी। सो इसके मां-बाप मरे। लोगों द्वारा इसे प्रताड़ना मिली, और आज मैंने इसका घर-द्वार छुड़ा दिया।" उसका यह दर्पपूर्ण कथन सुनकर विधाता हंसती हैं

और उसे बताती है कि इसके भाग्य में ये सब मैंने ही उल्टे हाथों लिखा था। तेरा इस पर बीतना भी मेरे द्वारा निर्धारित था। इस बात पर दोनों में झगड़ा बढ़ता है और फिर शर्त बदती है। दोनों अपनी पूरी-पूरी शक्ति दांव पर लगा देती हैं। अन्ततः होनी हारती है और विधाता के पैर पकड़ कर कहती है—"तू बड़ी है। तेरा लिखा अमिट है। मैं भी तेरे लिखे मुताबिक ही मानव को भोग सकती हूं अन्यथा मेरी पृथक् सत्ता कुछ नहीं।" डोगरी लोक-गीतों में भी यही बात कुछ इस तरह कही गई है—

डाडे लेख लिखे बिद्‌माता, मेटन वाला कोई नाई,
काल देवता सिरै पर गजदा, होनी फराटी पाई।

बिद्‌माता के भिन्न-भिन्न रूपों में 'बड़ा कौन' को लेकर विवाद उठा रहता है। 'होनहार' का नाम होनी और विधाता 'कर्त्री' शक्ति का नाम है। संयोग विधि के कृत्य को कहा है और 'नियति' वह है जिसे किसी अज्ञात शक्ति ने तय कर रखा है। नियति का सम्बन्ध प्रायः भविष्य के साथ है। भूत, वर्तमान तथा भविष्य —ये तीनों विधि के अंगूठे से बंधे हैं। परन्तु इसके 'होनी' नामक रूप का अलग ही महत्त्व है। लोक-कथाकार इसका सहारा लेकर कथा-प्रवाह में बड़े-बड़े मोड़ ले आता है। बुद्धि जिन बातों के लिए तर्क का अवलम्ब लेती है उसी को 'बिद्‌माता की करनी' या 'भाग्य का लिखा' कहकर इस जटिल स्थिति से लोक-मानस निवृत्ति पा लेता है।

ब्रह्मा का लिंग परिवर्तन—ऊपर उद्धृत प्रसंग में बिद्‌माता के लिए 'विधाता' संज्ञा प्रयुक्त हुई है। परन्तु संस्कृत विधाता जहां पुल्लिंग है वहीं डोगरी कथाओं का 'विधाता' बिद्‌माता के समान ही स्त्रीलिंग है। यह लिंग परिवर्तन भाषा वैज्ञानिक अध्ययन के अतिरिक्त 'डोगरी लोकमानस' की बनावट समझने में तो सहायक है ही, साथ ही बिद्‌माता का स्वरूप समझने में भी एक ठोस अन्तःसाक्ष्य प्रस्तुत करता है। धर्मशास्त्रों ने जो अधिकार ब्रह्मा को दे रखे हैं वही संस्कारों, नियमों तथा वर्जनाओं में बंधे लोक-मानस ने बिद्‌माता को भी दिए हुए हैं। ब्रह्मा से उसके अधिकारों के हनन के अतिरिक्त लोक-मानस ने उसका पुरुषत्व भी छीन कर उसे बिद्‌माता के समान स्त्रैण बना डाला। विधाता ब्रह्मा का ही नाम है। डोगरांचल में प्रचलित लोक-विश्वास के अनुसार जिस समय बच्चे का जन्म होना होता है उस समय बिद्‌माता अपनी कलम, दवात और तख्ती लेकर नवागत की भाग्य लिपि लिखने, बिन-बुलाए पहुंच जाती है। देव-पुरुष ब्रह्मा चाहे कितना भी बूढ़ा बाबा क्यों न हो, आखिर ठहरा मर्दजात। प्रसवासन्न नारी के कक्ष में पुरुष का प्रवेश वर्जित है। लोक-मानसीय 'अहं-चेतन' के विकास-चिह्न इस वर्जना में अंकित हैं। फलस्वरूप प्रसव-कक्ष में नारी का प्रवेश ही नियम बना। इसी नियम के बलबूते विधाता का लिंग परिवर्तन हुआ और इस ढंग से लोक-मानस ने उसे प्रसवा

के कमरे में दाखिल कराने का रास्ता बनाया। यह नारी अस्तित्व के महत्त्व की आदिम स्वीकृति है। बिद्‌माता का सृजन लोक-मानस ने जिस मिट्टी से किया वह संस्कारों की कान की पवित्र मिट्टी थी। जब यह मूर्ति सर्वप्रथम बनी होगी, उसी समय से स्त्री स्वातन्त्र्य का प्रथम उद्‌घोष मानना चाहिए।

बिद्‌माता : रूप और स्वरूप—लौकिक विश्वासों में मान्यताप्राप्त इस देवी की प्रतिमा लोक के मानस-मदिर में प्रतिष्ठित है। इसका चित्र लोक-स्मृति में सुरक्षित है। मोरपंख की उसकी कलम है, चन्दन सुगन्ध-पगी उसकी तख्ती है—इनका उपयोग वह लोगों के भाग्य लिखने के लिए करती है। नवजात शिशु की किस्मत की लिखाई वह हाथ पीठ पीछे करके करती है। यदि सीधे हाथों मुंह के सामने करकें लिखे तो रहम न आ जाए माई को। तब तो किसी के भाग्य में दुःख, दर्द, मुसीबत रहेंगे ही नहीं। और यदि पृथ्वी से दुःख-क्लेश मिट गए तो इसे भूलोक कौन कहेगा! इसलिए भाग्य की 'लिखारन' ये देवी बड़ी निर्मम है—जो किसी के हिस्से में भूख, नग्नता, गरीबी और किसी के हिस्से में सुख-शांति और धन-धान्य डालती है। किसी को देती है, किसी से छीनती है। जीवन की अवधि भी इसी की इच्छा पर आधारित है। पौराणिक ब्रह्मा को उसके आसन से च्युत करके बिद्‌माता स्वयं तमाम सृष्टि-चक्र का संचालन कर रही है। सरस्वती ब्रह्मा की बेटी है—बड़ी विदुषी, सर्व-कला अधिष्ठात्री, विद्या के चौक की स्वामिनी, शास्त्रों की लेखिका, हंस के वाहन पर बैठकर दूध-पानी का निनार करने वाली विवेकिनी, विद्या-बुद्धि की भंडारिन, शब्द-ध्वनि-वाणी की अजस्र स्रोतस्विनी। इस तरह लोक की मानस पुत्री—बिद्‌माता मानो ब्रह्मा की पत्नी ब्रह्माणी (विधि) और बेटी सरस्वती के गुणों को अपने में समोकर डोगरांचल के समस्त वाङ्मय में महिमामयी हुई जा रही है। सच है, इतने लोगों के ललाट की लेखिका कोई परम विदुषी ही हो सकती है। यह कहना कठिन है कि शास्त्रों में उल्लिखित सरस्वती प्राचीन है या डोगरा लोक-मानस की बिद्‌माता। हां, दोनों में अनेक समानताएं होते हुए भी विषमताओं का क्षेत्र अधिक व्यापक है। दोनों के शील व स्वभाव भिन्न हैं। बिद्‌माता ज़िद्दी होने के साथ-साथ असूलों की पाबन्द और किसी सीमा तक कंजूस भी है। इसमें आदिम मानव की अपेक्षाएं-अवधारणाएं इतनी स्पष्ट हैं कि कह सकते हैं कि शास्त्रकारों ने इस जन-पदीय देवी को ही सुसंस्कृत बनाकर सरस्वती नाम दिया है।

बिद्‌माता को आप सुख-दुःख से अलिप्त कह सकते हैं। वह किसी के दु.ख में दुःखी नहीं और किसी का सुख उसे नहीं छता। हां, अपने डाले अंकुरों के फल आने पर वह खुश भी होती है। यह खुशी उसकी स्वार्थपरता को चीन्हती है। एक दफा देवता उससे पूछते हैं कि तू आज इतनी खुश क्यों है? वह कहती है—"आज खुश

क्यों न हूंगी। मर्त्यलोक में एक विवाह हो रहा है, वहां न तो लड़की के मां-बाप पास हैं और न ही लड़के के। इसीलिए मैं लड़के वालों की तरफ से 'घोड़ियां' (संस्कार गीत) गा रही हूं और लड़की वालों की ओर से 'सोहाग' (मंगल गान)।"

कोई यदि उसकी इच्छा के विरुद्ध जाने का यत्न करता है तो वह उसकी कोप-दृष्टि का भाजन बनता है। यहा बिद्‌माता का क्रोधी और ईर्ष्यालु स्वभाव मनुष्योचित है। लेकिन साधारण मनुष्यों जैसा नहीं, नीतिवान, चतुर और समर्थ लोगों का क्रोध है उसका। ऊपर जो मंज़र आया उसमें बिद्‌माता की खुशी एक कूटनीतिज्ञ की खुशी है। ज़िद, ईर्ष्या, क्रोध जैसी स्त्री-सुलभ वृत्तियां उसके मानवीय भावभूमि पर अधिक दृढ़ता से प्रतिष्ठित-स्वीकृत होने में सहायक हैं। त्रिलोकी इसकी खुशामद और गुणानुवाद कर रही है। नारद मानो इसी के लिए नेति-नेति पुकार रहे हैं।

भाग्य! भाग्य!! भाग्य!!! जन्म से मृत्यु तक—वास्तव में तर्क-बुद्धि द्वारा विचार करें कि बिद्‌माता इतनी क्रूर क्यों है तो हमें ज़रा सरसरी निगाह इतिहास के झरोखे में डालनी पड़ेगी। अध्यात्म युग में 'मठ-पंडा-पंडताऊवाद', सामंती युग में 'राजा, अधिकारी-सामंतवाद' की इल्लतों ने साधारण जन पर जो जुल्म ढाए या प्रागैतिहासिक मानव ने जिन प्रतिकूलताओं का सामना किया उनसे उसमें अपनी अक्षमता का बोध जागृत हुआ। साधारण जन महत्त्वाकांक्षाओं से हीन जीवन गुज़ारना चाहता है। लेकिन अपने बारे में निर्णय लेने के लिए वह स्वतंत्र नहीं होता। जिसके कारण बार-बार उसे 'गुफा वाली स्थिति' की ओर लौटना पड़ता है। वह महसूस करता है कि वह वेदना और अत्याचारों के पहाड़ों में घिरा है। इसीलिए अपने समस्त दुःखों का जिम्मेवार भाग्य को ठहराया गया और समयान्तर से इलज़ाम चढ़ा बिद्‌माता के माथे।

डोगरा लोक-मानस के अनुसार मनुष्य का जीवन भाग्य द्वारा नियंत्रित होता है। अतएव भाग्य की देवी बिद्‌माता जन्म से लेकर मरण तक प्रत्येक खुशी-ग़मी के अवसर पर विद्यमान रहती है। जन-मानस में विवाह आदि महत्वशाली अवसरों को डोगरा जन-मानस ने संयोगों का फलितार्थ माना है। जन्म के बाद पालने में सोए बच्चे को हंसाने या रुलाने का श्रेय भी जन-मानस ने बिद्‌माता को ही दिया है, क्योंकि वह बच्चे से हंस-खेल रही होती है। इसी से सम्बद्ध एक लोक-विश्वास यह भी है कि नवजात शिशु के नखों में मैल इसलिए होती है कि बिद्‌माता पुतला गढ़ने और प्राणदान देने के उपरान्त बच्चे से हाथों-हाथ वो बची-खुची मिट्टी इकट्ठी करवाती है जिससे कि उसका बुत गढ़ा गया था। ये मैल वही मिट्टी होती है।

एक लोक विश्वास है कि किसी जीवित व्यक्ति को फलांगने से उसकी आयु

घट जाती है। इसलिए 'बिद्माता' नामक कथा में वह राजकुमारी के मंगेतर को फलांगती नहीं। बाहर आने के लिए उसकी चारपाई के नीचे से होकर गुज़रती है। इतनी एहतियात रखने वाली देवी-स्वरचित विधान की कितनी पावन्द है— इसे देखकर ही लोक-मानस अपने ललाट के आलेखों को अपरिवर्तनीय मानता है। इसी की प्रतिध्वनि एक लोकगीत में इस तरह अनुगुंजित है—

'बिद्माता दे डूर न पेंदे, भाग छुड़े दे बन्नी।'

यमदूत का कार्य भी वह खुद ही करती है। अवधि समाप्त होने पर वह कंजूस लेनदार की तरह अपनी अमानत लेने पहुंच जाती है। प्राण निकालने के लिए वह कई रूप धारण करती है। कई बार वह बुढ़िया का रूप धरकर आती है। लोक-मानस की कल्पना है कि जिस स्त्री का सुहाग छीनने वह आई है—यदि वह झट देहलीज पार करती बुढ़िया के पैर छू ले तो माता उसे सौभाग्यवती होने का वर देगी। तब अपने वचनों से बंधी 'बिद्माता' उसके सुहाग को अखण्ड रहने देने को विवश होगी।

बिन मन्दिर पुजे महामाया—राजाओं, मंत्रियों, दीवानों, सेठों-साहूकारों ने देवी-देवताओं के बड़े-बड़े ला-जवाव मन्दिर निर्मित करवाए— जिनकी कला और कारीगरी पर मनुष्य जाति नाज़ कर सकती है। इन देवालयों में पौराणिक देवी-देवताओं की मूर्तियां बड़ी रस्मों-प्रीतिभोजों से स्थापित की गई थीं। लेकिन ये धनाढ्य-धनिक-वणिक वर्ग अपनी सुविधा और स्वार्थ के अनुसार यश-कामना के लिए ही मन्दिर बनवाता है। किसी दूर-दराज, जंगल-झंखाड़ में भारत के कृषक के लिए मन्दिर नहीं बने। परन्तु इन कृषकों और निम्नवर्ग के दूसरे लोगों ने जिस देवी को माना है वो ईंट-चूने के मन्दिरों की वासी न होकर मिट्टी के घरौंदों में बसने वालों के हृदय-मन्दिर की वासिनी है। चाहे किसी शास्त्रकार ने इसकी अपार शक्ति के महिम्न-स्तोत्र की रचना न की हो, लेकिन लोक वाङ्मय में इसकी शक्ति-स्तुति के अंबार लगे दिखाई देते हैं। ऋषि-मुनि, देवी-देवता, मनुष्य-पशु सभी के भाग्य की लेखिका यही है। डोगरा लोक-मानस गुंजायमान है—धन्य है बिद्माता ! धन्य है जगत् माता ! ! इन स्वरों को आप किसी डोगरा पंचायत या चौगान में बुजुर्गों की महफिल में सुनिए। या अपने नाते-नातिनों को सहलाती बुढ़िया की जुबानी। आदिम जात अपने चौगिर्द की शक्तियों के बारे में बेहद उत्सुक रहती है। इन सब में रहस्यमयी, समादृत और प्रिय है—बिद्माता।

शाश्वत प्रश्न और कथा संदर्भ—व्यक्ति के सामने एक शाश्वत प्रश्न है कि उसकी जीवन स्थितियों, सुखों-दुःखों, ऊर्ध्व और अधोगतियों का मूल कहां है? आदमी की तमाम इच्छाएं पूर्ण क्यों नहीं होतीं? इसका उत्तर उसने स्वयं ही दिया है—क्योंकि वह बिद्माता के अंकुरों (लिपि) के अनुसार जीने के लिए प्रतिश्रुत है। अपना भाग्य बदलने में वह अक्षम है। इसीलिए धन-ऐश्वर्य में पोर-पोर डूबे

लोग भी तमाम सुविधाओं के बावजूद अपने कष्टों से उभर नहीं पाते। इसकी इच्छा के बिना एक पत्ता तक नहीं हिलता। गरीब को गरीबी, अमीर को अमीरी देने वाली भी यही है। डोगरांचल में बच्चे अपने बड़ों से एतद्विषयक कथांश बचपन से ही सुनना शुरू करते हैं और बाद में इसे भाग्य, तकदीर, सितारा आदि नामों से अभिहित करते हैं। ढलती उम्र में विधि-विधात्री के नामों से इसकी पहचान होती है। किसी लोक-कथा में ये झगड़ालू बुढ़िया बनती है और किसी में इसका सौंदर्य वर्णनातीत है। इसी के लिखे कारण कहीं राजा का बेटा शिकारी का घटिया जीवन जी रहा है और कहीं कोई राजकुमारी वेश्या के कोठे पर भीख मांगती हुई निम्न-स्तरीय जीवन व्यतीत कर रही है। कहीं और ये कठोर लेखिका भाई (राजकुमार) और बहन का ब्याह रचा रही है। इसके विधान में कुछ अवैध नहीं। 'बिद्माता दे अंकुर' लोक-कथा में राजकुमार के होनी को स्थगित करने के सभी प्रयास असफल होते हैं। राजकुमार अन्ततः हारकर उसके चरणों में गिरता है। वह उसे कहती है—**"मेरे पाए दे अंकुरें दा थोआड़ा जन्म-जन्मान्तरें दा सरबन्ध ऐ। अगले जन्म तेरी भैन तमाकू बनग ते तूं गन्ना। गुड़ बनियै फी तेरा सरबन्ध तमाकुआ नै होग।"** आदमी की अशक्तता और लाचारी इस कथन से कितनी स्पष्ट होकर उभर आती है! इस प्रश्न का कहीं कोई उत्तर नहीं कि यदि राजकुमार और राजकुमारी का जन्मों-जन्मों से तम्बाकू और सीरे का साथ चला आ रहा था तो इन्हें इस जन्म में बहन-भाई के रिश्ते में पैदा करने की क्या तुक थी?

नियति और आधुनिक प्रसंग—आज लोग हर चीज़ की युक्ति-संगतता की तलाश में हैं। लेकिन कदली के तने को परत-दर-परत उधेड़ने के बाद रिक्तता का वाहियात-अहसास ही मनुष्य की विडंबना है। लोक-विश्वासों में यह देवी मानव निर्मित समाज-व्यवस्था का मज़ाक उड़ाती नज़र आती है। व्यक्ति-निर्मित सिद्धान्त उसे स्वीकार नहीं। वह स्वेच्छानुसार संयोगों का निर्माण करती है। वह अपनी क्षणिक रचना मानव के नियमों की परवाह क्यों करे? तो क्या मानव की प्रत्येक स्वच्छन्द उड़ान की खिल्ली उड़ाना इसका प्रमोद है? शायद हां, शायद नहीं। पर साधारण ज्ञान की बात है कि सुख की चरम प्रतीति के लिए दुःख की रचना ज़रूरी है। इन कथाओं ने मनुष्य को उसकी बेबसी और कमज़ोरी का अहसास पूरी शिद्दत से करवाया। लोक-साहित्य के संदर्भ में अस्तित्ववादी दर्शन की शब्दावली में विचार करना युक्तियुक्त न होगा। परन्तु आज के व्यक्ति-केन्द्रित समाज दर्शन को आप लोक-कथाओं का प्रधान स्वर भी कह सकते हैं। व्यक्ति की कमजोरी, लाचारी देखिये और फिर उसे नियंत्रित करने वाले तत्त्व। अस्तित्ववाद के भौतिक दृष्टिकोण से लोक-कथाओं का विधिवादी दृष्टिकोण भिन्न है। विधि का सत्ता-क्षेत्र बेहद बृहद है। विष्णु, शिव आदि परमात्मिक शक्तियां भी इसका सिक्का मानती हैं। नियति का स्वरूप विज्ञापन की उपलब्धियों ने काफी कुछ उघाड़ा है।

आवादी की वढ़ोतरी से जिजीविषा का संकट, उपाधिमूलक समाज में प्रतिष्ठा का संवर्ष, वर्ग-संघर्ष में प्रतिक्रियागामी तत्त्वों द्वारा विरोध आदि कुछ ऐसी स्थितियां हैं जो कि 'मासेज़' में सांझे तौर पर प्रस्तुत हैं। इन्होंने व्यक्ति को नियतिवादी वनाया है। इस दर्शन में पलायनवादी स्थल वहां उपस्थित होता है जहां खगोलविद् परा-पृथ्वीय (एक्स्ट्रा टेरीशियल) उन्नत जीवन की संभावना जाहिर करता है। सूचिका के सिरे पर समा जाने वाले लाखों सूक्ष्म बैक्टीरिया के समान ही इस धरती का अस्तित्व बेहद लघु है—खरबों सितारों में धूल का एक कण। इससे अधिक की गर्वोक्ति नहीं की जा सकती। इसी स्थलपर व्यवित नियति को स्वीकार करने लगता है।

लोक-मानस ने अपने को इसी तरह क्षुद्र जानकर अलौकिक शक्तियों की परिकल्पना की थी। सभ्यता की शुरू की सीढ़ियां चढ़ने के उपरान्त ही उसने बिद्‌माता की अलौकिक शक्ति का सृजन किया और उसे प्राथमिक कार्य दिया भाग्य-लेखन का। लोक-कथाओं का पात्र भाग्यवाद की उंगली पकड़े बिद्‌माता के मनोरंजन का खिलौना वना रहता है। इस लोकदेवी से अपनी-अपनी शक्ति का शतरंज खेलते विष्णु, ब्रह्मा और शिव भी हार मान बैठे हैं। इसके लोक-आध्यात्मिक रूप को देख कर कह सकते हैं कि डुग्गर के जन-मानस में इस देवी की विशिष्ट मान्यता है।

एतद्विषयक लोक-कथाओं का मन्थन—बिद्‌माता सम्बन्धी लोक-कथाओं के विदोहन से ये निष्कर्ष प्राप्त होते हैं—

इसके लेखक अमिट हैं। साधु के रूप में भगवान की एक न चलना। वह अपने हठ की पक्की है। उसे अपने लिखे में फेर-बदल न तो सह्य है और न ही स्वीकार्य। भाग्य को बदलने की कोशिश करने वाले या इसे बदलने का उपाय सुझाने वाले को वह सहन नहीं करती। इस दृष्टि से वह यथास्थितिवादी है। परिवर्तन-कामियों से इसी कारण गाहे-बगाहे उसका टकराव देखने में आता है।

दिव्य पुरुष अपनी तीक्ष्ण ऐन्द्रिक शक्ति के बल से अनागत में झांकने की सामर्थ्य रखते हैं। इसीलिए बिद्‌माता के मन्तव्य उनसे छिपे नहीं रह पाते। बिद्‌माता से उनकी होड़ लगती है। कभी-कभी वह हारती है किन्तु अधिकतर हार प्रायः विपक्षी की ही होती है। 'संयोग बलवान' में साधु-रूपधारी परमात्मा जब धर्म-संकट में फंसे साहूकार को सलाह देकर लौटते हैं तो रास्ते में बिद्‌माता हाथों में मिट्टी भर-भरकर हवा में उड़ाती दीखती है। साधु पूछता है—"तू क्या कर रही है?" वह दृढ़ता से कहती है—"साहूकार को सलाह देने वाले के सिर में राख डाल रही हूं।" अन्त में बहस होने पर जो वृत्त घटित होता है उसमें बिद्‌माता विजयी होती है। परन्तु 'लेख बदली गे' में महात्मा बिद्‌माता को सही अर्थों में 'बख्त' डालकर रख देता है। बिद्‌माता को सेठ के दो लड़कों और एक लड़की के

भाग्य का पुनर्लेखन करना पड़ता है। बिद्दमाता ने जितनी आयु लिख डाली और जितना 'रिज़क' लिख दिया—वह तो उसे प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध कराना ही पड़ेगा—यह सूत्र पकड़कर साधु उसे अपना लिखा पलटने पर मजबूर करता है। इस कथा में भाग्य पर बुद्धि की विजय दिखाई गई है। और प्रकारान्तर से कर्मवाद की पुष्टि की गई है।

विष्णु भगवान जिस भाग्य के लिखे को मिटाने की जुर्रत नहीं रखते, उसे वदलने की सामर्थ्य उनके सच्चे भक्तों में है। सच्चे भक्त की महिमा का दिग्दर्शन भक्त-कथाओं में होता है। ईश्वर-भक्त साधु का वर सेठ-सेठानी के भाग्य को वदल डालता है।

अनादि शक्ति और दृढ़ संचालिका—धर्मशास्त्र भिन्न-भिन्न शक्तियों को विश्व की अनादि शक्ति सिद्ध करने का यत्न करते हैं। कहीं शिव को ब्रह्मा, विष्णु से ऊपर और कहीं ब्रह्मा या विष्णु को सर्वोपरि शक्ति कहा है। परन्तु लोक-मानस ने इन तीनों के लिए भी अगम-अगोचर शक्ति की अवधारणा की है। 'त्रैनें देवतें दा म्हान' लोक-कथा में एक बार शिव, ब्रह्मा और विष्णु स्वयं निर्णय करते हैं कि हम तीनों ही शिव-मण्डल चला रहे हैं। उनकी इस दर्पोक्ति पर दिग्मण्डल में प्रलयंकारी बिजलियां गिरने लगती हैं, उनचास प्रकार की हवाएं चलने लगती हैं और धरती-आकाश एक होने को विकल हो उठते हैं। तब तीनों घबराकर इस अदृश्य शक्ति के आगे गिड़गिड़ाते हैं और अपनी गर्वोक्ति के लिए क्षमा-याचना करते हैं। लोक-कथाकार का कहना है कि यह वह शक्ति अर्थात् बिद्दमाता है जिसके हाथों में तीनों के भाग्य की डोरें हैं।

'दानी शऊकार' में साधु और नारद अलभ्य मोती की तलाश में जिस क्रम में ब्रह्मा, विष्णु और बिद्दमाता के पास पहुंचते हैं उससे बिद्दमाता का महत्त्व स्वयं सिद्ध है। ये यात्रा मानो दरबान, दीवान, मंत्री और राजा तक फरियाद की यात्रा है।

बिद्दमाता के कठोर अनुशासन को देखकर जन-मानस इसे दृढ़-प्रतिज्ञ देवी की संज्ञा देता है। 'नेकी दा फल म्हेशां मिट्ठा' कथा में पण्डित की भक्ति पर प्रसन्न होकर विष्णु भगवान उसे पुत्र का वरदान दे डालते हैं। फिर ध्यान आता है कि ये तो उनके बस से बाहर की बात है। वे नारद सहित शिव के पास पहुंचते हैं। शिव भी बेबसी जाहिर कर देते हैं। तब चारों बिद्दमाता के दरबार में हाजिर होकर विष्णु भक्त पण्डित के लिए सिफारिश करते हैं। माता एकदम ना कर देती है। आखिर नारद जी की बहुत खुशामद पर वह मान जाती है। परन्तु अनिच्छापूर्वक पुत्र देने के कारण वह सबको नचा डालती है। उसकी माया के कारण पण्डित के हाथ फल नहीं आते। आखिर बेचारा रक्त और गंदगी वाला फल उठा लेता है। माता उसे उसकी उम्र मांग लेने के लिए कहती है। और जब वह मांगने लगता है तो उसकी

जिह्वा पर विराज जाती है। बेचारा कठिनाई से पुत्र की बारह बरस आयु ही मांग पाता है। (इतनी कंजूस और हठी देवी) अन्ततः बारह बरस बाद नदी में नहाते लड़के के प्राण हरने लगती है तो शिवजी उसका गला आन दबोचते हैं। इससे लड़के की मृत्यु की घड़ी टल जाती है और वह बच जाता है। परन्तु ऐसे बहुत कम प्रसंग हैं जिनमें वह अपने रचे विधान का पालन न कर पायी हो।

बिद्माता के भिन्न-भिन्न नाम-रूपों की विशेषता यह है कि वे स्वतंत्र व्यवहार करते हुए भी अन्ततः इसी में समा जाते हैं। कुछ कथाओं में 'भाग्य' मानवोचित व्यवहार करता है। भाग्य और लक्ष्मी का कई बार विवाद होता है कि दोनों में बड़ा कौन? इन प्रसंगों में लक्ष्मी सदैव हारती है और भाग्य का बड़प्पन सिद्ध होता है। इसी तरह : १. 'तकदीर ते तजबीज', २. 'दिनें दा फेर' ३. 'भाग ते लछमी' ४. 'होनी ते करनी' इन चारों कथाओं का कथ्य एक है। थोड़ा-थोड़ा अंतर बयान करने के ढंग के कारण, और व्यक्तिशः प्रक्षिप्त अंशों के कारण चला आया है। बिद्माता—'तकदीर', 'सरस्वती', 'भाग्य', और 'होनी' के रूपों में इनमें विद्यमान है।

उसके द्वारा निर्धारित आयु को घटाना-बढ़ाना संभव नहीं। 'बिद्माता दे लेख' लोक-कथा में साहूकार का लड़का भूत के हाथों धर्मराज को संदेश भेजता है कि उसकी आयु में एक दिन घटा या बढ़ा दे। धर्मराज उत्तर भेजता है—"बिद्माता ने जो कुछ लिखा है वो उल्टे हाथों लिखा है और उसके लिखे में कोई भी घड़ी-पल घटा-बढ़ा नहीं सकता।"

कर्मवाद का परिप्रेक्ष्य और भाग्यबाद—परन्तु भारतीय अध्यात्म का कर्मवाद भाग्यवाद को बदलने में समर्थ है। लोक-कथाओं द्वारा भी इस बात की पुष्टि होती है कि पिछले जन्मों के कर्म ही भाग्य का निर्धारण करते हैं और यह कि वर्तमान कर्मों का फल भावी जन्मों पर पड़ता है। 'दो लुहाई' लोक-कथा में कुत्ते का अपनी मौत का बदला लेने के लिए कुटिल हलवाई के घर पुत्र रूप में जन्म लेना और फिर भरी जवानी में उसे पुत्र-शोक से ग्रसित करके चले जाना—कर्मों के फल की प्रभुता पर बल देते हैं। लोक-कथाओं के दर्पण में भाग्य, जन्म से मृत्यु तक का वृत्तान्त एक निर्धारित कार्यक्रम के अनुरूप घटित होता है। कहीं-कहीं तो मृत्यु का इतना विकराल स्वरूप चित्रित है कि पलायनवादियों के वैराग्य की कुछ-कुछ समीचीनता समझ में आने लगती है। 'काल-देवता' में मृत्यु का विकराल रूप सहृदय विकल न हो उठेगा। लगता है काल देखकर कौन बिना भेद-भाव या विवेक के जीव-संहार पर तुला बैठा है।

भाग्य सम्बन्धी कथाओं में बिद्माता अवांतर प्रसंगों में ही अवतरित हुई है। इन अवांतर प्रसंगों में कथा-रूढ़ियां बहुतायत में उपलब्ध होती हैं।

साधारण जन का व्यवहारवाद—कर्मवाद के ऊपर नियतिवाद की विजय

भाग्यवाद की पूर्व-भूमिका है। व्यक्ति दुनिया में डर कर रहे। अपने से वड़ी एवं अज्ञात शक्तियों से खौफ खाए और कर्मवाद की महत्त्वाकांक्षा को प्राप्त न हो। घर-गृहस्थी में इस मध्यमार्गी रास्ते को अपनाकर लोक-मानस ने अनेक लोक-कथाओं में इस दर्शन का प्रतिपादन किया है। सुखी और सरल जीवन के प्रति आकर्षण और जोखिमों के प्रति विमोह को साधारण जन का व्यवहारवाद कहना चाहिए। समूह का अहंचेतन इसी में शरण ढूंढ़ता है। यहां व्यवहारवाद के लिए शंका हो सकती है कि क्यों न इस निरापद सिद्धान्त को पलायनवाद कहा जाए। इस शब्द के प्रयोग पर वर्तमान लेखक को भारी आपत्ति है। कारण कि डोगरांचल की सांस्कृतिक परंपरा में इस शब्द के लिए कहीं जगह नहीं। यहां की कठिन कंडियों और पथरीली पहाड़ियों पर आदमी चैन की नींद सोने की फुर्सत नहीं ढूंढ़ सकता। हर कदम पर जोखिम और संघर्ष उसका रास्ता देखते हैं। आदमी जीने के लिए साधनों की तलाश सतत जारी रखता है। शायद इसीलिए यहां की लोक-कथाओं का 'पात्र' एक बार असफल होने पर हिम्मत नहीं हारता। उसे यह कहते नहीं सुना जाता कि 'किस्मत बुरी है तो काम करने का कुछ लाभ नहीं।' कर्म वे लगातार करते हैं—संघर्षों से गुज़रते हुए। पीछे जिन चार कथाओं का ज़िक्र आया है उनमें एक बार हाथ में आई किसी मूल्यवान वस्तु के खो जाने पर इनका केन्द्रीय पात्र 'गरीब बूढ़ा' दोबारा लकड़ियां बेचने या दूसरा काम करने निकल पड़ता है। पुन: असफल होने पर वह तीसरी बार, फिर चौथी बार यत्न करता है। इसे कौन पलायन कहेगा ? हां, महत्त्वाकांक्षा इनमें नदारद है। केवल दो वक्त की रोटी की समस्या प्रमुख है। इन कथाओं का ढांचा एक है। बिद्दमाता और लक्ष्मी की शर्त, किसी गरीब पर परख, गरीब को अंगूठी या लाल मिलना जो विधि के कारण मछली के पेट में चला जाता है। फिर नौ-लखा हार मिलना, इसका गिद्ध द्वारा झपटा जाना, फिर अशर्फियों की थैली मिलने पर चूल्हे के तल में दबाना और राख लेने आई पड़ोसिन का घर खाली देखकर इसे उखाड़ ले जाना। अन्त में दिनों का फिरना। एक-एक करके तमाम चीज़ों का वापस मिल जाना; बिद्दमाता की विजय और उसकी प्रभुसत्ता का भान। इस तरह दु:खद दिनों के बाद भले दिनों की आमद के आशावादी स्वर डोगरी लोक-कथाओं में सुनाई देते हैं।

बिद्दमाता सम्बन्धी लोक-कथाओं से निम्नलिखित बातें सार-रूप में स्पष्टतया उभरती हैं—

१. सबके ललाट पर भाग्य के अंकुर डालने वाली यही है। इसका विधान बदलना कठिन है।

२. हठी और कंजूस स्वभाव। परन्तु खुशामद पर वह मन की मुराद पूरी करती है। उसके होंठों पर मुस्कान की रेखा कभी-कभार ही बनती है।

३. वह खुद ही प्राण डालती है और खुद ही निकाल लेती है। भाग्य के बीज

भी उसी द्वारा रोपे जाते हैं।

इन तीनों मुद्दों के दृष्टिगत ही कोई अनहोनी घटने पर साधारण जन ने अपने आपको इस तरह समझाया है—

फिकर नि करना, वसोस नि करना 'मत्थै लिखी दी' सो होई।

इन शब्दों में अपनी अशक्तता की स्वीकृति के साथ ही साथ अन्योक्ति भाव से 'बिद्‌माता' की प्रचंड शक्ति की अभिशंसा भी उपलब्ध होती है। सही है जिस 'होनी' के पाश से रामचन्द्र जैसे समर्थ-शक्तिवान लोग नहीं बच सके उस अज्ञात रहस्यमयी के समक्ष साधारण-जनों की क्या बिसात—

होनी बरत गेई ए रामचन्दर, कां गेई सीता प्यारी ओ जोगी!

डोगरा वेशभूषा

□ धर्मचन्द प्रशांत

किसी भी देश की वेश-भूषा उसी सभ्यता और संस्कृति की प्रतीक कही जाती है। वेशभूषा का सम्बन्ध देश की जलवायु के साथ भी है, इसीलिए गरम देश और सर्द देश के पहनावे में वड़ा अन्तर होता है। डुग्गर प्रदेश में गरमी भी अधिक पड़ती है और शीत भी। इसी कारण यहां खिलके कुर्ते भी पहने जाते थे और लम्बे चोगे भी। गहनों का भी यही हाल था।

डोगरा परिधान का पता यहां के प्राचीन चित्रों से मिलता है। इसलिए इस विषय में खोज करते समय हम डेढ़-दो सौ वर्ष से ऊपर नहीं जा सकते हैं कि राजा रणजीत देव के समय पंजाब की प्रसिद्ध बेग़म मुग़लानी भागकर जम्मू चली आई और यहां पर राजा ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। बेग़म से मिलने के लिए रणजीत देव की रानियां भी आयी थीं जो गहनों और जरी के वस्त्रों से लदी हुई थीं। इसका उल्लेख मुग़लानी बेगम के साथी इतिहासकार मस्कीन ने भी किया है। परन्तु मस्कीन ने राजा रणजीत देव की रानियां उनके पर्दे में रहने के कारण देखी नहीं होंगी। उसने इस विषय में जो कुछ भी लिखा है वह बेग़म की ज़बानी होगा। वह इसी कारण गहनों के नाम ठीक-ठीक नहीं लिख सका है। मस्कीन लिखता है कि जम्मू की रानियों की वेशभूषा मुगलिया परिधान से बिल्कुल मिलती है। यहां स्त्रियां तंग चूड़ीदार पायजामा पहनती हैं और लम्बे कुर्ते के ऊपर बड़ी कीमती पोशाक पहनती हैं। गहनों का वर्णन करते समय वह इसका मिलान बेगमों के गहनों से करता है। उसने लिखा है कि राजा रणजीत देव की रानियां सोने के गहनों से मढ़ी हुई थीं।

यह सत्य है कि डोगरा परिधान पर मुगलिया वेशभूषा का बड़ा प्रभाव पड़ा है परन्तु यहां पहने जाने वाले वस्त्रों की कुछ अपनी भी विचित्रता है। इसलिए हम इस लेख में इस बात का विशेष उल्लेख करेंगे कि कौन-सा वस्त्र यहां का अपना है और कौन-सा प्रभाव रूप में चला आया है।

प्राचीन काल में किसी भी देश की मुख्य वेशभूषा वहां के राजा की होती थी और उसके उपरान्त सामन्तों और अन्य राज-दरबारियों की होती थी। वह होती तो थी राजा की नकल परन्तु उतनी कीमती नहीं और तड़क-भड़क में भी कम।

पुरुषों की प्राचीन डोगरा वेशभूषा इस प्रकार थी—सिर पर पगड़ी जो सात रंगों की हुआ करती थी, पहनी जाती थी। पगड़ी (साफा) के ऊपर कलगी और ज़िगा रहती थी। पगड़ी के बांधने का ढंग बदलता रहा है। राजा रणजीत देव के समय साफा पहनने का ढंग बिल्कुल डोगरा था परन्तु महाराज गुलाव सिंह के समय इस पर कुछ सिख दरबार का प्रभाव पड़ा। पगड़ी का पलड़ा गले के पिछले भाग को ढके रहता था। यह महाराजा रणजीत सिंह के दरबारी परिधान की विशेषता थी। तंग चूड़ीदार पायजामा और खिलका कुर्ता यह डुग्गर की अपनी विशेषता थी जो काफी समय तक चलती रही है। इसके ऊपर एक ज़री चोगा पहना जाता रहा है जो काफी कीमती रहता था। पुरुष भी गहने पहनते थे। वे कानों में बाले और गले में कण्ठे और हाथों में कंगन और गोखरु पहनते थे। यह था राजाओं और दरबारियों का पहनावा; परन्तु साधारण जनता की वेशभूषा पर बाहर का प्रभाव कम पड़ा है। साधारण पहनावा जो दो सौ वर्ष पहले था; ग्रामों में आज भी वही है। आज अन्तर केवल इतना है कि कोट पहना जाता है और खिलके कुर्तों के स्थान पर कमीज़ें आ गई हैं। पहले बटन नहीं होते थे और उनकी जगह घुण्डीबीड़ा चलता था। मर्दाना पाजामा कुछ ढीला रहता था। शीतकाल में लोग पट्टु ओढ़ लेते थे।

स्त्रियों की वेशभूषा भी समय के साथ चलती आई है। सुत्थन, चूड़ीदार जनाना पायजामा, बिल्कुल मुसलमानी नकल है। इससे पूर्व घाघरे पहने जाते थे। सुत्थन का रिवाज यहां मुगलों के समय ही हुआ है। रानियों का परिधान कमीज और उसके ऊपर, 'पशोआज' रहती थी। साधारण स्त्रियों केवस्त्र घाघरा चोलड़ी और घना दुपट्टा था। घाघरा तो काफी देर तक चलता रहा। महिलायें सुत्थन तो पहनती थीं परंतु उसके ऊपर घाघरे लगा लेती थीं। यह पहनावा आज से तीस वर्ष पूर्व तक प्रचलित था। ग्रामों में मोटे वस्त्र की 'गिद्दी' बांधने का रिवाज था जो आज भी है। जूते की बनावट में थोड़ी-सी भिन्नता है। रानियों और दरबारी—स्त्रियों के जूते जरी के होते थे जिन्हें चानना कहा जाता था। साधारण जूता वही था जो आज भी ग्रामों में पहना जाता है। साधारण वर्ग की महिलाएं लाखी के जूते पहनती थीं जो नया फैशन समझा जाता था। आज से ५० वर्ष पूर्व इसका बड़ा रिवाज था।

डोगरी परिधान में वास्कट भी सम्मिलित हुई थी और यह अंग्रेजी पहनावे की नकल थी। हमारे डुग्गर में वास्कट पर एक सौ तक सीप के बटन जड़े रहते थे। यह फैशन काफी समय तक चला था। कोट, वास्कट और टोपी अंग्रेजी फैशन

था। यहां पर साधारण लोग कानों वाली टोपी पहनते थे। ग्रामों में आज भी पहनते हैं। सर्दियों में इनके अन्दर रुई भर ली जाती थी। इसी प्रकार कुर्तों और पायजामों में भी रुई भर दी जाती थी शीत से बचने के लिए।

जम्मू में सीप के बटन आज से ६५ वर्ष पहले चले थे, उससे पूर्व कुर्तों पर घुण्डी लगाने का रिवाज था। घुण्डी एक ही रहती थी, गले के साथ। जनाना कुर्ते किनारी के साथ जड़े रहते थे। जितना ज्यादा कीमती कुर्ता उतनी ही अधिक किनारी। सिलेमा और तिल्ला बाद में आया है और वह भी पहले राजघराने में। सिलेमा और तिल्ला से जड़ित वस्त्रों को ज़री कहते थे। सरकारी तोशखाना में एक ऐसी कमीज़ थी जिस पर मोती और हीरे जड़ित थे। इस प्रकार दुपट्टों पर हीरों के टांकने का रिवाज था।

पुरुषों का ग्रीष्मकाल का पहनावा था खिलका कुर्ता, उसके ऊपर दुपट्टा, सिर पर पग्ग और साफा और नीचे धोती अथवा घुटन्ना। परन्तु शीतकाल में पस्तीन अथवा फर्द लिया जाता था। पस्तीन में रुई भरी रहती थी, वह आधी बाहों वाली भी होती थी और पूरी भी। यह साधारण होती थी और कीमती भी। इसके किनारों पर कीमती फर लगाने का रिवाज था। राजदरबार में जाने वाले लोग चोगे पहना करते थे।

जनाना गहनों में डोगरा प्रदेश बढ़ा-चढ़ा था; इनका वर्णन कुछ पर्यटक इतिहासकारों ने भी किया है। राज-दरबारी अथवा अधिक जन तो सोने के गहने पहनते थे, परन्तु निम्न वर्ग के पुरुष सोने का गहना नहीं पहन सकते थे। राज-घराने में पुरुष सोने के जड़ाऊ हार भी पहनते थे। स्त्रियों की साधारण वेशभूषा हाथों में चांदी के गोखरु अथवा पौंचियां थीं। गले में चांदी की मेल काफी वज़नी होती थी। कानों में चांदी के वाले अथवा बालियां और सिर पर चक्क और कन-फूल, नाक में नत्थ जिसे बालूं कहते हैं। निम्न वर्ग की महिलाएं चांदी की ही नत्थ पहनती थीं परन्तु मध्य वर्ग की स्त्रियां सोने की।

राजघरानों और धनवान स्त्रियों के गहने सोने के ही होते थे, परन्तु रानियों के जड़ाऊ रहते थे। वे थे—

हाथों में पौंचियां—ये साधारण नगों से लेकर हीरों और पन्नों से जड़ित रहती थीं, बाह के ऊपर कांटे होते थे जो काफी जड़ाऊ होते थे। गले के गहनों में हार सबसे बड़ा गहना था। लोक-कथाओं में नौलखिए हारों का भी वर्णन मिलता है। हारों पर हीरे, पन्ने और लाल जड़े रहते थे। इनके अतिरिक्त बुगदिएं भी पहनी जाती थीं। यह पुराने पैसे के आकार की होती थीं, ऊपर कोई चित्र रहता था। जुगनी और नाम भी गले के ही गहने थे जो रत्नों से जड़ित रहते थे। मध्य वर्ग की महिलाएं गले में सोने की ढड्डिएं पहनती थीं, निम्न वर्ग वाली चांदी की पहनती थीं। कानों में बुन्दे और कुण्डल भी पहने जाते थे।

माथे का गहना टिक्का था और कान के पास अर्ध-चन्द्रमा भी रहता था। सिर पर चक्क और कन्न-फुल्ल और उंगलियों में अंगूठियां पहनने का बड़ा पुराना रिवाज़ है। पांवों में छल्ले पजेवें (पायज़ेब) और कड़ियें होती थीं। निम्न वर्ग और मध्य वर्ग की स्त्रियां चांदी की पहनती थीं और राजघरानों की सोने की। बांह में सोने अथवा चांदी का नैन्त (अनन्त) पहनने का रिवाज़ था। निम्न वर्ग की स्त्रियां तांबे का पहनती थीं। कानों में झुमके पहनने का रिवाज आज से ५० वर्ष पूर्व ही चला था और आज तक भी है। हाथों में बंगा कोई ७० वर्ष पहले नहीं पहनी जाती थीं, ये पंजाबी गहना था। हमारे डुग्गर में पौण्डों का हार पहनने का रिवाज था। राजघरानों में झूमर भी माथे पर लगाया जाता था जो मुगलिया गहना था। अंग्रेज़ी गहना कांटा (कानों का) भी पहना जाता रहा है।

आज पुराने गहनों में केवल बालू (नत्थ) ही प्रचलित है, शेष नये ढंग के हैं। परन्तु आधुनिक गहने वज़नी कम होते हैं। प्राचीन गहने भारी अधिक होते थे। एक गोखरु ३० तोले तक होता था।

'लोसर'—लद्दाख का नववर्षोत्सव

□ छेवांग रिगज़िन

जिस प्रकार नदी के दोनों तटों पर दूर-दूर तक खिले फूलों से किनारे सुशोभित होते हैं उसी प्रकार सिन्धु नदी के दोनों तटों पर दूर-दूर तक फैले ग्राम फूलों की ही भांति दृष्टिगोचर होते हैं जो उस पर्वत प्रदेश को एक अतिरिक्त गरिमा से मंडित कर देते हैं। वर्षा ऋतु में ज्यों बादलों के प्रथम गर्जन से विकम्पित पुष्प उल्लासमग्न हो जाते हैं उसी प्रकार लद्दाख के निवासी नववर्षागम यानी 'लोसर' के अवसर पर प्रसन्नता के अतिरेक के कारण उन्मत्त हो उठते हैं। दीपों की पंक्तियां गांव-गांव में प्रकाश की फुहार बरसाने लगती हैं। 'लोसर' को लद्दाखी लोग लगभग दीपावली की ही भांति मनाते हैं।

लोसर-पर्व का प्रारम्भ पूजा-पाठ से होता है। मुख्य लोसर के आरम्भ होने से पूर्व 'उपलोसर' का आयोजन किया जाता है। 'उपलोसर' को तिब्बती बौद्ध धर्म के द्गेलुकपा सम्प्रदाय के संस्थापक और मूर्द्धन्य विद्वान, कवि, लेखक तथा महासिद्ध स्वामी 'र्ग्यालवा लोजङ टकस्पा' (बौद्धिसत्व सुमतिकीर्ति) की स्मृति में मनाया जाता है। उस दिन उनकी पावन स्मृति में गांव-गांव, घर-घर में दीप जलाये जाते हैं और पूजा-पाठ का आयोजन किया जाता है। यह पर्व लद्दाख के अतिरिक्त तिब्बत, लाहुल-स्पिति, किन्नौर, भूटान, सिक्किम तथा अन्य अनेक पहाड़ी (बौद्ध) क्षेत्रों में भी समान उत्साह के साथ मनाया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यदि 'उपलोसर' हमारे धार्मिक इतिहास का परिचय प्रस्तुत करता है तो मुख्य लोसर प्राचीन राजा-महाराजाओं के राजनीतिक इतिहास का। इस सन्दर्भ में एक बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि इन दोनों पर्वों में लद्दाख की प्राचीन संस्कृति एवं परम्पराएं जीवित एवं मुखरित हैं।

'लोसर' तिब्बती पंचांग के अनुसार दसवें महीने की पच्चीस तारीख से आरम्भ होता है और ग्यारहवें महीने की चार-पांच तारीख तक निरन्तर धूमधाम से मनाया जाता है। लोसर का पर्व लद्दाखियों को अपनी प्राचीन सभ्यता एवं

संस्कृति के यथार्थ प्रदर्शन का अवसर प्रदान करता है। पहले लद्दाख का लोसर भी तिब्बती लोसर के समान बारहवें महीने के अंतिम और पहले महीने के प्रथम सप्ताह में मनाया जाता था किन्तु बाद में एक ऐतिहासिक घटना-विशेष के कारण लद्दाखियों ने लोसर को तिब्बतियों से एक मास पूर्व मनाने का निश्चय कर लिया। लद्दाख के इतिहास में प्राप्त एक उल्लेख के अनुसार जब लद्दाख में 'ग्यलपो सिंहगे नामग्यल' नामक महाराजा राज्य करता था तब लद्दाख का तिब्बत के साथ युद्ध छिड़ गया था। क्योंकि यह युद्ध लोसर से एक माह पूर्व लड़ा जाना था और युद्ध एक मास में समाप्त हो जायेगा, इसकी कोई निश्चित सम्भावना नहीं थी। अतः लद्दाखी सैनिकों ने सही तिथि से एक माह पूर्व ही लोसर का उत्सव मना लिया और लड़ाई पर चल गये। तब से लद्दाख का लोसर तिब्बती लोसर से एक महीना पहले पड़ता है।

२९ तारीख की शाम को लद्दाखी लोग 'द्गुथुक' पीते हैं। 'द्गुथुक' में ९ पदार्थ—कोयला, मिर्च, नमक, रूई, अंगूठी, कागज, सूर्य, चन्द्रमा, चीनी आदि अलग-अलग 'आटे' में बंद करके डाल दिए जाते हैं। इसे 'गुथुक' भी कहते हैं। गुथुक पीते समय जिस व्यक्ति के हिस्से में जो वस्तु अथवा पदार्थ आता है, उसी के अनुसार उस व्यक्ति के प्राकृतिक गुणों एवं स्वभाव का परीक्षण एवं निर्धारण किया जाता है। उदाहरणार्थ, अगर किसी व्यक्ति के हिस्से में कोयला आता है तो उस व्यक्ति को मन का काला (गंदे विचारों वाला) माना जाता है। इस प्रकार 'द्गुथुक' में डाली गई नौ की नौ वस्तुओं के साथ एक-एक अर्थ जुड़ा रहता है जैसे—मिर्च से कटु वचन, रूई से शुद्ध विचार, कागज़ से धार्मिकता, सूर्य से यश, चन्द्रमा से सौन्दर्य और अंगूठी से कंजूसी आदि। जिस व्यक्ति के हिस्से में 'अच्छी' वस्तु आती है उसे पुरस्कृत किया जाता है और जिस व्यक्ति के हिस्से में 'बुरी' चीज़ आती है उसे दण्ड का भागी माना जाता है।

३० तारीख लद्दाख में 'नमगङ' के नाम से जानी जाती है। 'नमगङ' बौद्धों के मतानुसार धार्मिक अथवा शुभ दिन का पर्याय है। इस दिन पुनः गांव-घर में दीप जलाए जाते हैं। इस अवसर पर भक्तिपरक रचनाओं का गायन किया जाता है। यह गीत प्रायः इस पंक्ति से आरम्भ होता है—

लामा ला बुलो, सुङग्यस ला बुलो, छोस ला बुलो, गेदुन ला बुलो।

अर्थात् हम अपने गुरु, बुद्ध धर्म तथा संघ को ज्योति एवं श्रद्धा का यह भावपूर्ण उपहार पूर्ण श्रद्धा एवं आस्था के साथ समर्पित करते हैं। दीप क्रमपूर्वक व्यवस्थित ढंग से सजाये जाते है जिन्हें प्रायः बालक और युवा वर्ग के लोग ही जलाया करते हैं। इसी दिन शाम को लगभग सात-आठ बजे सभी घरों से 'मेतो' (अग्निपुंज) निकाले जाते हैं। घर से 'मेतो' बाहर ले जाने का अर्थ साल भर के कुकर्मों को जलाना होता है।

पहली तारीख को सभी लोग अपने सगे-सम्बन्धियों से मिलने जाते हैं और परस्पर एक-दूसरे को शुभ कामनाएं अर्पित करते हैं। सम्बन्धियों से मिलने जाते समय प्रत्येक व्यक्ति के हाथ में एक मदिरा-पात्र (छङ् गी जमा), एक मंगल कपड़ा (टाशी खतक) और सात या पांच खमीरी रोटियां होती हैं। इस सारी प्रक्रिया को 'छकस' कहा जाता है। 'छकस' का शब्दार्थ प्रणाम है। मिलने आया व्यक्ति घर में प्रवेश करते ही घर के सभी सदस्यों को परम्परागत ढंग से 'जूले' (नमस्कार) करता है। नवविवाहितों के लिए 'छकस' करना अनिवार्य माना जाता है। इस दिन आम लोगों के साथ चूल्हे को भी गृहिणी के रूप में 'छकस' करना पड़ता है। भगवान् बुद्ध की प्रतिमा एवं गुम्पाओं के साथ पशुओं, चक्की एवं अन्य उपयोगी वस्तुओं के सामने भी दीप जलाए जाते हैं। मनुष्यों को तो बिना किसी भेद-भाव के, देखने-मिलने मात्र पर, घर में आने का निमन्त्रण दिया ही जाता है, कुत्ते-बिल्ली को भी उस दिन ससम्मान आमंत्रित किया जाता है।

दो तारीख को 'वगड़ोन' (भोज) होता है जिसमें ऊंच-नीच का भेद भुला कर सभी परिचितों को निमन्त्रित किया जाता है। इस अवसर पर नवजात-शिशुओं एवं सद्यः विवाहित जोड़ों को बुलाने पर विशेष बल दिया जाता है। 'वगड़ोन' के अवसर पर स्त्रियों एवं पुरुषों के बीच 'छङलु' (मदिरापान) की प्रतियोगिता होती है। लोसर के स्वागत में लद्दाख के नर-नारी मदिरोन्मत्त होकर निम्न प्रकार के गीत गाते हैं—

टाशी शोक थोरङ टाशी शोक।
यगि गुङस्डोन थोनपोला टाशी शोक॥
ञिदाला ञिसका युकस्पा देनि।
टाशी पो योङससु ख्यील॥
टाशी शोक थोरङ टाशी शोक।
यगि मखङ ढ्यिला टाशी शोक॥
यप-युमला फ-म कुन युकस्पा देनि।
टाशी कुन योङससु ख्यील॥

"मंगल हो, प्रातःकाल का मंगल हो। वह नीलगगन भी मंगलमय हो जहां सूर्य-चन्द्र सुशोभित होते हैं—सब कुछ मंगलमय हो। उस घर का भी मंगल हो जिस में माता-पिता सकुशल निवास करते हैं...।"

इस अवसर पर लद्दाखी लोग भक्ति-रस के साथ-साथ वीर रस की भी अजस्र धारा प्रवाहित कर देते हैं। अपने गीतों के माध्यम से वे लोग अपने वीरों को बधाई संदेश भजते हैं—

ञोजा पवो कुनला टाशी देलेक्स युयिन
लोसर दुसछेन सोमे टाशी देवेक्स युयिन

मिलुस मिलुस जेरते इजुक मिलुस थोपगोस
पवो-पवो जेरते इजुक पचल स्तन गोस

"ओ हमारे वीर जवानो, नये वर्ष के आगमन के इस शुभ अवसर पर हम तुम्हें हार्दिक बधाई भेजते हैं। हम प्रार्थना करते हैं कि हमें जब-जब मानव-जीवन जीने का अवसर मिले, हम तुम जैसे सेनानी बनें ताकि हम अपनी मातृ-भूमि की रक्षा हेतु कार्य कर सकें।"

वीर एवं भक्ति रस के गीतों के परे भी एक संसार रचा जाता है। इसे लद्दाखी युवा वर्ग के लोग रचते हैं। इस संसार में शृंगार-परक गीतों की प्रधानता होती है। बहुत से युवकों को एक लम्बी अवधि के बाद अपनी प्रेयसियों से मिलने का सुअवसर प्राप्त होता है और ऐसे में उनके कण्ठों से यह मधुर गीत फूट निकलते हैं—

अचे देमों ! गङो नस् स्क्योद पीन
मानस मजलपिनना ग्योदपावो छुङ
ङ सेम्म क्यी नस लुक्स ख्योरङ ला शतना
ख्योदरङ थुकसदेन मिछेस
हैमिस छेसछुई स्तनमो ला योङपा
ख्योदरङ दङ जलजोम सोङ॥

"सुन्दरी ! तुम कहां से आई हो ? अगर मैं आज तुम से न मिल पाता तो उम्र भर पश्चाताप की अग्नि में जलता रहता। एक लम्बे अन्तराल के बीच तुम न जाने कहां खो गई थीं। इस सारी अवधि में मेरी क्या दशा रही, यह न तो तुम सुन सकोगी और न कल्पना ही कर पाओगी। खैर ! हम दोनों के भाग्य में एक दूसरे का जीवन-साथी बनना बदा है—इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं। फिर भी, लोग कहते हैं कि हमें 'हैमिस मेले' ने मिलाया है···।"

नृत्य-संगीत-मदिरापान की इस सभा के समाप्त होने पर सब लोग एक-दूसरे के दीर्घायु होने की कामना करते हुए, एक-दूसरे को बधाई देते हैं और अपने-अपने घर चले जाते हैं। 'छङ' (शराब) पीकर मतवाले हुए चरण 'लोसर' पर्व के अंतिम क्षणों को साकार करते हुए गहरी निद्रा में मग्न हो जाते हैं।

हब्बा खातून : एक परिचय

□ प्रो० काशीनाथ दर

कश्मीर की सांस्कृतिक थाती जितनी समृद्ध है उतनी ही विचित्र भी। प्रकृति की इस लाडली मानसपुत्री ने जहां समस्त संसार को अपनी नैसर्गिक तथा अप्रतिम शोभा-सुषमा से चकित किया वहां अपने मानसिक उबाल के माध्यम से साहित्य के हर एक अंग में नये अध्याय जोड़ दिए हैं। इतना ही नहीं विश्व के तीन बड़े धर्मों ने इसे अपनी प्रयोगशाला बनाया। इस तरह यहां के जन-जीवन से बौद्धों की करुणा, हिन्दुओं की सहिष्णुता तथा मुसलमानों की एकनिष्ठता का समो जाना स्वाभाविक है। आजकल का कश्मीरी भले ही नाम से हिन्दू या मुसलमान हो, संस्कारवश उसमें ये तीनों गुण घुल-मिल गए हैं। सम्भवतः यही प्रमुख कारण कश्मीरियों के धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण में निहित है। इस प्रकार जब चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग एक विदेशी संस्कृति ने यहां अन्दर आने के लिए द्वार पर दस्तक दी तो उसके लिए जैसे कश्मीरियों के जीवन दृष्टिकोण ने पहले से ही उर्वरा भूमि तैयार कर रखी थी। इस्लाम की प्रचारात्मक उग्रता किसी उल्लेखनीय प्रतिक्रिया के अभाव में विवश होकर सौम्यता में बदल गई। राजनीतिक तथा सामाजिक वातावरण में एक अभूतपूर्व मोड़ आया; जन-विश्वासों को धक्का लग जाने का भय था, परन्तु इसी धर्म-संकट में साहित्य ने अपना दायित्व पूरा किया।

हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों के इस संगम पर लल्लेश्वरी का प्रादुर्भाव हुआ। साहित्य के माध्यम से इस नारी विभूति ने जन-विश्वासों को ढह जाने से बचाया। जनता के सामने उस समय प्रत्यक्ष अति कड़वा था, अतः इस जागरूक कवयित्री ने प्रत्यक्ष की कड़वाहट में परोक्ष की मिठास मिला दी। भौतिकता से आंखें मींचकर आध्यात्मिकता का सुनहरा स्वप्न जनता के सामने रखा। इस प्रकार वर्तमान को हेय समझकर आध्यात्मिक लाभ के ब्याज से इसने कश्मीरी जनता को जीने के लिए प्रेरणा दी, उनके लिए संजीवनी औषधि जुटा दी। 'लल्ला' का

अध्यात्मवाद मूलतः शैव दर्शन का ऋणी है।[1] परन्तु समय की नाड़ी पहचानते हुए इसने इसमें इस्लामी सूफीवाद की भी पैवन्द लगा दी। यह समय की मांग भी थी, क्योंकि औपचारिक धर्म-परिवर्तन से पहले ही कश्मीर में इस्लामी सूफीवाद प्रविष्ट हो चुका था,[2] और विचारों के आदान-प्रदान से कश्मीरी जीवन दर्शन (शैव) से इसका सान्निध्य स्थापित हो चुका था। 'लल्ला' की उक्तियों में यद्यपि हिन्दू-शैव-दर्शन का स्वर मुखर है परन्तु इस्लामी सूफीवाद का प्रभाव भी उनमें स्पष्ट है—

"साहेब छु बिहत पानि दुकानस
सॉरी मंगान केंछा दिय।
रट नो केंसी हुन्द रॉछ नो वानस
यि चे गछिय पाने नि[3]॥"

[साहब स्वयं दूकान पर बैठा है, सब कुछ-न-कुछ मांगते हैं, किसी को कोई रोक नहीं. दूकान की कोई रखवाली नहीं, जो तुम्हें चाहिए स्वयं उठाकर ले लो।]

इस 'वाक्'[4] में साहब शब्द कबीर[5] ही की तरह परब्रह्म का पर्याय है, और सूफ़ी शब्दावली से उद्धृत है। आगे चलकर शेख नूरदीन ने लल्ला से स्वर मिलाकर आध्यात्मिकता का राग अलापा। इस तरह हिन्दू और मुसलमान अध्यात्मवादियों ने एक समान रूप से कश्मीरी जनता को अध्यात्म और असीम से एकाकार होने के लिए बराबर प्रेरणा दी। लल्ला तो सच्चे अर्थों में कश्मीरी-काव्य का प्रथम प्रकाश स्तम्भ है।

परन्तु जब हब्बा के स्वभाव-कोमल शरीर ने आंखें खोलीं, तो उस समय तक अध्यात्म की यह संगीतलहरी बासी पड़ गई थी। जीवन के प्रति मूल्यों और आस्थाओं में युगान्तर आ चुका था। समष्टि रूप में सोचने के स्थान पर व्यक्तिगत चिन्तन की प्रधानता हो गई। बहिर्मुखता ने अन्तरमुखता के लिए जगह खाली की; अतः इस भावुक कवयित्री ने प्रचलित लीक पर न चलकर कश्मीरी काव्य को एक स्वस्थ और प्राणवान् दिशा दी। 'जग-बीती' के मोह में न पड़कर इसने 'आप-बीती' को वाणी दी। अपने वैयक्तिक अनुभवों तथा अनुभूतियों को समेटकर इस भावविह्वल नारी ने ऐसे मधुर-करुण काव्य का सृजन किया जो स्वयं में ही अपना उदाहरण है।

हब्बा को इन्हीं कारणों से कश्मीरी रोमान-गीतों की जननी कहा जाता है।

---

१. Dr. L. Barnett. Dr. Grieson, 'Lala-Vakyani'
२. Dr. Sufi Mohiud Din—Kasheer.
३. Lalleshwari, Edited by A. K. Wanchoo, 1996 Bkm.
४. लल्ला के मुक्तकों के लिए एक पारिभाषिक शब्द।
५. देखिये लेखककृत 'कबीर और लल्लेश्वरी', 'ज्योति', श्रीनगर भावात्मक एकता अंक, १९६३।

सामयिक परिस्थितियों के परिवेश में उसका अन्तर्मुखी हो जाना स्वाभाविक जान पड़ता है। कश्मीर का अन्तिम देशीय शासक 'यूसुफशाह चक्क' भोग और विलास की प्रतिमूर्ति था।[1] उसके शीशमहलों में कामुकता का नग्न नृत्य हो रहा था। उसकी प्रजा दो जून रोटी के लिए तरस रही थी। मुग़लों ने इस निष्क्रिय शासक की विलासप्रियता और उसकी बिलखती प्रजा के आर्थिक शोषण से लाभ उठाकर छल और बल से यूसुफ के शीशमहलों को धराशायी कर दिया, और इस तरह राजनीतिक वातावरण विषाक्त होने लगा। इसी समय मुसलमानों की एक जाति 'शियों' ने 'सुन्नियों' पर अत्याचार करने आरम्भ किए।[2] इस तरह धार्मिक वातावरण भी संतोषजनक न था। समाज विशृंखल हो चुका था। हिन्दू पूर्ण रूप से निश्शंक जीवन व्यतीत नहीं कर रहे थे और स्वयं मुसलमानों में जातिवाद हिंसक रूप धारण कर रहा था। ऐसे अव्यवस्थित वातावरण में कवि का समष्टि के लिए न सोचना नैसर्गिक जान पड़ता है। इतना ही नहीं उस समय दैवी प्रकोप एक और रूप में प्रकट हुआ। १५७६ ई० में असमय हिमवर्षा होने के कारण कश्मीर में तीन वर्ष तक दुर्भिक्ष का विनाशकारी ताण्डव देखने में आया।[3] ऐसे संकटपूर्ण वातावरण में भावुकता ने प्रत्यक्ष का रास्ता न पकड़कर परोक्ष के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति की। ऐसे वातावरण में जूझने और उसे मनोनुकूल बनाने की किसी में सामर्थ्य न थी; अत: एक प्रकार से इस कटुता को भुलाने के लिए कवयित्री ने प्रेम और अनुराग के गीत गाये।

दुर्भाग्य से इस कोकिल-कंठी के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता, केवल जनश्रुतियों और किंवदन्तियों का एक जाल-सा उसके व्यक्तित्व पर बुना हुआ है। धुंधलके में छिपे हुए उसके रंगीले जीवन के विषय में हमें कई फारसी इतिहासकारों के उद्धरण मिलते है। इन इतिहासों का प्रामाणिक महत्त्व विवादास्पद है। हब्बा के विषय में इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध इसलिए है कि इनमें से कोई भी इतिहासकार उसका समकालीन न था। वे भी सुनी-सुनाई बातों का ही अपने इतिहासों में वर्णन करते हैं, फिर भी उनसे लिखित वृत्त के प्रकाश में हम हब्बा के जीवन की धूमिल झांकी पा सकते हैं।

सर्वप्रथम पं० बीरबल काचरु[4] ने हब्बा के सम्बन्ध में उल्लेख किया है। वह कहते हैं कि यूसुफशाह हब्बा खातून नाम वाली प्रेयसी से बहुत लगाव रखता था। उसके पूर्वज पांपुर[5] के पास 'चन्द्रहार' गांव के रहने वाले थे। जब वह वयस्का हुई

---

१. Dr. Sufi Mohi-ud-Din-'Kasheer'.

२. Tarikhi-Hassan.

३. वही।

४. तारीखे कश्मीर (फारसी)।

५. पद्मपुर—राजतरंगिणी।

तो उसका विवाह अपने ही वंश में किया गया; कुछ समय के बाद भावुकता में आकर वह कश्मीरी गाने गाने लगी, जिस पर उसके ससुराल वाले उससे खिन्न होने लगे और अन्त में उसे घर से निकाल दिया। मायके जाते हुए रास्ते में उसे यूसुफशाह के कर्मचारियों ने पकड़ लिया और अपने बादशाह के पास ले गए, जिसने इसके रूप-लावण्य और संगीत-कला पर मुग्ध होकर इसे 'सहवास' से सम्मानित किया।

श्री काचरु का यह इतिहास हब्बा से लगभग ढाई सौ वर्ष बाद लिखा गया था, और इसी तरह इसके कोई साठ-सत्तर वर्ष बाद हसन कोहयामी अपने प्रसिद्ध इतिहास "तारीखे-हसन"[१] में हब्बा के सम्बन्ध में ये लिखते हैं—"कहते हैं कि हब्बा पांपुर के चन्द्रहार गांव के एक किसान की लड़की थी। उसकी शादी एक लम्पट और अकिंचन व्यक्ति से हुई और हब्बा की इससे पट न सकी। इस तरह वे दोनों, पति-पत्नी अलग हो गए। एक दिन रास्ते में चलते हुए यूसुफशाह की नज़र उस पर पड़ी जब कि वह एक कश्मीरी गीत गुनगुना रही थी। यूसुफशाह सुध-बुध खो बैठा और दूसरे दिन इसके माता-पिता को असंख्य धन देकर इस सुन्दरी को अपने 'सहवास' का सम्मान दिया।"

श्री काचरु और हसन के इन वृत्तों में यद्यपि कुछ अन्तर है फिर भी दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं, प्रथम यह कि हब्बा परित्यक्ता न होकर भी अपने पति से अलग रहती थी; दूसरा यह कि दोनों इतिहासकारों ने 'सहवास' का प्रयोग करके यह बता देना चाहा है कि वह बादशाह की परिणीता न होकर प्रेयसी मात्र थी।

आगे चलकर मुहम्मद दीन 'फ़ौक़' ने[२] हब्बा के वास्तविक नाम की ओर सबसे पहले संकेत दिया है। वे कहते हैं कि माता-पिता ने इसका नाम 'ज़ून' रखा था, क्योंकि वह चांद की तरह अप्रतिम सौन्दर्य की स्वामिनी थी। विवाह के बाद पति से अलग होने के बाद फ़ौक़ महोदय हब्बा और एक सूफी 'ख्वाजा महमूद' की भेंट की बात कहते हैं, जिसने इसका नाम 'ज़ून' से बदलकर हब्बा रखा। हसन के वृत्त से आगे चलकर इसमें इतना ही भेद है कि हसन हब्बा को रखेल समझते हैं जबकि फ़ौक़ महोदय इसे महारानी। फ़ौक़ ने अपनी पुस्तक में यह उल्लेख नहीं किया कि श्री काचरु और हसन कोहयामी के अतिरिक्त उनके पास और कौन-सी सामग्री थी जिसके आधार पर उन्होंने हब्बा को वेग़म लिखा है।

कश्मीर के प्रसिद्ध रोमानी कवि स्व० महजूर[३] ने भी फ़ौक़ महोदय के ही विचारों का अनुमोदन किया है, और स्व० आज़ाद[४] ने इस सम्बन्ध में हसन का

१. Edited and Translated by Research Deptt. J & K Govt.
२. "खवातीन कश्मीर", लाहौर, १९४०।
३. हब्बा खातून—कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित।
४. "कश्मीरी ज़बान और शायरी"—कल्चरल अकादमी।

अनुसरण किया है केवल इस अन्तर के साथ कि हब्बा का असली नाम 'ज़ून' था।

इस तरह यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि यदि हब्बा का एक और नाम भी रहा हो तो इसमें कोई असंगति नहीं। कश्मीर में अभी तक विशेषतया पण्डित घरानों में पुत्री का मायके का नाम ससुराल में बदल जाता है। एक कारण यह भी हो सकता है कि बादशाह के सम्पर्क में आने पर 'ज़ून' ठेठ कश्मीरी नाम बदलकर अरबी नाम से उसे पुकारा गया हो। संभ्रांत कुलीनता दिखाने के लिए इसके साथ 'खातून' भी जोड़ा गया हो।

अब हमें यह देखना है कि उसके मुक्तकों की आन्तरिक साक्षी के साथ ऊपर दिये गए तथ्य कहां तक मेल खाते हैं। उसका असली नाम 'ज़ून' होना उसके इस पद्य से ध्वनित होता है—

"छस रिवान नालॅ दिवान ग्रहणि मथ लोग ज़ूनि तै"

मैं रो रही हूं, चीत्कार कर रही हूं कि चांद (ज़ून) को ग्रहण लग गया।

और उसके जन्मस्थान चन्द्रहार गांव की पुष्टि उसके इस पद्य से होती है—

"माल्युन म्योन प्यठ चन्द्रहार छुये"

मेरा मायका चन्द्रहार के ऊपर वाले पठार पर है।

परन्तु ये दोनों पद्य श्री अमीन कामिल द्वारा सम्पादित 'हब्बा खातून'[1] में नहीं मिलते। उन्हें ये दोनों पद्य प्रक्षिप्त जान पड़ते हैं।[2] सम्भवतः किसी अज्ञात कवि ने हब्बा के सम्बन्ध में प्रचलित विश्वास के आधार पर उसकी रचनाओं में इन पद्यों को जाने-अनजाने में मिला दिया हो।

जनश्रुतियों के आधार पर हब्बा के विषय में एक और बात उल्लेखनीय है। उसे 'भोटिया देश' से सम्बन्धित कहा गया है; इसका कारण सम्भवतः यह रहा हो कि 'शियों' के अत्याचार के तले पिसते हुए 'सुन्नी' यह कब सहन कर सकते थे कि उनकी ही जाति की एक लड़की 'शिया बादशाह' की रखेल बन जाए, विशेषकर इसलिए भी क्योंकि हब्बा औपचारिक रूप से बादशाह की विवाहिता पत्नी न थी। अतः वह कश्मीरन न होकर भोटिया थी। लेकिन इन जनश्रुतियों का हमारे लिए कोई महत्त्व नहीं है।

आन्तरिक साक्षी के सूत्र को आगे बढ़ाते हुए हम केवल यह कह देना चाहते हैं कि कामिल महोदय द्वारा सम्पादित 'हब्बा खातून' में केवल बीस गीत संगृहीत हैं, इसके अतिरिक्त इस भावप्रवणा कवयित्री के बीसों और गीत लोकजिह्वा पर विराजमान् हैं। जब तक इन सब गीतों का संग्रह करके एक बृहत् प्रामाणिक संस्करण तैयार नहीं किया जाता तब तक हमें कामिल महोदय के इस संस्करण

१. कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित।
२. लेखक से एक भेंट में कामिल महोदय ने बताया।

पर ही तुष्टि करनी होगी। सौभाग्य से हव्वा अपने जन्म के सम्बन्ध में मौन नहीं है; वह बड़े चाव से कहती है—

"म्येलॅ माँजि रछनस, मोल क्याह दूरे
सास बज़ि चोंज़ि आसम सुलवान।
मे नो ज़ान्योव लौदमुत लूरे
कॅंसि मा रॉबिन शूरे पान।।"[1]

मेरे माता-पिता ने किस लाड़-प्यार से मुझे पाला था, सैकड़ों दासियां मेरे नाज़ उठाती थीं, मुझे पता न था कि यह बना हुआ काम बिगड़ जाएगा, किसी का बचपना यूं खो न जाए।

इस तरह यह बात साफ हो जाती है कि हव्वा का मायका एक अच्छा खाता-पीता घराना था, जिसकी पुनरुक्ति कवयित्री यूं करती है—

"मालिन म्यॅनिय अर्बाब आसिय,
तवय द्राम हव्वखोतून नाव।
कम कम गोंदर आयेयि च़सिथ,
दोह हरियामत लूसित गोम।।"[2]

मेरे मायके वाले अपने समय के सामन्त थे। इसलिए मेरा नाम हव्वा खातून पड़ा; क्या कहूं, मुझ पर युवक जान छिड़कते थे, परन्तु वे दिन ढल चुके।

अतः नाम के साथ खातून जोड़ने का आग्रह उसके बहुत ऊंचे सामंत कुल में जन्म लेने के कारण हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि हव्वा अनपढ़ न थी—

"मॅल माजि त्रेवनस सबकस दूरे
ओखनन वुलनम मूरे पान।
आर रोस तुलनम नार तोम्बूरे
कॅंसि मा रॉबिन शूरे पान।"[3]

मेरे माता-पिता ने मुझे दूर विद्योपार्जन के लिए भेजा। अध्यापक ने मेरी पिटाई में कोई कसर न छोड़ी, निर्दय ने मेरी हड्डी-पसली सेंक दी; किसी का बचपना यूं खो न जाए।

इसके अतिरिक्त कुलीन गृहस्थों की तरह उसकी धार्मिक शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया था—

"सिपारॅ त्रिह मरिॅ परिम यख आनो।
फेरि न कुनि गोम ज़ेरि ज़बरे।

१. हव्वा खातून, कल्चरल अकादमी, पृष्ठ ३६।
२. वही, पृष्ठ ७४।
३. वही, पृष्ठ ३८।

अॅश्कुन खत पोरनु कॅसि यख आनो
चे क्यहो वातियो म्यानि मरनय ।।"[१]

मैंने कुरान-शरीफ के तीस सिपारे एक बार ही पढ़ डाले, और उसे दुहराने में 'ज़ेर' या 'ज़बर' का अन्तर न आया, प्रेम-पत्र किसी से एक बार पढ़ा न गया, तुझे ऐ प्रीतम, मेरे मरने से क्या मिलेगा ?

जीवन के सबसे बड़े सौदे—विवाह के सम्बन्ध में हब्बा यूं मुखरित होती है—

"मॉत मॉजि वुननम डक्यवॅड कूरे
वॅरिव आंगिनि छिय प्रारान ।
रोपि डोलि ऑसिय सोनॅ कदून्रे
कॅसि मा रॉविन शूरे पान ।।"[२]

मेरे माता-पिता ने कहा कि सुहागन बेटी, तेरी ससुराल वाले आंगन में प्रतीक्षा कर रहे हैं । मेरी रुपहली डोली के बांसों पर सुनहरा कागज़ मढ़ा हुआ था ।

परन्तु मालूम नहीं कि किस अशुभ घड़ी में हब्बा की यह रजत-खचित डोली मायके से ससुराल चली थी कि उस सुहागन की ससुराल वालों से न निभ सकी, उसे उनके क्रूर-व्यवहार की प्रतिक्रिया में मायके वालों को सहायता के लिए पुकारना पड़ा—

"हशि लॉयनम टॅपिस्र थप
सूय म्ये गव मरनि खुॅत सख ।
यन्द्रॅ पचि प्यठ नेंद्र प्येमो
चखिर फुटुम मालिन्यो
वॉखियन सीत वारॅ छस नो
चारॅ करु म्योन मालिन्यो ।।"[३]

चर्खा कातते-कातते मेरी आंखें चरखे के चक्र पर लग गईं, जिससे वह टूट गया, मेरी सास ने मेरी चोटी खींची जो मेरे लिए मृत्यु से भी कष्टदायक पीड़ा थी, मेरी ससुराल वालों से नहीं बनती, मायके वालो, मेरा उद्धार करो !

हब्बा अपने पति के नाम का उल्लेख इस प्रकार व्यंग्य रूप में करती है—

"मेहो कॅर च्य कित फम्ब मोयान्द,
हा 'अज़ीज़ि'[४] 'ज़ूनि'[५] मा रोश

---

१. हब्बा खातून, कल्चरल अकादमी, पृष्ठ ३९ ।
२. हब्बा खातून—कल्चरल अकादमी ।
३. हब्बा खातून—कल्चरल अकादमी, पृष्ठ ६१ ।
४. पति का व्यक्तिवाचक नाम, जातिवाचक 'प्यारे' ।
५. हब्बा का असली नाम ।

खोतूनि पीरिय पूरि सामानय
छाव म्यान दाँनै पोश।"[1]

(मैंने तुम्हारे लिए कठिनतर खोज की, ऐ अज़ीज़, अपने चांद से मत रूठो, मैंने सोलह शृंगार किए हैं, आओ मेरे अनार फूलों के समान यौवन को लुटाओ।)

पति वियोग में व्याकुल हब्बा सदा अपने भाग्य को कोसती रहती है—

"यारि दादे तारि ग्यसो
बर बुक छुम आमतुय
हब्बखोतूनि बुन इशारा
दिल हुश्यारा मालिनो।"[2]

(अपने प्रियतम के लिए मैं व्याकुल हो रही हूं, मेरा जीवन मुझ पर भारी हो रहा है, मेरे मायके वालो, मेरे इस इशारे (दुःख) को समझो।)

यह बात तो निर्विवाद है कि हब्बा के ससुराल वालों ने जब उसे घोर यातनाएं दीं तो उसके माता-पिता ने उसे मायके बुला लिया और वापस भेजने के प्रति शिथिलता दिखाई। इस मानसिक स्थिति में वेदना और घुटन का तीव्राघात होना स्वाभाविक है।

जीवन के ढलते वर्षों में उसे यह खेद रहा कि यदि वह इस तड़प को ईश्वरोन्मुख करती तो उसका न इहलोक ही बिगड़ता और न परलोक—

"हब्बा खोतून छय अरमान रव्येवान
कॅरमय न जाँह बन्दगी।
यावुन रोवमुत छुम याद दीवान
च्ये क्यहो गयी म्येन दिय।"[3]

(हब्बा खातून को यह खेद रहा है कि उसने कभी तुम्हें बन्दगी नहीं की। खोई हुई जवानी मुझे याद आ रही है, तुम्हें क्यों मुझसे वैर हुआ ?)

आन्तरिक साक्षी के रूप में हम हब्बा के जीवन-सम्बन्ध से ही कुछ कड़ियां जुटा सके हैं। उसके जन्म और मरण के विषय में हमें बड़ी सतर्कता से काम लेना पड़ेगा। उसके जीवित रहने की अवधि सौभाग्य से हमें उसके समकालीन और प्रेमी 'यूसुफशाह' के उल्लेख से मिल जाती है। कश्मीर के इस अंतिम स्वतंत्र शासक का राज्यकाल १५७९ ई० से १५८५ ई० तक माना गया है। इन वर्षों में हब्बा का जीवित होना नितान्त असंदिग्ध है। यह भी सच है कि यूसुफ अपने जीवन की संध्या में अधिक कामुक हो चला था, सम्भवतः इन वर्षों में इसे हब्बा

१. हब्बा खातून, कल्चरल अकादमी, पृष्ठ ५२।
२. वही, पृष्ठ ६२।
३. वही, पृष्ठ ५८।

का सहवास प्राप्त रहा होगा। फौक महोदय ने 'तारीख बहारिस्तान शाही' के आधार पर हब्बा की जन्म तिथि १५४१ ई० से १५५२ ई० में रखी है। स्व० अज़ाद ने भी इसी मत का समर्थन किया है।[१] इस विषय के सम्बन्ध में कामिल महोदय लिखते हैं, "मुझे इस तारीख (बहारिस्तान शाही) में हब्बा के जन्म की तिथि की बात तो अलग रही, इसका उल्लेख तक नहीं मिला[२]।" यह घटना तो सर्वविदित है और इतिहास-सम्मत भी कि अकबर बादशाह ने १५८५ ई० में कश्मीर पर अधिकार किया और यूसुफशाह को बन्दी बनाकर बंगाल भेज दिया। अतः अपने प्रेमी का सितारा डूब जाने पर हब्बा की क्या दशा रही होगी, यह सब अज्ञात है। सम्भव है भविष्य में इस सम्बन्ध में नये तथ्य प्रकाश में आयें। स्व० फौक, स्व० आज़ाद, तथा स्व० महजूर हब्बा की आयु ५६-५७ वर्ष के लगभग मानते हैं। इनमें जनश्रुतियों का आभार भी सम्मिलित है। अतः जब तक कोई ठोस तर्क इस अनुमान को झुठलाने के लिए हमारे सामने नहीं आता, तब तक इन महानुभावों के इस मत को मानने में हमें कोई संकोच नहीं।

हब्बा का जन्मस्थान आन्तरिक और बाह्य साक्ष्य के आधार पर चन्द्रहार ही है। श्रीनगर से लगभग पांच-छः मील की दूरी पर 'पाम्पुर' का चिरविख्यात गांव केसर की क्यारियों के कारण प्रसिद्ध है। इसी पांपुर से बायीं ओर डेढ़ मील की दूरी पर चन्द्रहार नाम का छोटा-सा गांव आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है। इस गांव की टेकड़ियों पर केसर की क्यारियों की छटा कार्तिक पूर्णिमा की चांदनी में देखते बनती है। यहां के झरने भी बड़े सुन्दर हैं।

'हब्बा' शब्द स्पष्टतः स्त्रीवाचक है और अरबी 'हबीब' का संक्षिप्त रूप है। हबीब का अर्थ प्यारा है, अतः हब्बा खातून का अर्थ हुआ प्यारी रमणी। अपने अपूर्व व्यक्तित्व के नाते वह केवल यूसुफशाह की ही प्रेयसी न थी, अपितु समस्त कश्मीरी जनता के दिल की रानी थी।

हब्बा की काव्य-साधना का प्रधान स्वर श्रृंगार है। श्रृंगार के संयोग-पक्ष का क्षणिक साक्षात्कार होने के कारण उसकी कल्पना ने इसके वियोग-पक्ष में गहरे रंग भरे हैं। जीवन की यात्रा मेंउसे फूल न मिल सके, अतः उसने कांटों से अपनी झोली भर ली। यूसुफ का साहचर्य पाकर भी हब्बा संयोग के गीत नहीं गा सकी। सम्भवतः जीवन के द्वार पर जो भर्त्सना उसे मिली उसकी प्रतिध्वनि बराबर उसके मानसिक धरातल को झंकृत करती रही। क्षणिक सुख स्थायी दुःख के नीचे दब गया।

हब्बा ने जिस समाज में जन्म लिया था, वह आन्तरिक शोषण और बाह्य

---

१. कश्मीरी जबान और शायरी।

२. हब्बा खातून, कल्चरल अकादमी, भूमिका।

आक्रमण के दो पाटों में पिसता जा रहा था। सामंतशाही पूरे यौवन पर थी। कश्मीर की राजनीतिक बिसात पर कुशल मुगल नाना प्रकार के मोहरे लड़ा रहा था। जनता का सुख-चैन छिन चुका था। ऐसे ही दूषित वातावरण में हब्बा का जन्म हुआ। उसके निजी जीवन की घुटन समाज में पनपती हुई कुण्ठा से कुछ कम न थी, अतः हब्बा ने जन-जीवन की उपेक्षा करके भी निजी जीवन के व्याज से उसका प्रतिनिधित्व किया। वह जीवन से भागी नहीं। उसका काव्य इसी कारण पराजित के गीत नहीं कहा जा सकता। 'स्व' में समाज को विलीन करके उसने आंसू बहाए हैं। हब्बा में व्यक्तिगत अहं इतना प्रगल्भ था कि समाज का प्रतिबिम्ब उतारने के बदले उसने अपने हृदय को वाणी देना ही अधिक संगत समझा।

इसी व्यक्तिगत कविता की पराकाष्ठा 'रोमानवाद' है। एक रोमानी कवि अपनी परिस्थितियों से विद्रोह करने की न क्षमता रखता और न ही समझौता करने की। अपने चारों ओर से निश्चिन्त होकर वह अपने में एक नये ही संसार का सृजन करता है जिसमें उसके मीठे-कड़वे अनुभव उसे प्रेरणा देते हैं। जीवन की दौड़ में वह जीत और हार के मील-पत्थर नहीं गिनता, अपनी साधना में मग्न होकर लक्ष्य-प्राप्ति के लिए भी उतना उत्सुक नहीं होता।

यद्यपि ऐसी कविता सम्पूर्ण जीवन की आलोचना नहीं हो सकती, फिर भी इसे संकीर्ण व्यक्ति-बोध कराने की छन्दोबद्ध रचना नहीं कहा जा सकता; क्योंकि मानव की व्यक्तिगत अनुभूतियां विराट से सम्बद्ध हैं, विश्वव्यापी गुण लिये हुए हैं; हब्बा की ही तरह लाखों ऐसी ललनायें उस समय भी रही होंगी जिन्होंने समाज के प्रताड़न को गाय की तरह सहन किया, हब्बा की तरह घर से भागीं नहीं। हब्बा ने अपने दर्द को ऐसी करुण-मधुर भाषा का कलेवर पहनाया कि इस तरह उन लाखों निरीह अबलाओं का भी प्रतिनिधित्व हुआ।

लौकिक प्रेम-प्रधान गीतों का श्रीगणेश कश्मीरी साहित्य में हब्बा के द्वारा ही हुआ। उसका 'लोल'[१] वास्तव में लौकिक प्रेम का प्रतीक है। अतः इसका प्रणय-प्रतिपादन इन्द्रियातीत न होकर इन्द्रियजनित है। इन्द्रियसुख के प्रति हब्बा में कभी भी वितृष्णा पैदा नहीं हुई; भोग की परिणति उसके विचारानुसार योग में नहीं; वह मुड़ मुड़ कर उस भोग की प्राप्ति के लिए लालायित है जो उससे छिन चुका है। अपने भाग्य से उसे इसी लिए रोष है। सुहागिन होकर वह वियोगिनी बनने के लिए तैयार नहीं; वियोग में भी वह संयोग का मातम करती है; 'क्या खोया' यह तो उसके पद्यों की निरन्तर और अविच्छिन्न ध्वनि है। इतना सब करने के बाद भी आत्मतुष्टि नहीं अपितु व्यग्रता है, बेचैनी है; और इसी अधीरता का पुट उसके समस्त काव्य में मुखर हो उठा है। हब्बा को रंगीन और चांद-

---

१. P. N. K. Bamzai, A History of Kashmir.

धुली रातों का एकान्त डसने लगता है, और वह हर समय अपने प्रीतम को अपने शारीरिक आकर्षण से पाना चाहती है, मनोबल उसके भाव-कोष में नहीं :

"दोयॅ हरिॅ रुपॅ तन मलय
म्ये च्येन कल गनेयम ।
चन्दन वानि बोतन छलय
लालो कलॅ आलवय ॥ [१]

"मैं अपने रुपहले शरीर पर उबटन मलूंगी, मुझे तुम्हारे बिन कल नहीं। मैं चन्दन के पानी से अपना शरीर धोऊंगी, हे प्यारे, तुम पर मैं अपना सिर निछावर करूंगी।"

अतः प्रेम-प्रतिपादन के हेतु हब्बा के काव्य में रागात्मक तत्त्व बहुत प्रबल हो उठा है; यह रागात्मकता हब्बा के पद्यों की प्राण है, और इसमें यद्यपि वह आत्मविभोर हो उठती है परन्तु आत्मविस्मृति में खो नहीं जाती। इसी कारण उसकी लोकप्रियता आज तक बनी हुई है। संवेदनशीलता तो ऐसे काव्य में स्वतः सिद्ध होती है।

उसके काव्य पर फारसी काव्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उसकी भाषा, भाव और शैली तो स्पष्टतः फारसी पद्धति के ऋणी हैं, और कहीं-कहीं पर तो हब्बा अपने अतीत से इतनी कट चुकी है कि कश्मीरी नायक-नायिकाओं के बदले फारसी काव्यों में दिये गये नायक-नायिकाओं का ही उल्लेख करती है। 'यूसुफ' और 'ज़ुलेखा' के बदले वह 'नागराय' और 'हीमाल' का प्रयोग कर सकती थी। कहीं-कहीं पर तो फारसी शब्दों के तत्सम रूपों के प्रति उसका मोह बहुत दिखाई देता है, जैसे 'शमा' के बदले वह कश्मीरी 'चोंग' अथवा 'परवाना' के बदले कश्मीरी 'पनपोंपुर' लिख सकती थी। सम्भवतः शिष्ट समाज में उस समय में फारसी-मिश्रित कश्मीरी का अधिक चलन रहा होगा।

हब्बा का यह करुण-मधुर विलाप वास्तव में कश्मीरी नारी की युग-युग की प्यास का पद्यात्मक अनुवाद है और जब तक कश्मीरी ललना अपने अतीत से जीवन-श्वास ग्रहण करती रहेगी, तब तक हब्बा के गीत उसकी धड़कनों के साथ एकस्वर होते रहेंगे।

सम्भवतः इसी भाव से प्रेरित होकर स्व० महजूर ने अपने एक पद्य में स्व० रसूल मीर को उलाहना देते हुए हब्बा की गरिमा का आभार स्वीकार किया है :

शाहबादि रसूल मीर याद करान कन्दहारिच् ज़ून ।
तमिस क्याजि छनि च्येतस प्यवान चन्द्रहारिचज़ून ॥"

---

१. हब्बा खातून—कल्चरल अकादमी।

"रसूल मीर शाहावादी अपने काव्य में बार-बार कन्दहार के चांद को याद करता है (उसकी उपमायें बांधता है); उसे क्यों चन्द्रहार की जून (चांद) हब्बा याद नहीं आती ?"

इससे अधिक संश्लिष्ट, सारगर्भित श्रद्धाञ्जलि और क्या हो सकती है, और वह भी उस व्यक्ति के मुंह से जो आधुनिक कश्मीरी कविता का सर्वश्रेष्ठ रोमानी कवि हुआ हो।

परमानन्द और उनकी हिन्दी कविता

□ प्रो० चमनलाल सपरू

कश्मीरी साहित्य में भक्ति साहित्य भी काफी मात्रा में उपलब्ध है। वास्तव में यदि देखा जाए तो कश्मीरी साहित्य लल्लेश्वरी के रहस्यपूर्ण भक्ति-काव्य से ही आरम्भ होता है। लल्लेश्वरी कश्मीरी काव्य की निर्गुण शाखा की प्रतिनिधि कवयित्री हैं। इसके अतिरिक्त रूप भवानी तथा मिर्ज़ा काक का नाम भी इस शाखा में गिना जा सकता है। रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि प्रकाश भट्ट हैं, यद्यपि इस शाखा में शंकर त्रिछल, विष्णु कौल, व्यसू तथा नीलकंठ शर्मा के नाम भी उल्लेखनीय हैं। प्रेममार्गी (सूफ़ी) शाखा के अन्तर्गत शेख नूरुद्दीन, हबीब उल्लाह नौशहरवी, शाह कलंदर, शमस फ़कीर तथा वहाबखार का नाम प्रमुख है। कृष्ण भक्ति शाखा में महाकवि परमानंद का नाम सर्वोपरि है। इस शाखा के अन्तर्गत कृष्ण राज़दान का नाम भी उल्लेखनीय है।

कश्मीरी भक्ति-काव्य की पृष्ठभूमि का अध्ययन करने के लिए शैवदर्शन तथा सूफ़ीमत का मुख्य रूप से अध्ययन करना अनिवार्य है। कृष्ण-भक्त कवियों पर शैवदर्शन की अपेक्षा श्रीमद्भागवत का गहरा प्रभाव पड़ा है। भक्त कवियों ने जहां कश्मीरी साहित्य की अभिवृद्धि में अपूर्व योगदान दिया वहां इनका हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य और एक मिली-जुली संस्कृति को जन्म देने में भी बड़ा भारी योगदान रहा है। इन संत और सूफ़ी कवियों की दृष्टि में हिन्दू और मुसलमान में कोई अंतर नहीं। आध्यात्मिक क्षेत्र में बाहरी भेद-भाव नहीं होते हैं। तभी तो लल्लेश्वरी कहती है:

शिव छुय थलि थलि रोज़ान,
मो ज़ान ह्योंद त मुसलमान।
त्रुकै छुख त पान परज़ान,
सुई छै दयस सा्ंत्य ज़ानी ज़ान।

(शिव ही सर्वत्र व्याप्त है। हिन्दू और मुस्लिम में भेद न मान। ज्ञानी हो तो अपने

आपको पहचानो। वही परमात्मा के साथ वास्तविक पहचान है।)

शेख नूर उद्दीन, जिसे प्रायः नुन्द ऋषि के नाम से जाना जाता है, कहते हैं—

पो'ज़ यो'द बोज़ख पाँच् न्वश्रख,
नत माज़य न्वश्रख रछि, न माज़।
शिवस सा'त्यन यली म्युल करख,
स्यद्धि च्य् ऋषि मालि त्यलि न्यमाज़॥

(यदि तुम तत्त्व (सत्य) को जानना चाहते हो, तो पांच इंद्रियों को वश में रखो। अपने शरीर को झुकाने से कुछ न होगा। यदि तुम शिव से एक हो जाओगे, हे ऋषि! तभी तुम्हारी निमाज़ सफल होगी।)

इस 'श्रुख' में 'शिव' तथा 'निमाज़' के अद्भुत सामंजस्य को देखा जा सकता है।

जीवन परिचय

इस प्रकार की स्वस्थ आध्यात्मिक एवं साहित्यिक परम्पराओं से युक्त कश्मीर मंडल में महाकवि परमानंद का जन्म हुआ। उनका जन्म १७९१ ई० में अनंतनाग ज़िला के सीर गांव में हुआ। यह गांव प्रसिद्ध तीर्थ मटन (मार्त्तण्ड) से थोड़ी दूरी पर स्थित है। इस समय कश्मीर पर पठानों का शासन था। इनके पिता का नाम कृष्ण पंडित था और माता का नाम सरस्वती। आरम्भ में फारसी की शिक्षा प्राप्त की। उस समय फारसी भाषा ही शिक्षा का माध्यम थी। इनका बचपन का नाम नंदराम था और 'ग़रीब' उपनाम से फारसी में भी कविता किया करते थे। पं० नारायण जू मूरचगर (मूर्त्तिकार) द्वारा निर्मित इनका एक प्राचीन चित्र इनके जन्म-स्थान पर उपलब्ध है। सीर गांव में सरस्वती परमानंद की उपास्य देवी थीं। बाद में अपने जन्मस्थान के ही पास पहाड़ी पर स्थित 'भर्गशिखा' के मंदिर में दुर्गा की उपासना किया करते थे। इस स्थान के अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य ने इनके भक्ति काव्य में भी अद्भुत काव्य-सौंदर्य का समावेश किया है। इनके पिता पटवारी थे और उनके देहांत पर यह भी पटवारी बने। इनका विवाह मालद्यद नामी एक कन्या के साथ काफी अल्पवय में हुआ था। मालद्यद उग्र स्वभाव की थी। परमानंद विनोदी स्वभाव के थे। उस समय पटवारियों को बड़ी नीच दृष्टि से देखा जाता था। परमानंद का एक अधिकारी मिसरा राधूमल था। इसके कटु-व्यवहार से तंग आकर इन्होंने अपने एक पद में उस पर व्यंग्य कसा था।

परमानंद पर समसामयिक साधु-महात्माओं का काफी प्रभाव रहा। इनमें हिन्दू भी हैं और मुसलमानभी। परमहंस स्वामी आत्मानंद जी के साथ इन्होंने काफी समय व्यतीत किया और उनके साथ वेदान्त का खूब अध्ययन किया। एक सिख साधु के सत्संग से गुरु ग्रन्थ साहिब का अध्ययन किया। ग्रन्थ साहिब की इन

पंक्तियों—

"इक लख पूत सवा लख नाती,
ते रावण घर दिवा न बाती।"

को इस प्रकार अपनी एक हिन्दी रचना में इन्होंने प्रस्तुत किया है।

"इक लख पूता सवा लख नाते।
जिस रावण घर दिवा न बाते॥
क्या फल पाया कंसासुर ने···॥"

मुसलमान फकीरों में वाहब साहब के साथ इनका सम्पर्क रहा। परमानंद ने इनकी इच्छानुसार फारसी शब्दों से मिश्रित एक कश्मीरी कविता लिखी। यहां यह बात स्मरणीय है कि पंडित परमानंद कश्मीरी कविताओं में संस्कृत मिश्रित शब्दावली का प्रयोग किया करते थे। प्रसिद्ध कवि महमूद गामी से भी इनकी भेंट हुई बताई जाती है। इसके अतिरिक्त इनका एक पड़ोसी पं० टिकाराम था; वह साधु था और दार्शनिक, धार्मिक तथा नैतिक विषयों पर फारसी में कविता किया करता था। उससे भी परमानन्द प्रभावित थे।

प्रारम्भ में उन्होंने देवी की प्रशंसा में काव्य-रचना की। जैसा कि पहले बताया गया है मट्टन में 'भर्ग शिखा' भगवती की स्थापना है। कवि की उपास्य देवी होने के कारण इन्होंने उक्त देवी की स्तुति की है। इसकी प्रारम्भिक पंक्ति यूं है—

श्री भर्ग रूपी राज्ञा भवानी।
लीनकर च़ दीन अस्य छि चॉनिए॥

कई अन्य भक्ति गीत इन्होंने सीर गांव में सरस्वती देवी के पवित्र कुण्ड पर साधना करते हुए रचे हैं।

महाकवि परमानन्द ने अपनी साधना से योग की उच्च अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इन तथ्यों का संकेत उनकी कतिपय रचनाओं में मिलता है। अमरनाथ यात्रा से सम्बन्धित उनकी कविता इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

मास्टर ज़िन्दा कौल जी ने इनकी कविताओं को निम्नलिखित क्रम से विभाजित किया है--

(१) देवी भवानी, गणेश, शिव, विष्णु आदि की प्रशंसा में गाए गए विनय के पद। इन पदों में कवि ने अपने किए पापों का उल्लेख करते हुए क्षमा-प्रार्थना की है।

(२) दूसरे भाग में इनकी अमरनाथ जी की यात्रा जैसी कविताएं आती हैं। इनमें योग सम्बन्धी बातों पर काफी प्रकाश डाला गया है।

(३) तीसरे भाग के अन्तर्गत उनकी तीन लम्बी कविताएं आती हैं। (क) सुदामा चरित्र (ख) राधा स्वयंवर (ग) शिव लग्न। इन कविताओं का केन्द्रीय भाव क्रमशः सुदामा और श्रीकृष्ण का अनन्य प्रेम, राधा तथा अन्य गोपियों का

श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम तथा शिव और उमा का मिलन है। यह तीनों कविताएं परमात्मा का जीवात्मा के प्रति अनन्य प्रेम दर्शाती हैं और इसी प्रकार जीवात्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम और आकर्षण।

आगे चलकर 'मास्टर जी' ने परमानन्द की फुटकर कविताओं के दो भेद किए हैं—(१) आध्यात्मिक पथ पर चलने वाले जिज्ञासुओं के निमित्त कवितायें। इनमें ज्ञान की प्राप्ति के लिए आवश्यक साधनों का उल्लेख किया गया है। (२) अपने अनुभव की परिपक्वता के फलस्वरूप लिखी गई वेदान्त पर आधारित रहस्यपूर्ण कविताएं।

परमानन्द की काव्य-शैली की अनेक विशेषताओं का वर्णन किया जा सकता है। उनके काव्य में यत्र-तत्र अनुप्रास एवं यमक की अनुपम छटा प्राप्त होती है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

पोशतस दीवकियि लूख आ'स्य यिवान।
पोश तश पूजि ऑस्य लागानो।
पोशतस जि कृष्ण उपकारक सतानँ॥

प्रथम पंक्ति में 'पोशतस' का अर्थ बधाई देना होता है। दूसरी पंक्ति में 'पोश तस' का अर्थ 'उसे फूल अर्पित करते थे' होगा। तीसरी पंक्ति में 'पोशतस' का अर्थ चिरंजीव होता है।

परमानन्द के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। किन्तु दोनों अल्पवय में मर गए। बड़ा विवाहित भी था। इस भौतिक सुख से वंचित होने के दुःख के अनुभव का वर्णन उन्होंने एक स्थान पर किया है—

कुन त कीवल न सार सूरम'च् आश।
निः पुतुर त नित्रन न रूदमुत-गाश॥

(मैं अकेला हूं, मेरी आशा विलीन हो गई है। निःसंतान हूं और आंखों में प्रकाश नहीं रहा है।)

महाकवि परमानन्द के कई योग्य शिष्य हुए हैं। उनमें नागाम के पं० लक्ष्मण जू प्रमुख हैं। यह भी कवि थे और इन्होंने 'नलदमयन्ती' नामक काव्य की कश्मीरी में रचना की है।

इनके गांव का मुकद्दम सालेह ग़नाई यद्यपि परमानंद का अधिकारी था, फिर भी उनका काफी आदर करता था। आध्यात्मिक क्षेत्र में काफी पहुंचा हुआ जान कर वह परमानन्द की सेवा भी करता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि परमानंद एक उच्चकोटि के योगी होने के साथ-साथ महाकवि भी थे। इनका देहान्त १८८० ई० में हुआ।

महाकवि परमानंद पहले कश्मीरी कवि हैं जिन्होंने हिन्दी में भी कविता की। परमानंद के समय यहां की राजनैतिक परिस्थिति में परिवर्तन हुआ था। पठानों

का शासन समाप्त हुआ था। सिख शासन के २७ वर्षों ने और फिर धर्म-प्रिय डोगरा प्रशासकों ने यहां के त्रस्त हिन्दू समाज के लिए धार्मिक जीवन बिताने के लिए एक स्वतंत्र एवं अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर दिया था। भारत के अन्य भागों से काफी संख्या में धर्म-प्रिय पर्यटक, साधु आदि कश्मीर के प्रमुख तीर्थों और विशेषकर अमरनाथ जी की यात्रा करने के लिए आते थे। मटन ग्राम अमरनाथ जी के मार्ग में ही पड़ता है और साथ ही यह एक अखिल भारतीय महत्त्व का तीर्थ है। यहां पर गर्मियों के मौसम में काफी देर तक साधुओं का निवास रहता है। परमानन्द जी का इन साधु-संन्यासियों के साथ संपर्क होने लगा। वेदान्त पर चर्चा, श्रीमद्भागवत का पारायण और संकीर्त्तन आदि के कार्य-क्रम प्रायः आयोजित होते थे। इन संकीर्त्तन आयोजनों में महाकवि परमानन्द हिन्दी के प्रमुख भक्त कवियों की कृतियों से परिचित हुए। अतः हम देखते हैं कि परमानन्द पर जो व्यापक प्रभाव भक्ति का पड़ा है वह इन्हीं हिन्दी कवियों की कृतियों के कारण है। उन दिनों मटन ग्राम में स्वामी आत्मानन्द जी नामक एक संन्यासी रहा करत थे। ये बड़े ही विद्वान और योगी थे। इनके संपर्क में रह कर परमानन्द ने वेदान्त दर्शन का गहन अध्ययन करने के साथ संस्कृत भाषा का भी अध्ययन किया। यही कारण है कि उनकी कविता में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। कहीं-कहीं पर तत्सम शब्द भी काफी संख्या में मिलते हैं।

गोकल हृदय म्योन तति चोन गूर्यवान।
चि़त विमर्श दीप्तिमान भगवानो।।

इनमें गोकुल, हृदय, चित, विमर्श, दीप्तिमान तथा भगवान शब्द संस्कृत के हैं। उनकी बहुप्रशंसित कविता की प्रथम पंक्ति यहां उद्धृत की जाती है—

कर्म भूमिकायि दिजि धर्मुक बल।
संतोषि ब्यालि भवि आनंद फल।।

इसमें कर्मभूमि, धर्म, बल, संतोष, आनंद-फल, संस्कृत के शब्द हैं। उपर्युक्त कविता के शब्दों को भली प्रकार न समझने के कारण परमानन्द ने ख्रिव निवासी 'वहाब खार' (जो एक दरवेश थे) को कृषि सम्बन्धी आध्यात्मिक अर्थ से पूर्ण एक कविता सुनाई थी। जिसमें क़रारदाद, वादा, ज्यादा जैसे फारसी के शब्द प्रयुक्त किए गये हैं।

परमानन्द की हिन्दी कविता पर पंजाबी भाषा का भी प्रभाव पड़ा है। इसका कारण सिख शासक का प्रभाव तथा मटन में सिखों के गुरुद्वारे में ग्रंथियों के साथ परमानन्द का सम्पर्क हो सकता है। एक उदाहरण यहां प्रस्तुत है—

मन कंसा तन मथुरा होंदा।
कृष्ण आत्मा हृदि गोकुल रहंदा;
नारद विवेक सच सनियां देंदा।।

इसमें 'ह्oंदा', 'रह्ंदा' और 'देंदा' पंजाबी के शब्द हैं।

परमानन्द की लगभग एक दर्जन हिन्दी कवितायें उपलब्ध हैं। इनका महत्त्व संख्या की दृष्टि से नहीं, अपितु हिन्दी भाषा और साहित्य के देश-व्यापी स्वरूप का आकलन करने के लिए उनकी तत्कालीन उपयोगिता और प्रभाव को समझने की दृष्टि से आंका जाना चाहिए। कश्मीर के इस महाकवि की 'हिन्दी कविताओं' की समीक्षा काव्य-शास्त्र की कसौटी पर न कस कर इसके राष्ट्र-भाषा के महत्त्व और उसकी विस्तार सीमाओं के मूल्यांकन तथा विभिन्न प्रदेशों के पारस्परिक सांस्कृतिक आदान-प्रदान की दृष्टि से करनी होगी।

श्रीकृष्ण का जन्म हुआ है और भगवान् शंकर ने उनका दर्शन करने का विचार किया है और योगी का रूप धारण करके भिक्षा प्राप्ति का स्वांग रचकर गोकुल में पधारे हैं। इस दृश्य का अनुपम चित्रण परमानन्द ने इस प्रकार किया है—

भिख्या[1] मांगन सांग[2] बनायो
आयो सदा शिव गोकल में।
दर्शन करने को ध्यान धरायो
आयो सदा शिव गोकल में॥

नंगे सिर और नंगे पैरे
नन्दकेश्वर का सवारी था।
अंग में भस्मा भभूत चढ़ायो
आयो सदा शिव गोकल में।

हाथ में त्रिशूला कान में मुन्द्रा
सुन्दर मुख को करा कराल।
घटा शब्द और शंख बजायो
आयो सदा शिव गोकल में॥

गल में नागेन्द्र हारा पल में
जल में जैसे उठी तरंग।
गोकल में भूकम्प मचायो
आयो सदा शिव गोकल में॥

यशोदा ने देखा एक भैरव-स्वरूप भिक्षा मांगने द्वार पर आया है। उसने श्रीकृष्ण को छिपा लिया। इस बात को अंतर्यामी ने समझ लिया—

१. भिक्षा।
२. स्वांग।

अंतर्यामी स्वामी देखा,
अन्तर बाहर पूर्ण मय।
बालकृष्ण का मुख उसने छिपायो;
आयो सदा शिव गोकल में।।

यशोदा श्रीकृष्ण को घर में छिपाकर अन्न की मुट्ठी भरकर 'जोगेश्वर' के पास जाती है—

"लेकर दाना मुड़ आयो जसोदा,
बसुदेव का वासुदेव न साथ।
सामने होके हाथ जुड़ायो;
आयो सदा शिव गोकल में।।"

यशोदा को क्या मालूम उसके घर में किस विभूति ने जन्म लिया है। 'जोगेश्वर' श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

यह बालक हे जसोदा माई,
त्रिजगतांदा स्वामी है।
जिसको बतायो उसको बतायो;
आयो सदा शिव गोकल में।।

ना वेद आख[1] सके ना भाषा,
व्यास पराशर शुकदेव।
महिमा जिसकी हमको दिखायो;
आयो सदा शिव गोकल में।।

गोपियों के विरह वर्णन और श्रीकृष्ण के प्रति उत्कट भक्ति का परमानंद ने सूक्ष्म वर्णन किया है। इन कविताओं में एक विशेष बात उल्लेखनीय है कि इनमें वेदान्त की अद्वैत भावना को भी समझाया गया है—

ना तुम देखो कृष्णा श्यामा,
पतिया हमारा (म्हारा) लूको[2]
बाजीगर ने बाजीगरी की;
जिगर हमारा पारा लूको।।
... ...
आखूंगा हम ना कह रखूंगा।
ना कहूं तो मर जाऊंगा।

१. कह सके।
२. लोगो।

रिस के नसना उसका हंसना ;
चोरों का अलंकारा लूको ।।
... ...

नेत्र प्रकाशक सूरज साड़ा,
हमको न आवे देखन में भी।
ऐसा साड़ा देखो—लूको ;
जैसा जग में पारा लूको ।।
... ...

एक और लीला[1] (कविता) गोपियों द्वारा यूं कही गई है—

सदके उसको बुलाओ सदके सदके।
क्या आना तदके मर जाना जदके ।।
... ...

चारों वेदों का अर्थ यही है।
जप तप यम और बरत यही है ;
छोड़ो कपाल अपना सद्गुरु पदके ।।
... ...

तुम होवो राजा तुमको आ जा मीटे।
कम करने से कम काजा मीटे ;
क्यों घट में रहना घट वदके ।।
... ...

इनकी एक और कविता में श्रीकृष्ण के अवतार लेने का कारण स्पष्ट करते हुए वृषभान के द्वारा पूछे गए प्रश्न का नारद द्वारा इस प्रकार उत्तर दिया गया है—

जग में कृष्ण किस कारण आयो रे ।।
... ...

मग्न रहा बैठा परमात्मा।
बीच अपने कुछ भी नाहि जाना ;
अपने आपको देखन आयो रे ।।
... ...

चित्त--आभास का बाधा होके।
कृष्ण आप ही आप राधा होके ;
फिर गयी माया, ना मोहन आयो रे ।।

---

१. कश्मीरी भाषा में प्रेम भक्ति-सम्बन्धी कविता को 'लीला' कहते हैं।

'परमानन्द' विशयानन्द होके।
मस्त रहे हस-हस के रो के;
आप अलेप आप लेपन आयो रे॥
... ...

'परमानन्द' परम आनन्द होके।
अनाहद वाद योग नाद बन्ध होके॥
नित मुक्त होके नित बन्ध होके।
जग में कृष्ण उस कारण आयो रे॥
... ...

रहस्यवादी भक्त कवियों की भांति परमानन्द ने कई प्रतीकों से वेदान्त तथा अन्य आध्यात्मिक उपदेश दिए हैं। वास्तव में प्राय: अपनी कविताओं में इन्हीं गूढ़ बातों का समावेश करके अपने पाठकों को मोह-निद्रा और अज्ञान से जागने का आदेश दिया है—

श्याम मुख सन्मुख दिखावे।
मेरा मन कैसा सुख पावे॥
इन्द्रिय-नगर का राजा इन्द्र होवे।
मोह लंका का रामचन्द्र होवे॥
कुंभ कर्ण करने का जगावे।
देह द्वारका मन है कृष्ण जी॥
भोग इच्छा अठ पटरानी।
वख-वख लख कर बिछावें॥
जमने का जमुना पार तरे।
सतसंग गंग अश्नान करे;
न आवन तीर्थ तन न्हावे॥
... ...

रहने क्या ना रहने का बेला।
है क्या यह एक दो दिन का मेला;
आयो अकेला फिर जायो अकेला॥

श्रीकृष्ण की भक्ति में लिखी हुई उनकी बहुप्रशंसित कविता के कुछ अंश यहां उद्धृत किए जाते हैं—

रूप तुम्हारा अछा पछाना।
तुम बिन कुछ नहीं काम॥
गोकल में श्रीकृष्ण हुआ हो।
अयुध्या में श्री राम॥

वैरी तेरे कोई न होवे।
प्यारे तेरे और॥
हिंसा कंसा मारा तारा।
प्रेम ने सुदाम॥
... ...
वृन्दावन में रास रचायो।
नाम पयो गोपाल॥
भोगी हो सब भोगां भोगे।
योगी हो निष्काम॥
... ...
बाप हमारा कृष्ण हुआ हो।
पिता तुम्हारा नन्द॥
आपस में क्या पहुंचोंगा हम।
आप से दर दाम॥

अन्तिम चरण में अद्वैत का एक सुन्दर उदाहरण कवि ने प्रस्तुत किया है। परमानन्द कहता है "आप मेरे पिता हैं (परमानन्द के पिता का नाम कृष्ण था) और आप का पिता नन्द है (कवि का वास्तविक नाम नन्दराम था) अब आप ही बताइए हम दोनों का आपसी सम्बन्ध क्या है? इसका आप ही हिसाब लगाइए।"

परमानन्द ने कर्मवाद पर बल देते हुए काफी रचनाएं की हैं। उनके एक हिन्दी पद में कर्म सम्बन्धी विचार उल्लेखनीय हैं—

मात-पिता और सुत बंध-भ्राता।
जान लियो तुम दाता हो॥
हाथ अपना है जो जगन्नाथा।
कृत-कृत्य प्रति पालन होयो॥

तुम समझते हो कि माता-पिता, बच्चे अथवा मित्र तथा सम्बन्धी तुम्हारी सहायता करेंगे। यह भ्रम है, तुम्हारा हाथ जगन्नाथ है (रक्षक है) तुमको जो करना है सो करके स्वयं अपने पालक बनो। इस पद में हिन्दी के मुहावरे का यथावत् प्रयोग भी द्रष्टव्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व के इस कश्मीरी भाषी कवि ने अपनी मातृ-भाषा में रचित उत्कृष्ट कविताओं के अतिरिक्त कैसी मधुर हिन्दी में (जिसे परमानन्द स्वयं 'भाखा' कहते थे) कविता की है।

